ॐ नमः सिद्धेभ्यः

उत्थानिका।

कवितायै नमस्तस्यै यद्रसोल्लासिताशयाः।
कुर्वन्ति कवयः कीर्त्तिलतां लोकान्तसंश्रयाम्[1]॥

भाषासाहित्यके आज तक जितने ग्रन्थ प्रकाश हुए हैं, उनका अधिकांश केवल शृंगाररससे ओतपोत भरा हुआ है। और नायकाभेदके ग्रन्थोंकी तो गिनती करना भी कठिन है। इन ग्रन्थोंमें विरही और विरहिणियोंका रोना कुलटाओंके कटाक्षोंकी नोक झोंक, अभिसारिकाओंके संकेतस्थान, विदग्धाओंकी वाक्-क्रियाचातुरी और संयोगियोंकी "लपटाने दोऊ पटताने परे" की कथाओंका ही पिष्टपेषण देखा जाता है। राष्ट्रकी उन्नति होनेमें साहित्य एक प्रधान कारण माना गया है, परन्तु हम नहीं कह सक्ते कि, ऐसे साहित्यसे राष्ट्रको क्षतिके अतिरिक्त क्या लाभ होता होगा। भाषासाहित्यमें गोस्वामी तुलसीदासजी, बाबा सूरदासजी, सुन्दरदासजी, भूषणजी आदि चार छह श्रेष्ठ कवियोंके ग्रन्थ यदि प्रकाशित नहीं हुए होते तो कहना पडता कि, भाषाके कवि शृंगारके अतिरिक्त इतर विषयोंमें कोरे थे, अर्थात् शांत-करुणादि रसोंकी कविता करना एक प्रकारसे जानते ही नहीं थे। आजकलके अधिकांश कवियोंकी भी यही दशा है। उनकी

---

[1] "उस कविता देवीको नमस्कार है, जिसके अनुरागसे वर्द्धित-चित्त होकर कविगण स्वर्गादि फलोंकी देनेवाली कीर्तिलताको लोकके अन्तका आश्रय करनेवाली अर्थात् त्रैलोक्यव्यापिनी करते हैं। (यश-स्तिलकचम्पुमहाकाव्ये.)

वाग्देवी स्त्रियोंके नखशिख, तथा छल कपटोंकी प्रशंसामें ही उलझी रहती है। अधिक हुआ तो राधिकारसिकेशकी भक्तिमें दौड़ती है, परन्तु इस भक्तिके व्याजसे यथार्थमें अपनी विषयवासना-ही पुष्ट की जाती है और भक्तिका यथार्थ तत्त्व समझनेमें उनकी बुद्धि कुंठित रहती है। हम यह नहीं कहते कि, शृंगाररसमें कविता करनी ही न चाहिये, नहीं! शृंगारके बिना साहित्य फीका रहता है, इस लिये शृंगार एक आवश्यक रस है; परन्तु प्रत्येक विषयके परिमाणकी सीमा होती है। सीमाका उलंघन करना ही दोषास्पद होता है। सारांश यह है कि, अब शृंगाररस बहुत हो चुका; कविजनोंको अन्य विषयोंकी ओर भी ध्यान देना चाहिये। परमार्थदृष्टिसे शान्त और करुणा ये दो रस परमोत्तम हैं, और इन्हीं रसोंसे परिपूर्ण ग्रन्थ भाषा (हिन्दी) साहित्यमें बहुत थोड़े दिखाई देते हैं। इन रसोंसे कविका आत्मा सुख और शांति दोनों प्राप्त कर सक्ता है।

साहित्य और धर्मसे घनिष्ट सम्बन्ध है, इस लिये प्रत्येक भाषा-साहित्यके धर्मोंकी अपेक्षा अनेक भेद हो सक्ते हैं। जिस कविका जो धर्म होगा, उसकी कविता उसी धर्मके साहित्यमें गिनी जावेगी। परन्तु ग्रन्थोंके पर्यालोचनसे जाना जाता है, कि प्राचीन समयके विद्वानोंमें धर्मोंकी अनेकता होनेपर भी साहित्यकी अनेकता नहीं थी। उस समयका धर्मभेद विनोदरूप था, द्वेपरूप नहीं था; इस लिये प्रत्येक विद्वान् यावद्धर्मोंके ग्रन्थोंका परिशीलन निष्पक्षदृष्टिसे करता था। कविगण धर्मभेदके कारण किसी काव्यका आस्वादन करना नहीं छोड देते थे, बल्कि आस्वादन करके यथासमय उनकी प्रशंसा करते थे। वे जानते थे कि, सा-

हित्य कविके धर्मके अनुकूल विषय प्रतिपादन करता है, परन्तु किसीसे यह नहीं कहता कि, तुम्हें हमारा धर्म अंगीकार करना-ही पड़ेगा। महाकवि बाणभट्टने कहा है—

पदबन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः।
भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते॥

इसमें जिस महाकविके गद्यबन्ध ग्रन्थको काव्योंका राजा बतलाया है, वे भट्टार हरिश्चन्द्र जैन थे। जल्हणकी सूक्तिमुक्तावलीमें महाकवि श्रीधनंजयकी प्रशंसामें कहा है—

द्विसन्धाने निपुणतां स तां चक्रे धनंजयः।
यया जातं फलं तस्य सतां चक्रे धनं जयः॥

द्विसंधानमहाकाव्यके प्रणेता परम जैन धनंजयका नाम किसने न सुना होगा? ध्वन्यालोकके कर्ता आनन्दवर्धन और हरचरित महाकाव्यके कर्ता रत्नाकरने भी धनंजय की स्तुति की है। इसी प्रकार महाकवि वाग्भट्ट जो जैन थे, उन्होंने कालिदासकी प्रशंसामें कहा है—

नव्यनव्यक्रमासाद्यतुक्षणं यस्य सूक्तयः।
प्रभवन्ति प्रमोदाय कालिदासः स सत्कविः॥

परमभट्टारक श्रीसोमदेवसूरिने यशस्तिलकचम्पूके दूसरे आश्वासमें "सुकविकाव्यकथाविनोददोहनमाघ" पद देके माघ महाकविकी प्रशंसा की है।

इत्यादि और भी अनेक उदाहरणोंसे जाना जाता है कि, प्राचीनकालमें एक दूसरेके ग्रन्थोंके पठनपाठनकी पद्धति बहुलतासे थी। परन्तु अब वह समय बहुत पीछे पड़ गया है,

आजकलका समय उसके ठीक प्रतिकूल है। विधर्मी सम्प्र-
दाले लोगोंमें द्वेषबुद्धि बहुत बढ़ गई है; इस लिये वे एक दूसरेके
ग्रन्थोंका पठन पाठन तो दूर रहे, दूसरेके ग्रन्थोंकी निन्दा करना
और उनके प्रचारमें बाधक बनना ही अपना धर्म समझते हैं।

यदि धर्मकी अपेक्षा यहांके संस्कृतसाहित्यके भेद किये जावें तो
मुख्यतासे वैदिक, जैन, और बौद्ध ये तीन हो सकते हैं। परन्तु
भाषा (हिन्दी) साहित्यके वैदिक और जैन केवल दो ही हो सकेंगे।
क्योंकि—जिस समय भाषासाहित्यका प्रादुर्भाव हुआ था, उस स-
मय भारतमें बौद्धधर्मका प्रायः नामशेष हो चुका था, और यदि
कहीं थोड़ा बहुत रहा भी हो तो उसकी भाषा हिन्दी नहीं
थी। संस्कृतसाहित्यको छोड़ कर हम यहां भाषासाहित्यके सम्ब-
न्धमें ही कुछ कहेंगे—

काशी, आगरा आदिकी नागरीप्रचारिणीसभायें भाषासाहित्यके
ग्रन्थोंका प्रकाशन, आलोचन परिचालनादि करती हैं, और उनका
उद्देश भी यही है। इन सभाओंके द्वारा भाषासाहित्यको बहुत
कुछ लाभ पहुंचा है; परन्तु खेद है कि, इनसे भी धर्मके पक्षपा-
तका खंडन नहीं हो सका है और साहित्यसभाओंमें जितनी
गुणता और उदारहृदयता होनी चाहिये, इनमें नहीं है।
इस बातकी पुष्टिकेलिये इतना ही प्रमाण बहुत है कि, आज-
तक इन सभाओंके जितने ग्रन्थोंका प्रकाशन—आलोचन हुआ है,
उनमें जैनसाहित्यका एक भी ग्रन्थ नहीं है। जहां तक हमको वि-
दित है, इन सभाओंका कोई ऐसा नियम नहीं है कि, वैदिकसा-
हित्यके अतिरिक्त अन्यसाहित्यका प्रकाशन आलोचन किया जावे-
गा, परन्तु वैदिकधर्मके अनुयायी सज्जनोंका समूह उक्त सभाओंमें

अधिक हैं, इस कारण उनकी मनस्तुष्टिकेलिये ही ऐसा किया जाता है। और इसलिये हम कह सक्ते हैं कि, उक्त सभायें भाषासाहित्यकी उन्नतिकेलिये नहीं, किंतु एक विशेष भाषासाहित्यकी उन्नतिकेलिये स्थापित हैं। जब तक बाणभट्ट और वाग्भट्ट सरीखे उदार हृदयवाले उक्त सभाओंके सभ्य नहीं होंगे, तब तक साहित्यकी यथार्थ सेवा करनेके उद्देशका पालन कदापि नहीं हो सक्ता।

उक्त सभाओंके अतिरिक्त हिन्दीभाषाके साप्ताहिक मासिकपत्र भी भाषासाहित्यकी उन्नति करनेवाले गिने जाते हैं। परन्तु उनमें जितने प्रसिद्ध पत्र हैं, वे किसी एक धर्मके कट्टर अनुयायी और दूसरोंके विरोधी हैं; अतएव उनके द्वारा भी एक विशेष भाषासाहित्यकी उन्नति होती है, सामान्य भाषासाहित्यकी नहीं। यह ठीक है, कि प्रत्येक धर्मके साहित्यकी उन्नति उसी धर्मके अनुयायियोंको करना चाहिये, और वे ही इसके यथार्थ उत्तरदाता हैं। परन्तु जिन पत्रोंकी सृष्टि सर्वसामान्य राष्ट्रकी उन्नतिकेलिये है, और जो निरन्तर सबको एकदृष्टिसे देखनेकी डींग मारा करते हैं, उनके द्वारा किसी एक समूहकी उन्नतिमें सहायता मिलनेके बदले क्षति पहुंचना क्या कलङ्ककी बात नहीं है? मूर्खताके कारण जैनियोंका एक बड़ा समूह ग्रन्थोंके मुद्रित करानेका विरोधी है, इसलिये जैनग्रन्थ प्रथम तो छपते ही नहीं, और यदि कोई जैनी साहस करके किसी तरह छपाता भी है, तो उसका यथार्थ प्रचार नहीं होता। समाचार पत्रोंकी समालोचना ग्रन्थप्रचारणमें एक विशेष कारण है, परन्तु जैनग्रन्थ समालोचनासे सर्वथा वंचित रहते हैं। क्योंकि जैनियोंके जो एक दो पत्र हैं, उनमें तो विरोधियोंके भयसे मुद्रित

ग्रन्थोंकी बात ही नहीं की जाती, और हिन्दीके सामान्य पत्रोंमें जो समालोचना होती है, वह प्रचार होनेमें बाधा देनेके अभिप्रायसे होती है। "छपाई सफाई उत्तम है, मूल्य इतना है, ग्रन्थ जैनियोंके कामका है।" जैनग्रन्थोंकी समालोचना इतनेमें ही पत्रसम्पादकगण समाप्त कर देते हैं। और यदि विशेष कृपा की, तो दो चार दोष दिखला दिये! दोष कैसे दिखलाये जाते हैं, उनका नमूना भी लीजिये। एक महानुभाव सम्पादकने दौलतविलासकी आलोचनामें कहा था "बडी नीरस कविता है!" परन्तु यथार्थमें देखा जावे तो दौलतविलासकी कविताको नीरस कहना कविताका अनादर करना है। हमारे पड़ोसी एक दूसरे सम्पादकशिरोमणिने स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाके भाषा टीकाकार जयचन्द्रजीके साथ स्वर्गीय, शब्द लगा देखकर एक अपूर्व तर्क की थी, कि "जैनियोंमें स्वर्ग तो मानते ही नहीं हैं, इन्हें स्वर्गीय क्यों लिखा" धन्य! धन्य!! त्रिवार धन्य!!! पाठकगण जान सक्ते हैं, कि सम्पादक महाशय जैनियोंके कैसे शुभेच्छुक हैं. और जैनधर्मसे कितने परिचित हैं। जिस ग्रन्थकी समालोचनामें यह तर्क किया गया है, यदि उसीके दो चार पन्ने उलट करके आलोचक महाशय देखते, तो स्वर्ग है कि नहीं विदित हो जाता। पूर्ण ग्रन्थमें १०० स्थानोंसे भी अधिक इस स्वर्ग शब्दका व्यवहार हुआ होगा। परन्तु देखे कौन? जैनी नास्तिक कैसे बने? लोग उनसे घृणा कैसे करें? सारांश यह है कि, हृदयकी संकीर्णतासे आलोचकगण कैसी ही उत्तम पुस्तक क्यों न हो, उसमें एक दो लांछन लगाके समालोचनाकी इतिश्री कर देते हैं, जिससे पुस्तकप्रचारमें बड़ा भारी आघात पहुंचता है। और सामान्य भाषासा-

हित्यकी उन्नति न होकर एक विशेष भाषासाहित्यकी उन्नति होती है।

भारतवर्षमें वैदिक धर्मानुयायियोंके मिलानमें जैनियोंकी संख्या शतांश भी नहीं है, और जबसे भाषासाहित्यका प्रचार हुआ है, तबसे प्रायः यही दशा रही है। राज्यसत्ता न रहनेसे इन ४००-५०० वर्षोंमें जैनियोंकी किसी विषयमें यथार्थ उन्नति भी नहीं हुई है, परन्तु आश्चर्य है कि, इस दशामें भी जैनियोंका भाषासाहित्य वैदिक भाषासाहित्यसे न्यून नहीं है। समयके फेरसे जैनियोंके संस्कृतसाहित्यके अस्तित्वमें भी लोगोंको शंकायें होने लगी थी, परन्तु जब काव्यमालाने जन्म लिया, डा० भांडारकर और पिटर्सनकी रिपोर्टें जैनियोंके सहस्रावधि ग्रन्थोंके नाम लेकर प्रकाशित हुईं बंगाल एशियाटिक सुसाइटीने जैनग्रन्थोंका छापना प्रारंभ किया; और जब विद्वानोंके हाथोंमें यशस्तिलकचम्पू, धर्मशर्माभ्युदय, नेमिनिर्वाण, गद्यचिंतामणि, काव्यानुशासन आदि काव्यग्रन्थ, शाकटायन कातंत्रप्रभृतिव्याकरण, सप्तभंगीतरंगिणी, स्याद्वादमंजरी, प्रमेयपरीक्षादि न्यायग्रन्थ मुद्रित होकर सुशोभित हुए; तब धीरे २ उनकी वे शंकायें दूर हो गईं। इसी प्रकार वर्तमानमें भाषासाहित्यके ज्ञाता जैनियोंके भाषासाहित्यसे अनभिज्ञ हैं परन्तु उस अनभिज्ञताके दूर होनेका भी अब समय आ रहा है। हमलोग इस विषयमें यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे हैं।

प्रत्येक भाषाके साहित्यके गद्य और पद्य दो भेद हैं, इनमेंसे वैदिक साहित्यमें जिस प्रकार पद्यग्रन्थोंकी बहुलता है, उसी प्रकार जैनसाहित्यमें गद्यग्रन्थोंकी बहुलता है। भाषासाहित्यके विषयमें कभी २ यह निर्देश किया जाता है कि, भाषाकवियोंमें गद्यलिखने-

की प्रथा नहीं थी। हम समझते हैं, यह दोष जैनसाहित्यपर सर्वथा नहीं लगाया जावेगा, गद्यके सैकड़ों ग्रन्थ जैनियोंके पुस्तकालयोंमें अब भी प्राप्य हैं। पद्यग्रन्थोंकी भी त्रुटि नहीं है, परन्तु उनमें नायकाओंका आमोद प्रमोद नहीं है। केवल तत्त्वविचार और आध्यात्मिकरस की पूर्णताका उज्ज्वलप्रवाह है। संभव है कि, इस कारण आधुनिक कविगण उन्हें नीरस कहके समालोचना कर डालें परन्तु जानना चाहिये कि, शृङ्गाररस को ही रससंज्ञा नहीं है।

जिस समय भाषाग्रन्थोंकी रचनाका प्रारंभ हुआ है, उस समय जैनियोंके विलासके दिन नहीं थे। वे बड़ी २ आपदायें झेलकर बड़ी कठिनतासे अपने धर्मको जर्जरित अवस्थामें रक्षित रख सके थे। कहीं हमारे अलौकिक-तत्त्वज्ञानका संसारमें अभाव न हो जावे, यह चिन्ता उन्हें अहोरात्र लगी रहती थी, अतएव उनके विद्वानोंका चित्त विलास-पूर्ण-ग्रन्थोंके रचनेका नहीं हुआ और वे नायकाओंके विभ्रमविलासोंको छोड़कर धर्मतत्त्वोंको भाषामें लिखनेकेलिये तत्पर हो गये। धर्मतत्त्वोंको देशभाषामें लिखने की आवश्यकता पड़नेका कारण यह है कि, उस समय अविद्याका अंधकार बढ़ रहा था और गीर्वाणवाणी नितान्त सरल न होनेसे लोग उसे भूलने लगे थे, अथवा उसके पढ़नेका कोई परिश्रम नहीं करता था। ऐसी दशामें यदि धर्मतत्त्वोंका निरूपण देशभाषामें न होता, तो लोग धर्मशून्य हो जाते। एक और भी कारण है वह यह कि, हमारे आचार्योंका निरन्तर यह सिद्धान्त रहा है कि, देश काल भावके अनुकूल प्रवृत्ति करनी चाहिये, इसलिये देशमें जिस समय जिस भाषाका प्राधान्य तथा प्राबल्य रहा है, उस समय उन्होंने उसी भाषामें ग्रन्थोंकी रचना करके समयसूचकता व्यक्त की है।

प्राकृत, मागधी, शौरसेनी आदि भाषाओंके धर्मग्रन्थ इनके साक्षी हैं। देशभाषाओंमें ग्रन्थरचनेका प्रारंभ हमारे आचार्योंके द्वारा ही हुआ है, यदि ऐसा कहा जावे तो कुछ अत्युक्तिकर न होगा। कर्णाटक भाषाका सबसे प्रथम व्याकरण परमभट्टारक श्रीमद्भट्टाकलंकदेवने गीर्वाण भाषामें बनाया है, ऐसा पाश्चात्य-पंडितोंका भी मत है। मागधीके अधिकांश व्याकरण जैनियोंके ही हैं। भाषाग्रन्थोंके बनजानेसे लोगोंकी अभिरुचि फिर बढने लगी और उनके स्वाध्यायसे समाजमें पुनः ज्ञानकी वृद्धि होने लगी।

अभी तक यह भलीभांति निश्चय नहीं हुआ है कि, भाषाकाव्यका प्रचार कबसे हुआ। ज्यों ज्यों शोध होती जाती है, त्यों त्यों भाषाकी प्राचीनता विदित होती जाती है। कहते हैं कि, संवत् ७७० में अवंतीपुरीके राजा भोजके पिताने पुष्यकवि बन्दीजनको संस्कृतसाहित्य पढाया और फिर पुष्यकविने संस्कृत अलंकारोंकी भाषा दोहोंमें रचना की, तबहीसे भाषाकाव्यकी जड पड़ी। इसके पश्चात् नैवमी, ग्यारहवीं, बारहवीं, और तेरहवीं श-

---

१ चित्तोरगढ़के महाराज खुमानसिंह सीसोदियाने संवत ९००में खुमानरायसा नामक ग्रन्थकी नानाछन्दोंमें रचना की।

२ संवत् ११२४ से चन्दकवीश्वरने पृथ्वीराजरायसा बनाना प्रारंभ किया और ६९ खंडोंमें एकलक्ष श्लोक प्रमाण ग्रन्थ संवत् ११२० से ११४९ तक पृथ्वीराजका चरित्र वर्णन किया।

३ संवत् १२२० में कुमारपालचरित्र नामका एक ग्रन्थ महाराज कुमारपालके चरित्रका बनाया गया। कहते हैं कि, इसका बनानेवाला जैन था।

४ संवत् १३५७ में शारंगधरकविने हमीररायसा और हमीरकाव्य बनाया।

ताब्दीमें भाषाके चार पांच ग्रन्थ निर्मित हुए, परन्तु भाषाकाव्यकी यथार्थ उन्नति सोलहवीं शताब्दीमें कही जाती है। इस शताब्दीमें अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थोंकी रचना हुई है। अन्वेषण करनेसे जाना जाता है कि, जैनियोंके भाषासाहित्यने भी इसी शताब्दीमें अच्छी उन्नति की है। पंडित रूपचन्दजी, पांडे हेमराजजी, बनारसीदासजी, भैया भगवतीदासजी, भूधरदासजी, द्यानतरायजी आदि श्रेष्ठ कवि भी इसी सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दीमें हुए हैं। इन दो शताब्दियोंके पश्चात् बहुतसे कवि हुए हैं और ग्रन्थोंकी रचना भी बहुत हुई है, परन्तु उक्त कवियोंके तुल्य न तो कोई कवि हुए और न कोई ग्रन्थ निर्मापित हुए। सब पूर्वकवियोंके अनुकरण करनेवाले हुए ऐसा इतिहासकारोंका मत है।

हम इस विषयमें अभी तक कुछ निश्चय नहीं कर सके हैं कि, जैनियोंमें भाषासाहित्यकी नीव कबसे पड़ी और सबसे प्रथम कौन कवि हुआ। और न ऐसा कोई साधन ही दिखता है कि, जिससे आगे निश्चयकर सकेंगे। क्योंकि जैनियोंमें तो इस विषयके शोधनेवाले और आवश्यकता समझनेवाले बहुत कम निकलेंगे और अन्यभाषासाहित्यके विद्वान् वैदिकसाहित्येतर साहित्यको साहित्य ही नहीं समझते। परन्तु यह निश्चय है कि, शोध होने पर जैनभाषासाहित्य किसी प्रकार निम्नश्रेणीका और पश्चात्पद न गिना जावेगा।

जैनधर्मके पालनेवाले विशेषकर राजपूताना, युक्तप्रान्त, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और कर्णाटक प्रान्तमें रहते हैं। हिन्दी, गुजराती, मराठी, और कानडी ये चार भाषायें इन प्रान्तोंकी मुख्य भाषायें हैं। परन्तु इन चार भाषाओंमेंसे प्रायः हिंदी ही एक ऐसी भाषा है, जिसमें जैनधर्मके संस्कृत प्राकृतग्रन्थोंका अर्थ

सरल और बोधप्रद लिखा गया है, अथवा उनके आधारसे नवीन सरल–बोधप्रद ग्रन्थ लिखे गये हैं। कर्णाटकी भाषामें अनेक जैन-ग्रन्थ सुने जाते हैं, परन्तु वे सबको सुलभ नहीं हैं। ऐसी अवस्थामें प्रत्येक प्रान्तके जैनीको अपने धर्मतत्त्वोंको जाननेकेलिये हिन्दीका ही आश्रय लेना पडता है। जैनियोंके आवश्यक षट्कर्मोंमें शास्त्रस्वाध्याय एक मुख्य कर्म है, इसलिये प्रत्येक जैनीको प्रतिदिन थोड़ा बहुत शास्त्रस्वाध्याय करना ही पडता है, जो हिन्दीमें ही होता है। इसप्रकार जैनसाहित्य और जैनियोंके द्वारा हिन्दी भाषाकी एक विलक्षणरीतिसे उन्नति होती है। जो जैनी धर्मतत्त्वोंका थोड़ा भी मर्मज्ञ होगा, चाहे वह किसी भी प्रान्तका हो, हिन्दीका जाननेवाला अवश्य होगा। हिन्दी प्रचारकोंको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि, जैनियोंके एक जैनमित्र नामक हिन्दी मासिकपत्रके एक हजार ग्राहक हैं, जिनमें ५०० उत्तर भारतके और शेष ५०० गुजरात, महाराष्ट्र और कर्णाटकके हैं। नागरीप्रचारिणी सभाओं और हिन्दी हितैषियोंको इस ओर ध्यान देना चाहिये। जिस जैनसाहित्यसे हिन्दीकी इस प्रकार उन्नति होती है, उसको अप्रकट रखने की चेष्टा करना, और उसके प्रचारमें यथोचित उत्साह और सहायता नहीं देना हिन्दी हितैषियोंको शोभा नहीं देता।

जैन–भाषा–साहित्य–भंडारको अनुपम रत्नोंसे सुसज्जित करनेवाले विद्वान् प्रायः आगरा और जयपुर इन दो स्थानोंमें हुए हैं। आगरे की भाषा बृजभाषा कहलाती है, और जयपुर की ढूंढारी। बृजभाषाका परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हिन्दीकी पुरानी कविता प्रायः इसी भाषामें है, जो सबके पठन पाठनमें आती है। यह बनारसीविलास ग्रन्थ जो पाठकोंके हाथमें उपस्थित है, इसी

भाषामें है। वृजभाषाके पद्यसे लोग जितने परिचित हैं उतने गद्यसे नहीं हैं। वृजभाषाका गद्य जाननेकेलिये इस ग्रन्थकी आध्यात्मवचनिका और उपादाननिमित्तकी चिट्ठी पढनी चाहिये। ढूंढारी भाषा जयपुर और उसके आसपास ढूंढार देशकी भाषा है। इसमें और वृजभाषामें इतना ही अन्तर है कि, ढूंढारीमें प्राकृतशब्दोंका जितना बाहुल्य रहता है, उतना वृजभाषामें नहीं रहता। और वृजभाषामें फारसी शब्दोंके अपभ्रंश अधिक व्यवहृत होते हैं। ढूंढारी भाषाके गद्य ग्रन्थ बहुत सरल हैं, प्रत्येक प्रान्तका थोड़ी सी भी हिंदी जाननेवाला उन्हें सहज ही समझ सकता है।

जैनग्रन्थरत्नाकरमें जो स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रन्थ निकला है, उसकी टीका इसी भाषामें है, पाठकगण उसे मंगाके ढूंढारी भाषासे परिचित हो सके हैं।

भाषागद्य लिखनेवाले जैनविद्वानोंमें पं० टोडरमलजी, पं० जयचन्द्ररायजी, पं० हेमराजजी, पांडे रूपचन्द्रजी, पं० भागचन्द्रजी और पद्यलिखनेवालोंमें पं० बनारसीदासजी, पं० द्यानतरायजी, पं० भूधरदासजी, पं० भगवतीदासजी, पं० वृन्दावनजी, पं० देवीदासजी, पं० दौलतरामजी, पं० विहारीलालजी और सेवारामजी आदि कविवर उत्कृष्ट गिनें जाते हैं। इनके बनाये हुए ग्रन्थोंके पढनेसे इनकी विद्वत्ता अच्छी तरह व्यक्त होती है। आश्चर्य है कि, इनमेंसे किसी भी कविने शृंगाररसका ग्रन्थ नहीं बनाया। सभीनें आध्यात्म और तत्त्वोंका निरूपण करके अपना कालक्षेप किया है। पं० भूधरदासजीने कहा है,—

राग उदै जग अंध भयो, सहजै सब लोगन लाज गमाई।
सीखविना सब सीखत हैं, विषयानके सेवनकी सुघराई॥
तापर और रचैं रसकाव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई।
अंध असूझनकी अँखियानमें, मेलत हैं रज राम दुहाई!॥

(भूधरशतक)

सच है! जिन महात्माओंके ऐसे विचार थे, उन्हें आध्यात्मिक रचनाके अतिरिक्त केवल शृंगारकी रचना कुछ विशेष शोभा नहीं देती। परमार्थदृष्टिसे शांतरसकी समता शृंगाररस नहीं कर सक्ता। क्योंकि शांतरसकी ऊर्ध्व गति है, शृंगारकी अधो! परन्तु ऐसा कहनेसे यह नहीं समझना चाहिये कि, इनकी कविता नव-रस-रहित और काव्यके किसी अंगसे हीन होवेगी, नहीं! एक आध्यात्ममें ही नवरसघटित करके इन्होंने अपने ग्रन्थोंको नवरस-युक्त बनाये हैं। कविवर बनारसीदासजीने अपनी आत्मामें ही नव-रस घटित किये हैं! देखिये—

गुणविचार शृंगार, वीर उद्दिम उदार रुख।
करुणा सम रसरीति, हास हिरदै उछाह सुख॥
अष्टकरम दलमलन, रुद्र वरतै तिहिं थानक।
तन विलेच्छ बीभत्स, द्वन्द्व दुखदशा भयानक॥
अद्भुत अनंतबल चिंतवन, शांत सहज वैराग ध्रुव।
नवरस विलास परकाश तब, जब सुबोध घट प्रगट हुव॥

परब्रह्म आत्माका यह नवरसयुक्त अपूर्व चिंतवन विद्वानोंको अपूर्व आनन्दमय कर देता है। पाठकगण इसे एकबार अवश्य ही पाठ करें।

भाषासाहित्यके विषयमें इतना ही कह कर अब यह उत्थानिका पूर्ण की जाती है। आशा है कि, यह जिस इच्छासे लिखी गयी है, पाठकोंके द्वारा वह किसी न किसी रूपमें फलवती होगी। पाठकोंके एक वार ध्यानसे पढलेनेमें ही हम अपनी इच्छाको फलवती समझ सक्ते हैं। इत्यलम् विद्वद्वरेषु—

जीयाज्जैनमिदं मतं शमयितुं क्रूरानपीयं कृपा।
भारत्या सह शीलयत्वचिरतं श्रीः साहचर्यंव्रतम्॥
मात्सर्यं गुणिषु त्यजन्तु पिशुनाः संतोषलीलाजुषः।
सन्तः सन्तु भवन्तु च श्रमविदः सर्वे कवीनां जनाः॥

चन्दावाड़ी—बम्बई,
१४—४—१९०५.

विदुषां चरणसरोरुहसेवी—
नाथूरामप्रेमी,
देवरी (सागर) निवासी।

कविवर बनारसीदासजी।

मातृस्वामिस्वजनजनकभ्रातृभार्याजनाद्या
दातुं शक्तास्तदिह न फलं सज्जना यद्दन्ते ॥
काचित्तेषां वचनरचना येन सा ध्वस्तदोषा
यां शृण्वन्तः शमितकलुषा निर्वृतिं यान्ति सत्त्वाः ॥ ४६५

(सुभाषितरत्नसन्दोहे।)

इस संसारमें सज्जनजन जो फल देते हैं, वह माता, स्वामी, स्वजन, पिता, भ्राता, स्त्रीजनादि कोई भी देनेको समर्थ नहीं है। दोषोंको विध्वंस करनेवाली उनकी वचनरचनाको सुनकर जीवधारी शमित-कलुष (पापरहित) होकर निर्वृत्तिको प्राप्त करते हैं।

पाठकगण! कविवर बनारसीदासजीकी शुभफलको देनेवाली संगति हमलोगोंको प्राप्य नहीं है। क्योंकि वे अब इस लोकमें नहीं हैं। किन्तु हमारे शुभकर्मके उदयसे उनकी निर्मल-वचन-रचना (कविता) अब भी अक्षरवती होकर विद्यमान है, जिससे सम्पूर्ण सांसारिक कलुष (पाप) क्षय हो सके हैं। उन अक्षरोंसे कविवरकी कीर्तिकौमुदी कैसी प्रस्फुटित हो रही है! यह उज्ज्वल चाँदनी आत्माका अनुभवन करनेवाले पुरुषोंके हृदयमें एक अलौकिक शीतलताका प्रवेश करती है, जिससे उन्हें संसारकी मोहज्वाला उत्तापित नहीं करती।

जिस महाभाग्यकी वचनरचना ऐसी निर्मल और सुखकर है, उसकी जीवनकथा जाननेकी किसको इच्छा न होगी? और वह जीवनकथा कितनी सुंदर और रुचिकर न होगी? और उसके संग्रह करनेकी कितनी आवश्यकता नहीं है? ऐसा सोच कर हमने

बनारसीदासजीकी जीवनकथाका शोध करना प्रारंभ किया। जिस समय बनारसीविलासके मुद्रित करानेका विचार हुआ है, उसके बहुत पहिले हम इस विषयके प्रयत्नमें थे। हर्षका विषय है कि हमारा थोडासा परिश्रम एक बडे फलरूपमें फलित हो गया है। अर्थात् स्वयं कविवर बनारसीदासजीके हाथका लिखा हुआ ५५ वर्षका जीवनचरित्र प्राप्त हुआ है। इस जीवनचरित्रका नाम उन्होंने अर्द्ध-कथानक रक्खा है, और ५५ वर्षके पश्चात् शेषजीवन-कथानक लिखनेकी प्रतिज्ञा की है। परन्तु बहुत शोध करने पर भी उनके शेषजीवनके वृत्तांत हम अनभिज्ञ रहे। अर्द्धकथानक में जो कुछ लिखा है, उसको हम गद्यप्रेमी पाठकोंकी प्रसन्नताकेलिये अपनी आलोचनासहित यहां प्रकाश किये देते हैं। अर्द्धकथानक पद्य-बन्ध है। इस चरित्रमें उसके अनेक सुन्दर पद्य भी यथावसर दिये जावेंगे।

पाश्चात्य पंडितोंका यह एक बडा भारी आक्षेप है कि, भारतके विद्वान् जीवनचरित्र अथवा इतिहास लिखना नहीं जानते थे। परन्तु आजसे ३०० वर्ष पहिले जब पाश्चात्यसभ्यताका नाम निशान नहीं था, भारतका एक शिरोमणि कवि अपने जीवनके ५५ वर्षका वृत्तान्त लिखकरके रखगया है, इतिहासमें यह एक आश्चर्यकारी घटना है। हम निर्भय होकर कह सके हैं कि, कविशिरोमणि बनारसीदासजी एक ही कवि थे, जिन्होंने अपने जीवनकी सच्ची घट-नायें लिखकर अच्छे स्पष्ट शब्दोंमें गुणदोषोंकी आलोचना की है। दोषोंकी आलोचना करना साधारण पुरुषोंका कार्य नहीं है।

भाषासाहित्यमें अनेक संस्कृत तथा भाषा कवियोंके जीवनचरित्र लिखे गये हैं, परन्तु उनमें तथ्य बहुत थोडा है। क्योंकि किंवद-

न्तियोंके आधारसे उनमें अनेक असंभव घटनाओंका समावेश किया गया है, जिनपर एकाएक विश्वास नहीं किया जा सका। ऐसी दशामें चरित्रसे जो लोकोपकार होना चाहिये, वह नहीं होता। क्योंकि चरित्रका अर्थ चारित्र अथवा आचरण है, और आचरणोंमें अन्तर्बाह्य दोनोंका समावेश होना चाहिये। जिनचरित्रोंमें यह बात नहीं है, वे पूर्ण चरित्र नहीं हैं। कविवर बनारसीदासजीके जीवनचरित्रसे भाषासाहित्यकी इस एक बडी भारी त्रुटिकी पूर्ति होगी। क्योंकि अन्तर्बाह्य चरित्रोंका इसमें अच्छा चित्र खींचा गया है।

प्रारंभ।

पानि-जुगलपुट शीस धरि, मान अपनपो दास।
आनि भगत चित जानि प्रभु, वन्दौं पास सुपास॥ १॥

यह मंगलाचरण अर्धकथानकका है। कविवर पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथके विशेष भक्त थे, इसलिये कवितामें यत्र तत्र उक्त जिनेन्द्रद्वय की ही स्तुति की है। आपका जन्मनाम विक्रमाजीत था, परन्तु आपके पिता जब पार्श्वनाथसुपार्श्वनाथकी जन्मभूमि बनारस (काशी) की यात्राको गये थे, तब भक्तिवश बनारसीदास नाम रखदिया था, इसका विशेष विवरण आगे दिया गया है। बनारसीदासजी को भी अपने नामके कारण बनारस और उक्त जिनेन्द्रद्वयके चरणोंमें विशेषानुराग हो गया था। बनारसीनगरी की व्युत्पत्ति देखिये आपने कैसी सुन्दर की है—

१ पार्श्व। २ सुपार्श्व।

कवित्त।

गंगा माहिं आय धँसी, द्वै नदी वरुना असी
  वीच वसी वानारसी नगरी वखानी है।
काशिवारदेश मध्य गांव तातें काशी नांव,
  श्रीसुपास-पासकी जनमभूमि मानी है॥
तहां दोऊ जिन शिवमारग प्रकट कीन्हों,
  तवसेती शिवपुरी जगतमें जानी है।
ऐसीविधि नाम भये नगरी वनारसीके,
  और भांति कहैं सो तो मिथ्यामतवानी है॥१॥

और भी अर्धकथानक की भूमिका बांधते हुए कहा है:-

जिन पहिरी जिन जनमपुरि, नाम मुद्रिकाछाप।
सो वनारसी निज कथा; कहै आपसों आप॥ ३॥

भगवान् पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथकी स्तुति नाटकसमयसारके प्रारंभमें कैसी अच्छी की है—

(सर्व ह्रस्वाक्षर) मनहरण।

करमभरमजगतिमिरहरनखग,
  उरगलखनपग शिवमगदरसि।
निरखत नयन भविक जल वरपत,
  हरपत अमित भविकजन सरसि।
मदनकदनजित परमधरमहित,
  सुमिरत भगत भगत सव डरसि।

सजलजलदतन मुकुट सपत फन,
कमठदलनजिन नमत बनरसि ॥ २ ॥

(सर्व ह्रस्वकारान्त) पद्पद्।

सकलकरमखलदलन, कमठशठपवनकनकनग।
धवलपरमपदरमन, जगतजनअमलकमलखग॥
परमतजलधरपवन, सजलघनसमतन समकर।
परअघरजहरजलद, सकलजननत भवभयहर॥
यमदलन नरकपदछयकरन, अगमअतटभवजलतरन।
वर सबलमदनवनहरदहन, जय जय परमअभयकरन ॥३॥

मनहरण।

जिनके वचन उर धारत जुगलनाग,
भये धरणेंद्र पदमावति पलकमें।
जाकी नाम महिमा सों कुधातु कनक करे,
पारस पाषान नामी भयो है खलकमें॥
जिनकी जनमपुरी नामके प्रभाव हम,
आपुनो स्वरूप लख्यो भानुसो भलकमें।
तेई प्रभु पारस महारसके दाता अब,
दीजे मोहि साता दृगलीलाकी ललकमें॥

उक्त तीन छन्द विशेष मनोहर और युक्ति पूर्ण हैं, इसलिये इनको हठात् उद्धृत करना पड़े हैं। चरित्रसम्बन्धमें इनसे केवल इतना ही सारांश लेना है कि, कविवर पार्श्वसुपार्श्वनाथको इष्ट मानते थे।

१ दुष्ट कमठ रूपी वायुको अचल सुमेरुके समान।

पूर्व वंशधरोंकी कथा ।

मध्यभारतमें रोहतकपुर नामक एक नगर है । उसके निकट विहोली नामका एक ग्राम है । विहोलीमें राजपूतोंकी बस्ती है । वहां कारणवश एक समय किसी जैनमुनिका शुभागमन हुआ । मुनिराजके विद्वत्तापूर्ण उपदेशों और लोकोत्तर आचरणोंसे मुग्ध होकर ग्रामवासी सम्पूर्ण राजपूत जैनी हो गये, और—

पहिरी माला मंत्रकी, पायो कुल श्रीमाल ।
थाप्यो गोत बिहोलिआ, बीहोली-रखपाल ॥

अर्थात् नवकारमंत्रकी माला पहिनके श्रीमालकुलकी स्थापना की और विहोलिया गोत्र रक्खा । वीहोलिया कुलने खूब वृद्धि पाई और दूर २ तक फैल गया । इस कुलमें परंपरागत बहुतकालके पश्चात् गंगाधर और गोसल नामके दो पुरुष हुए । गंगाधरके वस्तुपाल, वस्तुपालके जेठमल, जेठमलके जिनदास और जिनदासके मूलदास उत्पन्न हुए । मूलदासजी हिन्दी फारसीके ज्ञाता थे । यथा,—

मूलदास जिनदासके, भयो पुत्र परधान ।
पढ्यो हिन्दुगी[1] फारसी, भागवान बलवान ॥

मूलदासजी की वणिक वृत्ति थी । अपनी विद्वत्ता और सचाईके कारण वे मुगलबादशाहके परम कृपापात्र हो गये थे । मालवा के नरवर नामके नगरमें हुमायूं के किसी उमराव[2] को वहां जागीर प्राप्त हुई थी । यथा—

---

१ हिन्दी । २ आफिसर ।

तहां मुगल पाई जागीर।

१ संवत् १६०८ में मालवा हुमायूंके मातहत नहीं था। उस समय हुमायूं हिन्दुस्तानमें नहीं था, काबुलमें था। संवत् १६०८ में हिजरी सन् ९०८ था, और उस समय मालवेमें शेरशाहका अमल था उसकी तरफसे शुजाखां हाकिम था।

मालवेका यह हाल है कि वहां भी मुहम्मदतुगलकके पश्चात् अलग बादशाही हो गई। आखरी बादशाह महमूदखिलजी था, उससे गुजरातके सुलतान बहादुरने ९ शावान सन् ९३७ (चैत्र सुदी ११ संवत् १५८७) को मालवा छीन लिया था।

सन् ९४१ (संवत् १५९२) में हुमायूंबादशाहने सुलतानबहादुरको भगाकर मालवा लिया। सन् ९४२ (संवत् १५९३) में जब बादशाह मालवेसे आगरे और आगरेसे बंगालेको शेरखां पठानसे लड़ने गये, तो महमूदखिलजीके गुलाम मल्लूखांने मुगलोंको निकालकर मालवेमें अमल कर लिया और कादरशाह अपना नाम रख लिया।

सन् ९४९ (संवत १५९९) में शेरखांने कादिरशाहको निकालकर शुजाखांको मालवेमें रक्खा।

सन् ९६२ (संवत् १६१२) में शुजाखां मर गया। उसका बेटा बायजीद मालवेका मालिक होकर बाजबहादुर कहलाने लगा।

संवत १६१८ में अकबरबादशाहके अमीरोंने बाजबहादुरको निकालकर मालवेको दिल्लीके राज्यमें मिला दिया।

इस व्यवस्थासे मालूम होता है कि, संवत् १६०८ में जो शुजाखां मालवेका मालिक था, वह हुमायूंका सरदार नहीं शेरखांका सरदार था और उस समय शेरखांके बेटे सलीमशाहके मातहत था।

जानना चाहिये कि, कालपी और गवालियर बाबरके समयमें हुमायूं बादशाहके अधिकारमें थे। कालपीमें बादशाहका चचा यादगार-

शाह हुमायूंको बरबीर ॥ १५ ॥

मूलदासजी उक्त नरवर नगरमें शाहीमोदी बनकर गये और अपना कार्य प्रतिष्ठापूर्वक करने लगे। कुछ दिनके पश्चात् अर्थात् सावन सुदी ५ रविवार संवत् १६०२ को आपको एक पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। जिसका नाम खरगसेन रक्खा। दो वर्षके पश्चात् घनमल नामके दूसरे पुत्रने अवतार लिया। परन्तु तीन वर्ष जीवित रहके,—

घनमल घैनदल उडि गये, कालपवनसंजोग।
मातपितातरुवर तये, लहि आतप सुतसोग ॥ १९ ॥

घनमलके शोक को मूलदासजी झेल नहीं सके और संवत् १६१३ में पुत्रके कुछदिन पीछे पुत्रकी गति को प्राप्त हो गये।

मूलदासकी मृत्युके पश्चात् उनकी स्त्री और बालक दोनों अनाथ हो गये, अनाथिनीको पतिके बिना संसार स्मशान सा दिखने लगा परन्तु इतनेसे ही कुशलता न हुई; मुगलसरदार मूलदासका काल सुनकर आया, और उसने इनका घर खालसा करके सब जायदाद

नासिरमिरजा और गवालियरमें अबुलकासिम हाकिम था। नरवर गवालियरके नीचे था, सो वहां कोई मुगलहाकिम रहता होगा, जिसके मोदी बनारसीदासजीके दादा मूलदास थे। परन्तु संवत् १६०८ में नरवरका हाकिम मुगल नहीं पठान था, संवत् १६१३ में मुगल होगा, क्योंकि संवत् १६१२ से फिर हुमायूका राज्य दिल्लीमें हो-गया था।

१ अर्द्धकथानककी जो प्रति हमारे पास है, उसमें बरबीर शब्दपर 'उमराव' ऐसी टिप्पणी है।

२ कदाचित् घनसे कविराजने नभका भाव रक्खा है।

जब्त करली! अनाथिनी और भी अनाथिनी होगई। मुगलसरदार की निर्दयताका कुछ ठिकाना था? "मरेको मारें शाह मदार"।

अनाथविधवा इस घोर विपत्तिको वहां रहकर सहन न कर सकी, और अनाथ बालकको पीठपर बांधके पूर्वदशकी ओर चल पड़ी। और नानाप्रकारके पथसंकटोंको झेलती हुई, कुछ दिनोंके पश्चात् जौनपुर शहरमें पहुंची। जौनपुरमें अनाथिनीका पीहर था। वहां के प्रतिष्ठित रहीस चिनाल्यिा गोत्रज मदनसिंहजी जौंहरी की वह भतीजी थी। मदनसिंहजी पुत्रीको पाकर प्रसन्न हुए और उनकी दुर्दशा सुनकर बहुत दुःखी हुए। पीछे दिलासा देके पुत्रीको समझाया कि, एक पुत्रसे सब कुछ हो सक्ता है, सुखदुःख धूलकी छायाके समान हैं। पुत्र की रक्षा कर और सुखसे रह। यह घर द्वार सब तेरा है।

जौनपुर गोमती नदीके किनारे बसा हुआ है। पटान वंशोद्भव जोनाशाह सुल्तानने इस नगरको बसाया था; इस कारण इसका नाम जौनपुर हुआ। उस समय जौनपुरराज्यका विस्तार पूर्वमें पटना पश्चिममें इटावा दक्षिणमें विन्ध्याचल और उत्तरमें हिमालय तक था। कविवरने इस नगरका वर्णन स्वतः देखकर बहुत लिखा है। परन्तु विस्तारभयसे हम उसे छोडे देते हैं, और बादशाहों की नामावली जो एक जानने योग्य विषय है, लिखे देते हैं,—

प्रथमशाह जोनाशाह जानि।
दुतिय बबक्कर शाह बखानि॥ ३२॥
त्रितिय भयो सुरहरसुलतान।
चौथो दोस्तमुहम्मद जान॥

पंचम भूपति शाह निजाम ।
छट्ठमशाह बिराहिम नाम ॥ ३३ ॥
सत्तम साहिब शाह हुसेन ।
अट्ठम गाजी सज्जितसैन ॥
नवमशाह बख्यासुलतान ।
वरती जासु अखंडित आन ॥ ३४ ॥

१ बनारसीदासजीने जोनपुरके बादशाहोंके ये ९ नाम लिखे हैं—

१ जोनाशाह २ बबक्कर ३ सुरहर
४ दोस्तमुहम्मद ५ शाहनिजाम ६ शाहबिराहीम (इब्राहीम)
७ शाहहुसेन ८ गाजी ९ बख्यासुलतान

इन बादशाहोंका पतालगानेकेलिये फारसीतवारीखोंमें जोनपुरका हाल ढूंढकर ऊपरके लेखसे मिलाया तो, कुछ और ही पाया, और नाम भी कुछ और ही पाये। नाम उन तवारीखों के ये हैं—

१ आईनअकबरी २ तारीख निजामी ३ तारीख फरिश्ता ४ तारीख फीरोजशाही ५ सेरुलमुताखरीन ६ जुगराफिये व तारीखजोनपुर वगैरः—

इनमें सबसे पुरानी फीरोजशाही है। इन तवारीखों में जो विवरण जौनपुरकी सल्तनतका लिखा है, उसका सारांश यह है कि—

खिलजियोंका राज्य जानेपर तुगलकजातिका दिल्लीमें उदय हुआ। पहिला बादशाह इस घरानेका गाजी तुगलक पंजाबका सूबेदार था, जो कि—ता० १ शाबान सन् ७३१ (भादोंसुदी ३ संवत् १३७८) को सब अमीरोंकी सलाहसे दिल्लीके सिंहासनपर बैठा था। और रबीउलअवल सन् ७३५ (फाल्गुण सुदी और चैत्रवदी संवत् १३८१) में मरा।

उसका बेटा मलिक फखरुद्दीनजोना सुलतान नासिर-

उलदीन मुहम्मदशाहके नामसे तख़्तपर बैठा। इसीको मुहम्मद-तुगलक भी कहते हैं। यह २१ मुहर्रम सन् ७५२ (चैतवदी ८ संवत् १४०७) को सिंधमें मर गया।

मुहम्मदतुगलकके बेटा नहीं था, इसलिये उसके काका सालार रज्जबका बेटा फीरोजशाहबारबुक बादशाह हुआ। इसने सन् ७७४ (संवत् १४२९) में बंगालेसे लौटते हुए, गोमतीनदीके तीरपर १ अच्छी समचौरस जमीन देखकर वहां शहर बसाया, और उसका नाम अपने चचेरेभाई मुहम्मदतुगलकके असली नाम मलिकजोनाके नामसे जोनपुर रक्खा, क्योंकि उसने स्वप्नमें मलिकजोनाको यह कहते हुए देखा था कि, इस शहरका नाम मेरे नामपर रखना।

फीरोजशाह १३ रमजान सन् ७९० (भादों सुदी १५ संवत् १४४५) को ९० वर्षका होकर मरा। उसका पोता दूसरा ग्यासुद्दीन तुगलक बादशाह हुआ। यह २१ सफर सन् ७९१ (फागुण वदी ८ सं० १४४५) को मारा गया। उसका चचेराभाई अबूबक उसकी जगह बैठा। वह भी २० जिलहिज्ज सन् ७९१ (पौष वदी ७ संवत् १४४७) को मर गया। तब उसका काका नासिरउलदीन मुहम्मदशाह बादशाह हुआ। वह १७ रबीउलअव्वल सन् ७९६ (फागुण वदी ४ संवत् १४५०) को मर गया। उसका बेटा हुमायूंखां १९ को तख़्त पर बैठा और १॥ महीने पीछे ही मर गया। तब उसके भाई नासिर-उलदीन महमूदशाहको ख्वाजाजहां वजीरने उसकी जगह बैठाया। इसने पूर्वके हिन्दुओंका स्वतंत्र हो जाना सुनकर ख्वाजाजहांको उनके ऊपर भेजा। यही पहिला बादशाह जोनपुरका हुआ। इसका नाम मलिक सरवर था और फीरोजके समयमें ख्वोटोंका दारोगा था। नासिरउद्दीन-मुहम्मदशाहने इसको वजीर बनाकर ख्वाजाजहांका खिताब दिया था और जब नासिरउद्दीन महमूदशाहने इसे पूर्वको भेजा, तो सुलतानुलशर्कका खिताब भी उसको दे दिया था, जिसका अर्थ होता है पूर्वका बादशाह।

जोनपुरके शाह ।

१ सुलतानउलशर्क ख्वाजाजहांने हिन्दुओंपर जीत पाकर जोनपुरमें अपनी राजधानी स्थापित की। उसका राज्य परगने कोल से तिरहुत तक था। वह सन् ८०२ (संवत् १४५६। ५७) में मरा। उसके संतान नहीं थी, करनफल नाम १ लडकेको बेटा बनाया था। वही उसके पीछे जोनपुरका बादशाह हुआ और मुबारिकशाह नाम रक्खा।

२ मुबारिकशाह—तुगलकोंकी बादशाही दिन २ गिरती देखकर पूरा स्वतंत्र होगया। २ वर्ष पीछे सन् ८०४ (संवत् १४५८।५९) में मरा। संतान इसके भी नहीं थी, भाई तख्तपर बैठा।

३ इब्राहीमशाह (मुबारिकशाहका भाई)—इसके समयमें दिल्ली तुगलकोंसे सैयदोंने ले ली। पहिले सैयद खिजरखां और फिर सैयद मुहम्मदशाह वहांका बादशाह हुआ। इब्राहीम दोनोंसे ही लड़ता लड़ता सन् ८४४ (संवत् १४९६ में) मर गया।

४ महमूदशाह (सुलतान इब्राहीमका बेटा)—इसके समयमें दिल्लीका बादशाह मुहम्मदशाह मर गया और अलाउद्दीनशाह बैठा। अमीरोंने उससे नाराज होकर महमूदशाह को बुलाया, तब अलाउद्दीन पंजाबके हाकिम बहलोललोदीको दिल्ली सोंपकर बदाऊं चला गया। बहलोलसे और महमूदसे लडाई होती रही, निदान महमूद सन् ८६२ (संवत् १५१४।१५ में) मर गया। बेटा न था, भाई तख्त पर बैठा।

५ मुहम्मदशाह (महमूदका भाई)—इसने बहलोलसे सुलह कर ली, परन्तु फिर लड़ाई होने लगी और मुहम्मदशाह अपने भाइयों के झगड़ेमें मारा गया। ५ महीने राज्य किया। उसका भाई हुसेनशाह बादशाह हुआ।

६ हुसेनशाह—इससे और बहलोलसे भी बड़े २ युद्ध हुए, निदान बहलोलने जोनपुर लेकर अपने बड़े बेटे बारबुकको दे दिया। हुसेनशाह विहारमें चलागया।

७ बारबुकशाह लोदी—सन् ८९४ (संवत् १५४५।४६) में बहलोल

मरा और छोटा बेटा निजामखां दिल्लीमें बादशाह हुआ और सुलतान सिकंदर कहलाया। बारबुक उससे लड़ने गया और हारा। सिकंदरने जोनपुर तो उसे फेर दिया, परन्तु मुल्कमें अपने हाकिम बैठा दिये, जिनके जुलमोंसे जोनपुर राज्यके आश्रित राजोंने तंग होकर सुलतान हुसेनको बुलाया। वह सन् ८९५ (संवत् १५४६।४७) में आकर सिकंदरसे लड़ा, परन्तु हारकर बंगालेमें चला गया। सिकंदर अपने बेटे जलालखांको जोनपुरमें बैठाकर चला गया।

८ जलालशाह लोदी—७ जीकाद सन् ९२३ (मंगसर सुदी ८ संवत् १५७३) को सिकंदर मरा और जलालशाहका भाई इब्राहीमशाह दिल्लीके तख्तपर बैठा, उसने जलालशाहको निकालकर जोनपुर दरियाखां लोहानीको दे दिया।

९ दरियाखांलोहानीके समयमें बाबर बादशाहने सुलतान इब्राहीमको मारकर दिल्ली लेली। उसी समय दरियाखां भी मर गया।

१० बहादुरशाह (दरियाखांका बेटा)-बापके पीछे बादशाह हो गया। क्योंकि पठानोंकी बादशाही दिल्लीसे जाती रही थी। बाबर बादशाहने शाहजादे हुमायूंको भेजा, उसने बहादुरशाहको निकालकर हिंदूबेगको जोनपुरमें रख दिया। उसके पीछे बाबाबेग उसका बेटा जोनपुरमें हाकिम हुआ।

११ बाबाबेगको, शेरखांसूरने, हुमायूं बादशाहसे बादशाही लेनेके पीछे जोनपुरसे निकाल दिया और अपने बेटे आदिलखांको जोनपुरका हाकिम बनाया।

१२ आदिलखांसूर-१२ रबीउल अव्वल सन् ९५२ (जेठ सुदी १४ संवत् १६०२) को शेरशाहके मरनेपर सलीमशाह तख्तपर बैठा, उसने आदिलखांको बुलाकर बयानेका किला दे दिया और जोनपुर खालसे कर लिया। फिर जोनपुर स्वतंत्र राज्य नहीं हुआ, पठानोंके पीछे मुगलोंके राज्यमें भी वहां हाकिम रहते रहे।

यह जोनपुरका संक्षिप्त इतिहास है। जिन्होंने इतिहास नहीं देखा है,

वे यही जानते हैं कि, जोनपुर जोनाशाह (मुहम्मद तुगलक) ने बसाया था, और यही सुनसुनाकर बनारसीदासजीने भी पहिलाबादशाह जोना-शाह लिखा है। यह बात कविवरके ३०० वर्ष पहिले की थी, और सो भी किसी इतिहासके आधारसे नहीं लिखी थी, पुराने लोगोंसे पूछ पाछके लिखी थी, उसमें इतनी भूल होना संभव है। उन्होंने इस विषयमें स्वतः सशंकित चित्त होकर लिखा है।

"हुते पूर्व पुरुषा परधान। तिनके वचन सुनें हम कान।
बरनी कथा यथाश्रुत जेम। मृषादोष नहिं लागे एम" ३७८॥
(अर्धकथानक)

इस प्रकार प्रथम बादशाह जौनाशाह नहीं, किन्तु फीरोजशाहको सम-झना चाहिये। दूसरा जो बबक्करशाह लिखा है, वह फीरोजशाह बार-बुक है। बारबुकका अपभ्रंश बबक्करशाह हो सक्ता है।

तीसरा—जो सुरहर सुलतान लिखा है, वह ख्वाजाजहां है, जिस का नाम मलिक सरवर था, सरवर ही गलतीसे सुरहर लिखा गया है।

चौथा—जिसको दोस्तमोहम्मद लिखा है, वह मुबारिकशाह है, जिसका नाम करनफल था। शायद जोनपुरवाले उसे दोस्तमुह-म्मद कहते थे।

पांचवां—जिसको शाहनिजाम लिखा है, उसका पता मुबारिकशाह और इब्राहीमके बीचमें कुछ नहीं लगता।

छट्ठा—जो शाहब्राहीम लिखा है, वह इब्राहीमशाह ही है।

सातवां—जिसे शाहहुसेन लिखा है, वह इबराहीमशाहके बेटे महमूद और पोते मुहम्मदशाहके पीछे हुआ था। बीचके इन दो बादशाहोंको बनारसीदासजीने नहीं लिखा है।

आठवां—जो गाजी लिखा है, वह सैय्यद बहलोललोदी है। शाहहुसेनके पीछे वही जोनपुरका मालिक हुआ था।

नवमाँ जो बख्यासुलतान लिखा है, यह बहलोलका बेटा बारबुक-शाह हो सक्ता है। जिसे बापने जोनपुरका तख्त दिया था।

बालक खरगसेन अपने नानाके घर सुखसे रहने लगा। आठ वर्षकी उमर होने पर उसने पढना प्रारंभ किया और थोड़े ही दिनोंमें हिसाब किताब चिट्ठीपत्रीकेकार्यमें व्युत्पन्न हो गया। योग्य वय होनेपर नानाके साथ सोना चांदी और जवाहिरातका व्यापार सीखने लगा और व्यापार कुशल होनेपर ग्रामान्तरोंमें भी आने जाने लगा। एक दिन खरगसेनने अपनी मातासे मंत्र लेकर नानाकी सम्मतिके बिना ही एक घोडेपर सवार होकर बंगालकी ओर कूच कर दिया, और वह कई मंजिलें तय करके इच्छित स्थानपर जा पहुंचा। उस समय

इस तरह बनारसीदासजीके लेखकी विधि मिल सकती है।

१ जोनपुरमें जो बनारसीदासजीने जवाहिरातका व्यापार होना लिखा है, सो भी सही है क्योंकि जोनपुर आगरे और पटनेके बीचमें बड़ा भारी शहर था, और जब वहां बादशाही थी, उस वक्त तो दूसरी दिल्ली ही बना हुआ था, ४ कोसमें बसता था।

इलाहाबाद बसनेके पीछे जोनपुर उसके नीचे कर दिया गया था।

आईने अकबरीमें जोनपुरके १९ मुहाल लिखे हैं, परन्तु अब अंगरेजी अमलदारीमें जोनपुर ५ ही तहसीलोंका जिला रह गया है।

जोनपुरकी बस्ती अकबरके समयमें कितनी थी, इसका पता जुगराफिये (भूगोल) जोनपुरसे मिलता है। उसमें लिखा है कि, अकबर बादशाहने गरीबोंकी आंखोंका इलाज करनेकेलिये एक हकीमको भेजा था, वह गरीबोंका मुफ्त इलाज करता था, और अमीरोंको मोल लेकर दवा देता था। तो भी हजार पंद्रहसौ रुपये रोजकी उसकी आमदनी हो जाती थी। एक दिन उसके गुमाश्तोंने जब उससे कहा कि, आज तो ५००, का ही सुरमा बिका है, तब उसने एक बड़ी आह भरी और कहा हाय! जोनपुर वीरान (ऊजड़) हो गया। फिर वह उसी दिन आगरेको चला गया।

बंगालमें सुलेमान[1] सुलतान राज्य करता था। सुलेमान अपने साले लोदीखानपर बहुत प्यार करता था, और उसे अपने पुत्रके स्थानापन्न मानता था। सुलेमानके कोई पुत्र नहीं था। उक्त लोदीखानके दीवानका नाम धन्नाराय श्रीमाल था। दीवान बड़ा उदारशील और कृपालु था। उसका आश्रयपाकर ५०० श्रीमाल वहां निवास करते थे। खरगसेनजी इन्हींकी सेवामें जाकर उपस्थित हुए। खरगसेनकी आयु अब भी छोटी थी। परन्तु वाक्पटुता और विचारशीलता देखके थोड़े दिन अपने आश्रित रखके दीवान साहिबने इन्हें चार परगनोंका पोतदार बना दिया। खरगसेन परगनोंमें जाके अमलदारी करने लगे। छह सात महीनेके पीछे दीवान साहिबने शिखरजीकी यात्राका संघ चलाया, और कुछ दिनोंमें वे यात्रासे लौटके घर आ गये। उस दिन सामायिक करते २ उदरशूल उत्पन्न हुआ, और तत्काल ही उनका प्राण पखेरू उड़ गया। कविवर कहते हैं—

पुण्यसंजोग जुरे रथपायक, माते मतंग तुरंग तबेले।
मानि विभौ अगयो सिरभार, कियो विसतार परिग्रह लेले॥
बंध बढाय करी थिति पूरन, अन्त चले उठि आप अकेले।
हारि हमालकी पोटसी डारिकै, और दिवालकी ओट व्है खेले

१ सुलेमान किरानी जातिका पठान था। वह हिजरीसन् ९५६(संवत् १६०६ से सन् ९८१ (संवत् १६३०)तक बंगालका स्वतंत्र हाकिम रहा था। उसकी राजधानी गौड़में थी, जो बंगालका एक पुराना शहर था और जिसपरसे बंगालको अब तक गौडबंगाल कहते हैं, और पहिले गौडदेश भी कहते थे। कविवरने संवत् १६२५ में बंगालका राजा शाह-सुलेमानको लिखा है, सो बहुत ठीक है। पीछे सन् ९८३ (संवत् १६३२) में अकबरकी फौजने सुलेमानके बेटे दाऊदखांसे बंगाला और उड़ीसा छीन लिया।

खरगसेन अपनी मातासे नरवरकी विपत्तिका हाल सुन चुके थे, रायसाहबके शरीरपात होनेपर उन्हें वही बात स्मरण हो आई, इसलिये जो कुछ जमा पूंजी साथमें थी; उसे लेकर एक दुःखी दरिद्रीका वेष बनाकर वहांसे निकल पड़े। कई दिनमें मार्ग चलके जौनपुरमें आये। माताके चरणोंकी पूजा की। जो कुछ द्रव्य था, उन्हें सौंप दिया और विपत्तिका कारण बतलाया। इस समय खरगसेनकी वय केवल १४ वर्षकी थी, माताने आंसू भरके रो दिया।

चार वर्ष जौनपुरमें रहके संवत् १६२६ में खरगसेन आगरेमें व्यापार निमित्त आये। सुन्दरदास पीतिया नामक किसी व्यापारीके सांझेमें व्यापार किया। उक्त सांझीदारसे ऐसी मित्रता हुई कि, दोनोंकी प्रीति देखकर लोग दोनोंको पिता पुत्र समझते थे। चार वर्षके सांझेमें बहुतसा द्रव्य एकत्र किया; और पांचवें वर्ष माता और गुरुजनोंके प्रयत्नसे मेरठनगरके सूरदासजी श्रीमालकी कन्याके साथ खरगसेनका विवाह हो गया। विवाह होनेके पश्चात् फिर अर्गलपुर (आगरा) आकर व्यापार में दत्तचित्त हो गये।

इसी समय अर्थात् संवत् १६२१ में मित्रवर्य सुन्दरदासजी अपनी भार्याके सहित परलोकयात्रा कर गये, और अपने पीछे मात्र एक पुत्री छोड गये। खरगसेनजी उदारचरित्र पुरुष थे, उन्होंने अपनी ओरसे बड़े साजबाजसे मित्रकी पुत्रीका विवाह कर दिया, और पंचोंके सन्मुख सुन्दरदासजीकी सम्पूर्ण सम्पत्ति पुत्रीको सौंप दी।

संवत् १६३३ में खरगसेनने आगरा छोड़ दिया और वे विपुल सम्पत्तिके अधिकारी होकर जौनपुरमें रहने लगे। पीछे जौनपुरके प्रसिद्ध

धनिक लाला रामदासजी अग्रवालके साथ सांझेमें जवाहिरात का धंदा करने लगे।

संवत् १६३९ में एक पुत्र उत्पन्न हुआ, परन्तु आठ दश दिन जीवित रहके अपनी बाट लग गया। पुत्रके मरनेका खरगसेनको बहुत शोक हुआ। थोड़े दिनके पीछे पुत्रलाभकी इच्छासे वे रोहतकपुरकी सती की यात्रा करनेको सकुटुम्ब गये। परन्तु भाग्यके फेरसे मार्गमें चोरोंने सर्वस्व लूट लिया, एक फूटी कौड़ी भी पास में नहीं रही। दम्पती बड़ी कठिनतासे अपने शरीरको लेकर घर लौटके आये। कविवर कहते हैं—

गये हुते मांगनको पूत। यह फल दीनों सती अऊत।
प्रगट रूप देखें सब लोग। तऊ न समुझैं मूरखलोग ॥

खरगसेनके नाना मदनसिंघजी बहुत वृद्ध हो गये थे, इसलिये उन्होंने सब कार्य खरगसेनको सौंप दिया था, और आप शान्तिभावसे कालयापन करते थे। संवत् १६४१ में शान्तिभावके साथ उनका शरीर छूट गया। नानाकी मृत्युके दो वर्षके पश्चात् अर्थात् सवत् १६४३ में खरगसेनजी पुत्रलाभकी इच्छासे फिर सतीकी यात्राको गये। अबकी वार कुशल हुई कि, आनन्दसे लौट आये। और थोड़े दिनके पीछे उनकी मनःकामना भी पूर्ण हो गई। आठ वर्षके पश्चात् पुत्रका मुंह देखा, इस लिये सविशेष आनन्द मनाया गया। दम्पति सुखसमुद्रमें गोते लगाने लगे। पुत्रका जन्मकाल और नाम नीचेके पद्यसे प्रगट होगा,—

संवत् सोलह सौ तेताल। माघमास सितपक्ष रसाल।
एकादशी वार रविनन्द। नखत रोहिणी वृषको चन्द ॥

रोहिनि त्रितिय चरन अनुसार। खरगसेन घर सुत अवतार।
दीनों नाम विक्रमाजीत। गावहिं कामिनि मंगलगीत॥

पुत्र जब छह सात महीनेका हुआ, तब खरगसेन सकुटुम्ब पार्श्वनाथकी यात्राको काशी गये। भगवत्की भावपूर्वक पूजन करके उनके चरणोंके समीप पुत्रको डाल दिया और प्रार्थना की,—

चिरंजीवि कीजे यह बाल। तुम शरणागतके रखपाल।
इस बालकपर कीजे दया। अब यह दास तुम्हारा भया ८८

प्रार्थना करते समय मन्दिरका पुजारी वहां खड़ा था। उसने थोड़ी देर कपटरूप पवनसाधने और मौनधारण करनेके पश्चात् कहा कि, पार्श्वनाथ भगवानका यक्ष मेरे ध्यानमें प्रत्यक्ष हुआ है, उसने मुझसे कहा है कि, इस बालककी ओरसे कोई चिन्ता न करनी चाहिये। परन्तु एक कठिनता है, सो उसके लिये कहा है कि,—

जो प्रभु पार्श्वजन्मको गांव। सो दीजे बालकको नांव॥९१॥
तो बालक चिरजीवी होय। यह कहि लोप भयो सुर सोय॥

खरगसेनने पुजारीके इस मायाजालको सत्य समझ लिया और प्रसन्न होकर पुत्रका नाम बनारसीदास रख दिया। यही बनारसीदास हमारे इस चरित्रके नायक हैं।

बाल्यकाल।

हरषित कहै कुटुम्ब सब, स्वामी पास सुपास।
दुहुंको जनम बनारसी, यह बनारसीदास॥९२॥

बालक बड़े लाड़ चावके साथ बढ़ने लगा। मातापिताका पुत्र पर निःसीम प्रेम था। एक पुत्रपर किस मातापिताका प्रेम नहीं होता?

संवत् १६४८ में पुत्र संग्रहणीरोगसे ग्रसित हुआ। मातापिताके शोकका ठिकाना न रहा। ज्यों त्यों मंत्र यंत्र तंत्रोंके प्रयोगोंसे संग्रहणी उपशान्ति हुई कि, शीतलाने आ घेरा। इस प्रकार १ वर्षके लगभग बालक अतीव कष्टमें रहा। शीतला शान्त होनेपर उक्त बालककी पीठपर एक बालिकाका जन्म हुआ।

संवत् १६५० में बालकने चटशालामें जाकर पांडे रूपचन्दजीके पास विद्या पढ़ना प्रारंभ किया। पांडे रूपचन्दजी अध्यात्मके विद्वान् और प्रसिद्ध कवि थे। उनका बनाया हुआ पंचमंगलपाठ एक हृदयग्राही श्रेष्ठ काव्य है। सारे जैनसमाजमें इसका प्रचार है। जैनी मात्रको यह कंठस्थ रहता है। बालककी बुद्धि बहुत तीक्ष्ण थी, वह दो तीन वर्षमें ही अच्छा व्युत्पन्न हो गया।

जिस समयका यह इतिहास है, उस समय मुसलमानोंका प्रतापसूर्य मध्याह्नमें था, उनके अत्याचारोंके भयसे देशमें बालविवाहका प्रचार विशेषतासे हो रहा था। अतएव ९ वर्षकी वयमें अर्थात् संवत् १६५२ में खैराबादके शेठ कल्यानमलजीकी कन्याके साथ बालककी सगाई कर दी गई। संवत् १६५३ में एक बड़ा भारी दुष्काल पड़ा, लोग अन्नकेलिये बेहाल फिरते दिखाई दिये। अतः इस वर्ष विवाह नहीं हुआ। जब दुष्काल क्रम २ से शांत हो गया, तब संवत् १६५४ में माघ सुदी १२ को बनारसीदासकी बरात खैराबादको गई। विवाह शुभमुहूर्तमें आनन्दके साथ हो गया। बरात लौटके घर आ गई। जिस दिन बरात घर आई उसदिन खरगसेनजीके एक पुत्रीका और भी जन्म हुआ, और उसी दिन वृद्धा नानीने कूच कर दिया। कवि कहते हैं,—

नानीमरन सुताजनम, पुत्रवधू आगौन।
तीनों कारज एक दिन, भये एक ही भौन ॥ १०७॥

यह संसारविडम्बना, देख प्रगट दुख खेद ।
चतुरचित्त त्यागी भये, मूढ़ न जानहिं भेद ॥ १०८ ॥

उस समय विवाह होनेपर बरातके साथ ही दुलहिन श्वसुरालयमें आती थी, उसी प्रथाके अनुसार दो महीने वधू जौनपुरमें रही, पश्चात् अपने काकाके साथ बिदाई हुई, पित्रालयको चली गई।

एक बड़ी भारी विपत्ति आई । जौनपुरके हाकिम कुलीचने

१ कुलीच तुर्की भाषाका शब्द है, इसका अर्थ मालूम नहीं है। जिस नवाब कुलीचका जुल्म जौहरियोंपर बनारसीदासजीने लिखा है, उस कुलीचखांका अकबरनामे और जहांगीरनामेके सैकड़ों पत्रे उलट पुलट करनेसे इतना पता लगा है कि, कुलीचखां इंदूजानका रहनेवाला जानीकुरबानी जातिका एक तुर्क था। इंदूजान तूरान देशका एक शहर है। जो अब शायद रूस या अमीरकाबुलके कब्जेमें है।

कुलीचखांके बाप दादा मुगल बादशाहोंके नौकर थे। कुलीचखांको अकबरबादशाहने सन् १७ जलूशी (संवत् १६२९) में सूरतकी किलेदारी, और सन् २२ (संवत् १६३५) में गुजरातकी सूबेदारी दी थी। सन् २५ (संवत १६३७) में उसे वजीर बनाया। सन् २८ (संवत् १६४०) में फिर गुजरातको भेजा और सन् ९९७ (संवत् १६४६) में राजा टोडरमलके मरनेपर वह दीवान बनाया गया, सो सन् १००२ (संवत् १६५०) तक रहा। इसी बीचमें सन् १००० (संवत् १६४८) में जौनपुर भी उसकी जागीरमें दे दिया गया। सन् १००५ (संवत् १६५३) में बादशाहने शाहजादे दानियालको इलाहाबादके सूबेमें भेजा, तो कुलीचखांको उसका अतालीक (शिक्षक) करके साथ किया। उसकी बेटी शाहजादेको व्याही थी।

फिर सन् ४८ (१६५६) में आगरेकी, और सन् ४९ (१६५८) में लाहौर तथा काबुलकी सूबेदारी उसको दी गई।

सम्पूर्ण जौहरियोंको पकड़वाके बुलवाया, और एक बड़ा भारी नग मांगा, परन्तु उस समय जौहरियोंके पास उतना बड़ा जितना हाकिम चाहता था, कोई नग नहीं था। इसलिये बेचारे नहीं दे सके। इसपर हाकिमका क्रोध और भी उबल उठा। उसने सबको एक कोठरीमें कैद कर दिये। और जब कुछ फल नहीं हुआ तब सबेरे सबको कोड़ोंसे (दुर्रोंसे) पीट २ के छोड़ दिया। इस अत्याचारसे अतिशय व्यथित होकर सम्पूर्ण जौहरियोंने सम्मतिपूर्वक नगर छोड़ दिया और सब यत्र तत्र चले गये। खरगसेनजीने भी अपने परिवारसहित पश्चिमकी ओर गमन किया। हाय! उस राज्यमें कैसा अन्याय था!।

गंगापार कड़ामाणिकपुरके निकट शाहजादपुर नगर है। वहां तक आते २ मूसलाधार पानी बरसने लगा, घोर अंधकार छा गया। मार्ग कीचड़से पूर्ण हो गये, एक पैंड़ चलना भी कठिन हो गया। लाचार शाहजादपुरकी सरायमें डेरा डालना पड़ा। उस

सन् १०१४ (संवत् १६६२)में जहांगीर बादशाहने उसको गुजरातमें बदल दिया, और सन् १०१६ (संवत् १६६२) में वह फिर लाहोर भेजा गया।

सन् ६ जहांगीरी (संवत् १६६९) में काबुल और अफगानिस्थानके बंदोबस्तपर मुकर्रर होकर गया, जहां सन् १०२३ (संवत् १६७१) में मर गया।

बनारसीदासजीने जो संवत् १६५५ में कुलीचखांका जोनपुरमें होना लिखा है, सो सही है। क्योंकि प्रथम तो जोनपुर कुलीचखांकी जागीरमें ही था। दूसरे संवत् १६५३ में उसकी तईनाती भी इलाहाबादके सूबेमें हो गई थी, जिसके नीचे जोनपूर भी था।

समयके कष्टसे कातर होकर खरगसेन दीन अनाथोंकी नाई रोदन करने लगे। उन्हें स्त्री पुत्र कन्या और विपुलसम्पत्तिकी रक्षा असंभव प्रतीति होने लगी। परन्तु उदय अच्छा था। उस नगरमें करमचन्द नामक माहुरवणिक था। वह एक परमसज्जन पुरुष था, और खरगसेनकी पहिचानका था। वह इनकी विपत्तिकी टोह पाकर दौड़ा हुआ आया, और प्रार्थना करके खरगसेनको सपरिवार अपने गृह ले गया। करमचन्दने बड़े आग्रहसे अपना धनधान्यपूर्णगृह खरगसेनको सौंप दिया और आप दूसरे गृहमें रहने लगा। खरगसेनने गृहकी धान्यादि प्रचुरसामग्री न लेनेके लिये बहुत प्रयत्न किये, परन्तु सच्चे मित्रके प्रेमके आगे उनके आग्रहका कुछ फल नहीं हुआ। कविवर कहते हैं—

घन बरसै पावस समै, जिन दीनों निजभौन।
ताकी महिमाकी कथा, मुखसों बरनै कौन? ॥१२८॥

शाहजादपुरमें खरगसेन सपरिवार सुखसे रहने लगे, और मित्रके अगाध प्रेमका उपभोग करने लगे। पूर्व की विपत्ति सर्वथा भूल गये। इस भूलनेपर अध्यात्मके रसिया कविवरने कहा है,—

वह दुख दियो नवाब कुलीच।
यह सुख शाहजादपुर बीच॥
एकदृष्टि बहु अन्तर होय।
एकदृष्टि सुख दुख सम दोय॥
जो दुख देखै सो सुख लहै।
सुख भुंजै सोई दुख सहै॥
सुखमें मानै मैं सुखी, दुखमें दुखमय होय।
मूढ़पुरुषकी दृष्टिमें, दीसै सुख दुख दोय॥

ज्ञानी संपति विपतिमें, रहै एकसी भांति।
ज्यों रवि ऊगत आथवत, तजै न राती कांति॥१२०॥

खरगसेनजी शाहजादपुरमें १० महीने रहकर प्रयागको जिसे उस समय इलाहीवास[1] भी कहते थे और जो त्रिवेणीके तटपर बसा है, व्यापारके लिये गये। परन्तु कुटुम्बको शाहजादपुरमें ही छोड गये। उस समय अकबरका शाहजादा (जहांगीर) प्रयागमें ही रहता था।

पिताके चले जानेपर इधर बनारसीदासने कौड़ियां बट्टे से खरीदकर बेचनेका व्यापार सीखना शुरू किया। प्रतिदिन टके दो टके कमाना और चार छह दिन पीछे अपनी दादीके सम्मुख लाकर रखना, ऐसा नियम किया। कौडियोंकी कमाईको भोली दादी अपने पौत्रकी प्रथम कमाई समझकर उसकी शीरानी और निकूती लाकर सतीके नामसे बाँट देती थी। दादीके भोलेपनके विषयमें कविवरने बहुत कुछ लिखा है। उसका सारांश यह है कि "हमारी दादीके मोह और मिथ्यात्वका ठिकाना नहीं था, वे समझती थीं, कि यह बालक (बनारसी) सती जी की कृपासे ही हुआ है। और इसी विचारमें रात्रि दिवस मग्न रहती थीं। रात्रिको नित्य नये २ स्वप्न देखती थीं, और उन्हें यथार्थ समझके तदनुसार आचरण भी करती थीं।"

तीन महीनेके पीछे खरगसेनजीका पत्र आया कि, सबको लेकर फतहपुर चले आओ। ऐसा ही हुआ, दो डोली किरायेसे करके और सब सामान लेके बनारसी पिताकी आज्ञानुसार फतहपुर आ गये। फतहपुरमें दिगम्बरी ओसवाल जैनि-

---

१ इलाहाबाद।

योंका बड़ा समूह था, उनमें वासूसाहजी मुख्य थे। वासूसाह अध्यात्मके अच्छे विद्वान् थे। इनके पुत्र भगवतीदासजीने बनारसीदासजीका सत्कार किया, और एक उत्तम स्थान रहनेको दिया। खरगसेनजीका कुटुम्ब फतहपुरमें आनन्दसे रहने लगा परन्तु कुछ दिन पीछे ही उन्होंने पत्र लिखके बनारसीदाससहित इलाहाबाद बुला लिया। इलाहाबादमें उस समय जवाहिरातका व्यापार अच्छा चटका था। दानाशाह सरकारकी जवाहिराती फरमायशको खरगसेन ही पूरी करते थे। पितापुत्र चार महीने इलाहाबाद रहे, पश्चात् फतहपुर आके कुटुम्बसे मिले। इसी समय खबर लगी कि, नवाबकुलीच आगरेको चला गया है, जौनपुरमें सब

१ ये भगवतीदासजी कविता भी करते थे, परन्तु ब्रह्मविलास के निर्माता ये नहीं हैं। क्योंकि ब्रह्मविलासके कर्ताके पिताका नाम लालजी था, और इनके पिताका नाम वासूसाह था। ब्रह्मविलासके कर्ता आगराके रहनेवाले थे, और ये जौनपुरके थे। इसके अतिरिक्त ब्रह्मविलासग्रन्थकी रचना संवत् १७५० में हुई है और यह समय १६५० का है। पुरुषका इतना बड़ा जीवन होना असम्भव है। नाटक समयसारके अन्तमें भी एक भगवतीदासका नाम आया है, जो आगरेमें रहते थे, और उक्त कविवरके पांच मित्रोंमें अन्यतम थे।

रूपचन्द पंडित प्रथम, दुतिय चतुर्भुजनाम।
तृतिय भगवतीदास नर, कँवरपाल गुणधाम॥ ११॥
धर्मदास ये पांचजन, × × × × ×

अथवा जौनपुरके भगवतीदासजी ही कदाचित् ये हों, और आगरेमें आ रहे हों।

२ दानाशाह कौन? कहीं शाहदानियाल तो नहीं जो अकबर बादशाहका छोटा शाहजादा था और इलाहाबादमें कुछ दिनों तक रहा था। कुलीचखां उसका अतालीक (गार्डियन) था।

प्रकार शांति है । खरगसेनजी सकुटुम्ब जौनपुर चले आये । अन्य जौहरी आदि जो भाग गये थे, वे भी सब आ गये थे, और जौनपुर फिर ज्यों का त्यों आबाद हो गया था । सब लोग अपने २ कृत्यमें लग गये, और प्रायः एक वर्षतक जौनपुरमें शान्ति रही। यह समय संवत् १६५६ का था। इसके थोड़े दिन पीछे ही एक नवीन विपति आई ।

अकबरका शाहजादा सलीमशाह[1] जो पीछे जहांगीरके नामसे विख्यात हुआ, कोल्हूवनकी आखेटको निकला था । कोल्हूवन जौनपुरके पास है । जौनपुरके नूरमसुल्तानके[2] पास इसी समय शाहीफरमान आया कि, शाहजादा तुम्हारे तरफ आ रहा है, कोई ऐसा उपाय करो, जिसमें उसका कोल्हूवनका जाना बन्द हो जावे । नूरमसुल्ताननें शाहीफरमान शिरपर चढ़ाया, और एक विचित्र उपाय बनाया । जहां तहांके सब मार्ग रोक दिये । शहरके आवागमनके दरवाजे बन्द करा दिये । गोमतीमें नौकायें चलाना बन्द करा दी, और आप गढ़में जाके बैठ गया। बुर्जोपर तोपें चढवा दीं । बन्दूक गोलीबारूदोंका भंडार खोल दिया । इस प्रकार विग्रहका ठाठ देखके प्रजाने भागना प्रारंभ किया । कुछ समझदार धनाढ्य लोगोंने मिलकर सुलतानसे प्रार्थना की, परन्तु उसका कुछ फल नहीं हुआ, इसलिये वे लोग भी भागे । और थोड़े ही समयमें वह महानगर ऊजड़ हो गया । खरगसेनजी भी सकुटुम्ब

---

१ सुलतान सलीमको बापने ६ मुहर्रम सन १००८ (आसोजवदी १४ संवत् १६५५) को राना अमरसिंहके ऊपर जानेका हुक्म दिया था, मगर वह बागी होकर इलाहाबाद चला गया और फिर बागी ही रहा ।

२ नूरमसुलतान कुलीचके पीछे जोनपुरका हाकिम हुआ था ।

भागनेवालोंके साथी हुए, और लछमनपुर नामक ग्राममें चौधरी लछमनदासजीके आश्रयमें जा ठहरे और विपत्तिके दिन गिनने लगे।

सलीम शाहज़ादा जौनपुरके पास आ पहुंचा, परन्तु जब गोमती उतरने लगा, और यह विग्रह देखा, तो कुछ चिंतित हुआ और अपने वकील लालबेगको नूरमसुलतानके पास भेजा। वकीलने सुलतानके पास जाकर दश पांच नर्म गर्म बातें कहीं और शाहज़ादेके पास उसे ले आया। नूरमसुलतान शाहज़ादेके पैरोंपर पड़ गया, तब शाहज़ादेने गुनह माफ करके अभयदान दिया। नगरमें फिर शान्ति हो गई, भागे हुए लोग पुनः आ गये। खरगसेनजी भी ६-७ दिन लछमनपुरमें रहकर लौट आये, और अपने व्यवसायमें निरत हो गये।

---

१ यह विग्रह क्यों किया गया? इसका फल क्या हुआ? और शाहज़ादा कैसे मान गया? तुजकजहांगीरीकी भूमिकामें जो हाल जहांगीर बादशाहकी युवराजावस्थाका लिखा है, उससे इन प्रश्नोंका समाधान हो सकता है। उसमें लिखा है कि, तारीख ६ सफर सन् १००७ (आगेजवदी १४ संवत् १६५५) को अकबर बादशाह तो दक्खन फतह करनेके लिये गये और अजमेरका सूबा शाहसलीमको जागीरमें देकर रानाको नष्ट करनेका हुक्म दे गये। शाहकुलीखां महरम और राजा मानसिंहकी नोकरी इनके पास बोली गई। बंगालेका सूबा जो राजाको सौंपा हुआ था, राजा अपने बड़े बेटे जगतसिंहको सौंपकर शाहकी खिदमतमें रहने लगा।

शाहसलीमने अजमेर आकर अपनी फौज रानाके ऊपर भेजी और कुछ दिनों पीछे आप भी शिकार खेलते हुए, उदयपुरको गये, जिसको राना छोड़ गया था, और सिपाहियोंको पहाड़ोंमें भेजकर रानाके पकड़नेकी कोशिश करने लगे।

यहां खुशामदी और स्वार्थी लोग जो नीचे नहीं बैठा करते हैं, इनके कान भरा करते थे कि, बादशाह तो दक्खनके लेनेमें लगे हैं और वह मुल्क एकाएकी हाथ आनेवाला नहीं है; और वे भी वगैर लिये पीछे आनेवाले नहीं हैं। इसलिये हजरत जो यहांसे लौटकर आगरेसे परेके आबाद और उपजाऊ परगनोंको ले लें, तो बड़े फायदेकी बात हो। बंगालेका फिसाद भी कि जिसकी खबरें आ रही हैं और जो वगैर जाने राजा मानसिंहके मिटनेवाला नहीं है, जल्द दूर हो जायगा। यह बात राजामानसिंहके भी मतलबकी थी, क्योंकि उसने बंगालेकी रखवालीका जिम्मा ले रक्खा था, इस वास्ते उसने भी हांमें हां मिलाकर लौट चलनेकी सलाह दी।

शाहसलीम इन बातोंसे रानाकी मुहिम अधूरी छोडकर इलाहाबादको लोट गये। जब आगरेमें पहुंचे तो वहांका किलेदार कुलीचखां पेशवाईको आया, उस वक्त लोगोंने बहुत कहा कि, इसको पकडलेनेसे आगरेका किला जो खजानोंसे भरा हुआ है, सहजमें ही हाथ आता है, मगर इन्होंने कुबूल न करके उसको रुखसत कर दिया और यमुनासे उतरकर इलाहाबादका रस्ता लिया। इनकी दादी हौदेमें बैठकर इनको इस इरादेसे मना करनेके लिये किलेसे उतरी थी कि, ये नावमें बैठकर जलदीसे चल दिये और वे नाराज होकर लोट आईं।

१ सफर सन् १००९ (द्वि० सावन सुदी ३ संवत् १६५७) को शाहसलीम इलाहाबादके किलेमें पहुचे और आगरेसे इधरके बहुतसे परगने लेकर अपने नौकरोंको जागीरमें दे दिये। विहारका सूबा कुतबुद्दीनखांको दिया। जौनपुरकी सरकार लालाबेगको, और कालपीकी सरकार नसीमबहादुरको दी। घनसूर दीवानने तीन लाख रुपयेका खजाना विहारके खालिसेमेंसे तहसील करके जमा किया था, वह भी उससे ले लिया।

इससे जाना जाता है कि शाहसलीमने जो लालाबेगको जौनपुर दिया था, नूरमसुलतान लालाबेगको लेने नहीं देता होगा;

बनारसीदासजीकी वय इस समय १४ वर्ष की हो चुकी थी, बाल्यकाल निकल गया था, और युवावस्थाका प्रारंभ था। इस समय पं० देवदत्तजीके पास पढना ही उनका एक मात्र कार्य था। धनंजयनाममालादि कई ग्रन्थ वे पढ चुके थे। यथा—

पढी नाममाला शतदोय। और अनेकारथ अवलोय।
ज्योतिष अलंकार लघुकोक। खंडस्फुट शत चार श्लोक॥

यौवनकाल।

युवावस्थाका प्रारंभ बहुत बुरा होता है, अनेक लोग इस अवस्थामें शरीरके मदसे उन्मत्त होकर कुलकी प्रतिष्ठा संपति संतति आदि सबका चौका लगा देते हैं। इस अवस्थामें गुरुजनोंका प्रयत्न मात्र रक्षाकर सक्ता है, अन्यथा कुशल नहीं होती। हमारे चरित्रनायक अपने माता पिताके इकलौते लडके थे, इसलिये माता-पिता और दादीका उनपर अतिशय प्रेम होना स्वाभाविक है। सो असाधारण प्रेमके कारण गुरुजनोंका पुत्रपर जितना भय होना चाहिये, उतना बनारसीदासजीको नहीं था। फिर क्या था?

तजि कुलकान लोककी लाज।
भयो बनारसि आसिखबाज॥ १७०॥

और—

करै आसिखी धरित न धीर।
दरदवन्द ज्यों शेख फकीर
इकटक देख ध्यानसों धरै।
पिता आपुनेको धन हरै॥ १७१॥

जिसपर शाहसलीम शिकारका बहाना करके गया था, फिर नूरमबेगके हाजिरहोनेपर लालाबेगको यहां रख आया होगा।

१ शुद्ध शब्द इश्कबाज़ है।

चोरै चूनी माणिक मनी।
आने पान मिठाई घनी॥
भेजे पेशकशी हित पास।
आप गरीब कहावे दास॥ १७२॥

हमारे चरित्रनायक जिस समय इस अनंगरंगमें सराबोर हो रहे थे, उसी समय जौनपुरमें खडतरगच्छीय यति भानुचन्द्र-जीका आगमन हुआ। यति महाशय सदाचारी और विद्वान् थे, उनके पास सैकड़ों श्रावक आते जाते थे। एक दिन बनारसीदा-सजी अपने पिताके साथ, यतिजीके पास गये। यतिजीने इन्हें सुबोध देखकर स्नेह प्रगट किया। बनारसीदास प्रतिदिन आने जाने लगे। पीछे इतना स्नेह बढ गया कि, दिनभर यतिके पास ही पाठ-शालामें रहने लगे। केवल रात्रिको घर आते थे। यतिके पास पंच-संधिकी रचना, अष्टौन, सामायिक, पडिकोण (प्रतिक्रमण), छन्द-शास्त्र, श्रुतबोध, कोष और अनेक स्फुटश्लोक आदि विषय कंठस्थ पढे। आठ मूलगुण भी धारण कर लिये, परन्तु इश्क नहीं छूटा—यथा—

कबहूं आइ शब्द उर धरै।
कबहूं जाइ आसिखी करै।

---

१ यति भानुचन्द्रजी श्वेताम्बर थे, ऐसा जान पडता है। क्योंकि खडतरगच्छ श्वेताम्बरसम्प्रदायका ही है, और अष्टौन आदि विषय भी मुख्यतासे श्वेताम्बरीय हैं, जो कविवर ने उनके पास से पढे थे। परन्तु जान पड़ता है कि, उस समय दिगम्बर श्वेताम्बरोंमें आजकलके समान शत्रुभाव नहीं था।

ऐसी अशुभ दशा भई, निकट न आवै कोइ।
सासू और विवाहिता, करहिं सेव तिय दोइ ॥१२७॥

खैराबादमें एक नाई कुष्टरोगका धन्वन्तरि था। वह बनारसीकी टहल चाकरी और साथ ही औषधि करता था। उसने दो महीने जी तोड़ परिश्रम करके हमारे चरित्रनायकके राहुग्रसित शरीरको संसारके गगनमंडलपर पुनः निर्मल प्रकाशित कर दिया। नाईको यथोचित दान देकर स्वास्थ्यलाभ करके बनारसदासजी घरको लौटे। परन्तु साससुसरने अपनी लड़कीकी विदाई नहीं की। घर आके-

आय पिताके पद गहे, मा रोई उर ठोंकि।
जैसी चिरी कुरीजकी, त्यों सुतदशा विलोकि॥
खरगसेन लज्जित भये, कुवचन कहे अनेक।
रोये बहुत बनारसी, रहे चकित छिन एक॥१९५॥

दश पांच दिनके पश्चात्; फिर पाठशालामें पढ़नेको जाने लगे और—

"कै पढ़ना कै आसिखी, पहिली पकरी चाल।"

खरगसेनजी इसी समय व्यापारके निमित्त पटनेको चले गये। चार महीने बीत जानेपर बनारसीदासजी फिर ससुरालको गये, और भार्याको लेकर घर आ गये। अब आप गृहस्थ हो गये, इस कारण गुरुजन उपदेश देने लगे ...

गुरुजन लोग देहिं उपदेश।
आसिखबाज सुनें दरवेश॥
बहुत पढ़ैं बामन अरु भाट।
बनिक पुत्र तो बैठें हाट॥

बहुत पढ़ें सो माँगें भीख।

मानहु पूत! बड़ोंकी सीख ॥ २०० ॥

परन्तु गुरुजनोंके वचनवृन्दरूप ओसके कनके बनारसीके हृदय-कमलपर उन्मत्तताकी प्रवल वायुके कारण कब ठहरनेवाले थे? बढते हुए यौवन-पयोधिके प्रवाहको क्या कोई रोक सका है? सबका कहा सुना इस कानसे सुना और उस कानसे निकाल दिया, फिर हलकेके हलके हो गये। गुरुजीसे विद्या पढना और इश्कबाजी करना ये दो कार्य ही उन्हें सुखके कारण प्रतीत होते थे। मतिके अनुसार गति हुआ करती है। कुछ दिनके पीछे विद्या पढना भी बुरा जँचने लगा। ठीक ही है, विद्या और अविद्याकी एकता कैसी? संवत् १६६० में पढना छोड दिया। इस संवत् में आपकी बहिनका विवाह हुआ और एक पुत्रीने[1] जन्म लिया। पुत्री ६-७ दिन रहके चल बसी। विदाईमें पिताको बीमार करती गई। बनारसीदासजीको बडी भारी बीमारी लगी। बीस लंघनें करनी पडीं। २१ वें दिन वैद्यने और भी १०-५ लंघनें करानेकी बात कही, और यहां क्षुधाके मारे प्राण जाते थे, तब एक विचित्र रंग खेला, रात्रिको घर सूना पाकर आप आधसेर पूरी चुराके उडा गये!!। आश्चर्य है कि, वे पूरी आपको पथ्यका काम कर गईं, और आप शीघ्र ही निरोग हो गये। इसी संवत्में खरगसेनजीने एक बडा भारी व्यापार किया, जिसमें कि सौगुणा लाभ हुआ! सम्पत्तिसे घर भर गया।

संवत् १६६१ में एक संन्यासी देवता आये। उन्होंने बडे आदमीका लडका समझके बनारसीको फँसानेके लिये जाल वि-

---

१ इस पुत्रीका नाम टिप्पणीमें वीरबाई लिखा है।

छाया। जाल काम कर गया। बनारसी फांस लिये गये। सन्यासीने रंग जमाया कि, मेरे पास एक ऐसा मंत्र है कि, यदि कोई उसे एक वर्षतक नियमपूर्वक जपै, तथा किसीपर प्रगट न करै, तो साल बीतनेपर गृहद्वारपर प्रतिदिन एक सुवर्णमुद्रा पडी हुई पावै। इश्कबाजोंको द्रव्यकी बहुत आवश्यकता रहती है। इस कल्पद्रुम मंत्रकी बातसे उनकी लाल टपक पडी। लगे सन्यासीकी सेवा सुश्रूषा करने, उधर सन्यासी लगा पैसे ठगनेकी बातें बनाने। निदान भरपूर द्रव्य खर्च करके सन्यासीसे मंत्र सीख लिया, और तत्काल ही जप करना प्रारंभ कर दिया। इधर सन्यासीजी मौका पाकर नौ दो ग्यारह हो गये। मंत्र जपते २ एक वर्ष बडी कठिनतासे पूर्ण हुआ। प्रातःकाल ही स्नान ध्यान करके बनारसी महाशय बडी उत्कंठासे प्रसन्न होते हुए गृहद्वारपर आये। लगे जमीन सूंघने, परन्तु वहां क्या खाक पडी थी?। आशा बुरी होती है, सोचा कि कहीं दिन गिननेमें मेरी भूल न हो गई हो, अस्तु एक दो दिन और सही। और भी चार छह दिन सिर पटका परन्तु मुहर तो क्या फूटी कौंडी भी नहीं मिली। सन्यासीकी तरफसे अब कुछ २ आंखें खुलीं। आपने एक दिन यह अपनबीती गुरु भानुचंद्रजीको कह सुनाई। गुरूजीने सन्यासीके छल कपटोंको विशेष प्रगट कर कहा, तब आप सचेत हुए।

थोडे दिन पीछे एक जोगीने आकर अपना एक दूसरा ही रंग जमाया। एक बार शिक्षा पा चुके थे, परन्तु भोले बनारसीपर फिर भी रंग जमते देर न लगी। जोगीने एक शंख तथा कुछ पूजनके उपकरण दिये और कहा कि, यह सदाशिवकी मूर्ति है। इसकी पूजासे महापापी भी शीघ्र ही शिव (मोक्ष) प्राप्त करता

है। भोले बनारसीने जोगीकी बात सिर आंखोंसे मान ली और जोगीकी सेवा सुश्रूषा करना शुरू कर दी। यथायोग्य भेंटादि देके उसे खूब संतुष्ट किया। दूसरे दिनसे ही सदाशिवकी पूजन होने लगी। पूजनके पश्चात् शिव शिव—कहकर एकसौआठ बार जप भी होने लगा। पूजन और जपमें इतनी श्रद्धा हुई कि, पूजन जप किये विना भोजन नहीं होते थे। यदि किसी कारणवश किसी दिन पूजन नहीं की जा सके, तो उसके प्रायश्चित्त स्वरूप लूखा भोजन करनेकी प्रतिज्ञा थी। परन्तु ध्यान रहे, यह पूजन गुप्तरूपसे होती थी, कोई गृहकुटुम्बी जानता भी नहीं था। अनेक दिनों यह पूजन होती रही। संवत् १६६१ में मुकीम हीरानंदजी ओसवालने शिखरजीको संघ चलाया, गांव २ नगर २ में संघकी पत्रिकायें भेज दीं। हीरानंदजी सलीम शाहजादेके जौहरी थे, अतः उस समय इनकी बडी प्रतिष्ठा थी। खरगसेनजीके पास हीरानंदजीका विशेष पत्र आया, इसलिये ये गंगाके किनारे हीरानंदजीसे मिले और हीरानंदजीके आग्रहसे वहींके वहीं यात्राको चले गये। जब यह समाचार बनारसीको लगे; तब उन्होंनें घर सूना पाकर चैनकी गुड्डी उड़ाना शुरू किया। पिताके जानेपर पूत निरंकुश हो गये, और नित्य घरमें कलह मचाने लगे। एक दिन बैठे २ एक सुबुद्धि सूझी कि, पार्श्वनाथकी यात्राको चलना चाहिये। मातासे आज्ञा मांगी, परन्तु जब उसने सुनी अनसुनी कर दी, तब आपने दही, दूध, घी, चावल, चना, तैल, ताम्बूल और पुष्पादि पदार्थोंको छोड दिया, और प्रतिज्ञा की कि, जब तक यात्रा नहीं करूंगा, तब तक ये पदार्थ भोगमें नहीं लाऊंगा। इस प्रतिज्ञाको ६ महीनें बीत गये। कार्तिकी पूर्णिमा आ गई। शैव लोग गंगास्नानको और जैनी पार्श्वनाथकी यात्राको चले,

तब बनारसी भी अवसर पाकर किसीसे विना पूछेताछे उनके साथ हो लिये। बनारसमें पहुंच कर गंगास्नान पूर्वक भगवान् पार्श्वसुपार्श्वकी पूजन दशदिन तक बडे हावभावसे की। स्मरण रहे कि, सदाशिवकी पूजन वहां भी छोड नहीं दी थी, वह नियमसे होती थी। यात्रा करके संखोली लिये हुए बडे हर्षके साथ घर आ गये। कविवरने अपने जीवनचरित्रमें सदाशिवपूजनको उत्प्रेक्षा और आक्षेपालंकारमें इस प्रकार कहा है....

शंखरूप शिव देव, महाशंख बानारसी।

दोऊ मिले अबेब, साहिब सेवक एकसे ॥ २३७ ॥

रेलतारके कारण जैसी आजकलकी यात्रा सरल हो गई है, ऐसी उस समय नहीं थी। जो यात्रा आज १० दिनमें पूरी हो जाती है, उस समय उसमें १ वर्ष बीत जाता था। अतः मुकीम हीरानन्दजीका संघ बहुत दिनके पीछे लौटके आया। आते २ अनेक लोग मर गये, अनेक बीमार हो गये, और अनेक लुट गये। खरगसेनजीको उदर रोगने घर दबाया। ज्यों त्यों बडी कठिनतासे संघके साथ अपने घर जौनपुर तक आये। जौनपुरमें संघका खरगसेनजीकी ओरसे यथोचित आतिथ्यसत्कार किया गया, पश्चात् यहींसे संघ बिखर गया, सब लोग अपने २ ग्राम नगरोंकी राह लग गये—

संघ फूटि चहुंदिशि गयो, आप आपको होय।

नदी नाव संजोग ज्यों, बिछुर मिलै नहिं कोय २२३.

खरगसेनजी घर रहकर धीरे २ स्वास्थ्य लाभ करने लगे। हाटबाजारमें जाने आने लगे और पश्चात् प्रसन्नतासे रहने लगे। यात्रासे आनेके पहिले आपके एक पुत्रने जन्म लिया था, परन्तु वह दो

चार दिनसे अधिक नहीं ठहरा। इसी समय बनारसीदासके पुत्र हुआ। परन्तु उसकी भी वही दशा हुई।

संवत् १६६२ के कार्तिकमें बादशाह जलालुद्दीन अकबरकी मृत्यु आगरामें हो गई[1]। यह खबर जिस समय जौनपुरमें आई, प्रजाके हृदयमें असीम व्याकुलताका उदय हुआ। इस व्याकुलताके अनेक कारण थे। एक तो आजकलकी नाई उस समय एक सम्राट्का शरीरपात हो जानेपर दूसरा सम्राट् शान्तिताके साथ राज्यासनपर नहीं बैठ सक्ता था। विना खूनखराबी हुए तथा प्रजापर नाना अत्याचार हुए विना बादशाहत नहीं बदलती थी। दूसरे मुसलमानोंमें अकबर सरीखे प्रजाप्रिय बादशाह बहुत थोड़े होते थे। यद्यपि अकबरकी राजनीति अतिशय कूट कही जाती है, परन्तु प्रजा उसके राजत्वकालमें दुःखी नहीं रही, यह निश्चय है। आज उस प्रजावत्सल नरनाथकी परलोकयात्रासे प्रजा अनाथ हो गई। चारों ओर कोलाहल मच गया। लोगोंको विपत्ति मुंह फाडके भय दिखाने लगी। सबने अपनी २ जमा पूंजीकी रक्षामें चित्त लगाया—

> घर घर दर दर दिये कपाट।
> हटवानी नहिं बैठे हाट।
> हँडवाई(?)गाडी कहुं और।
> नकद माल निरभरमी ठौर॥

---

१ अकबरका देहान्त कार्तिक सुदी १४ संवत् १६६२ मंगलवारकी रात्रिको हुआ था, और दूसरे दिन बुधवारको उत्तरक्रिया हुई थी।

भले वस्त्र अरु भूषन भले।
ते सब गाढ़े धरती तले॥
घर घर सबनि विसाहे शस्त्र।
लोगन पहिरे मोटे वस्त्र॥
ठाढो कंबल अथवा खेस।
नारिन पहिरे मोटे वेस॥
ऊंच नीच कोउ न पहिचान।
धनी दरिद्री भये समान॥
चोरि धाढ़ दीसै कहुं नाहिं।
यों ही अपभय लोग डराहिं॥ २५५॥

यह अशान्तिकी हवा दश बारह दिन बडे जोर शोरसे चलती रही। तेरहवें दिन शान्तिसूचक बादशाही चिट्ठियां आई और घर २ बांट दी गई। चिट्ठियां बांटते ही अशान्तिने विदा ले ली। सन्नाटा खिंच गया। घर २ जयजयकार होने लगा। जो धनी और गरीबोंका भेद उठ गया था, वह अब फिर आ डटा। धनियोंके वस्त्र वेष चमचमाने लगे, बेचारे दरिद्री भीख मांगते हुए नजर आने लगे। चिट्ठीमें समाचार इस प्रकार थे—

प्रथम पातशाही करी, बावनबरष जलाल[1]।
अब सोलहसै बासठै, कार्तिक हूओ काल॥
अकबरको नन्दन बड़ो, साहिब शाह सलेम।
नगर आगरेमें तखत, बैठो अकबर जेम॥ २६८॥

---

[1] अकबरका नाम जलालुद्दीन था।

नाम धरायो नूरदी, जहांगीरसुलतान।
फिरी दुहाई मुलकमें, जहँ तहँ वरती आन ॥ २६९॥

कविवर बनारसीदासजीका हृदय बहुत कोमल था, वे अकबरके धर्मरक्षादि गुण सुनकर बहुत प्रशंसा किया करते थे। अकबरकी मृत्युकी खबर जिस समय जौनपुर आई, उस समय ये घरकी सीढ़ीपर बैठे हुए थे, सुनते ही मूर्च्छा आ गई। शरीर सीढ़ीसे नीचे ढुलक गया, माथा फूट गया, खून बहने लगा और उसमें कपडे सराबोर हो गये। माता पिता दौड़े हुए आये, पुत्रको गोदमें उठा लिया। पंखा करके पानीके छींटे डालके मूर्च्छा उपशान्ति की गई; घावमें कपड़ा जलाके भर दिया गया। थोडे समयमें अच्छे हो गये। नवीन बादशाहके तिलककी खुशीमें घर २ उत्सव मनाया गया। राज्यभक्त प्रजाने भिखारियोंको बहुत सा दान दिया।

पाठकोंको स्मरण रहै कि, अभी तक सदाशिवकी पूजन निरंतर हुआ करती थी, उसमें बनारसीने कभी भूल नहीं की। उस दिन एकान्तमें बैठे २ सोचने लगे।...

जब मैं गिर्‌यो पर्‌यो मुरझाय।
तब शिव कछु नहिं करी सहाय!॥

इस विकट शंकाका समाधान जब उनके हृदयमें न हुआ, तब उन्होंने सदाशिवजीका आसन कहीं अन्यत्र लगा दिया, और पूजन करना छोड दिया। बनारसीके नानारसी हृदयने इस समयसे ही पलटा खाया। उनके शरीरमेंसे बालकपन कभीका निकल गया था। युवावस्था विराजमान थी। विद्यादेवीने युवावस्थाकी सहचरी उन्मत्ततासे बहुत झगडा मचा रक्खा था, परन्तु कुसंगति और

स्वतंत्रताके कारण वह विजयलाभ नहीं कर सकी थी । अब स्वतं-त्रता गृहजंजालको देखके रफूचक्कर हो गई थी, बेचारी कुसंगतिको सदा साथ रहनेका अवकाश नहीं था । अतएव विद्यादेवी अपना काम कर गई । उसने कोमल हृदयमें कोमल शान्तिरसका बीज बो दिया । कविवर बनारसीदासजीके पास अब केवल शृंगाररसका गुजारा नहीं रहा ।

एक दिन संध्याके समय गोमती नदीके पुलपर बनारसीदास अपनी मित्रमंडलीके साथ समीरसेवन कर रहे थे, और सरिताकी तरल-तरंगोको चित्तवृत्तिकी उपमा देते हुए कुछ सोच रहे थे । बगलमें एक सुन्दर पोथी दब रही थी । मित्रगण भी इस समय चुपचाप नदीकी शोभा देख रहे थे । कविवर आप ही आप बडबडाने लगे "लोगोंसे सुना है कि, जो कोई एक बार भी झूठ बोलता है, वह नरकनिगोदके नाना दुःखोंका पात्र होता है । परन्तु न जाने मेरी क्या दशा होगी, जिसने झूठका एक पुंज बनाके रक्खा है । मैंने इस पोथीमें स्त्रियोंके कपोलकल्पित नखशिख हावभाव विभ्रमविलासोंकी रचना की है । हाय! मैंने यह अच्छा नहीं किया-मैं तो पापका भागी हो ही चुका, अब परंपरा लोग भी इसे पढकर पापके भागी होंगे" । इस उच्चविचारने कविवरके हृदयको डगमगा दिया । वे आगे और विचार नही कर सके, और न किसीकी सम्मतिकी प्रतीक्षा कर सके । तत्क्षण गोमतीके उस अथाह और भीषण-वेगयुक्तप्रवाहमें उस रसिकजनोंकी जीवनरूपा स्वकृत नव्य-निर्मित पोथीको डालकर निश्चिंत हो गये । पोथीके पन्ने अलग २ होकर बहने लगे, और मित्र हाय २ करने लगे, परन्तु फिर क्या होता था? गोमतीकी गोदमेंसे पोथी छीन लेनेका किसीने साहस नहीं

किया। सब लोग मन मारके अपने २ घर चले आये। कविवर भी प्रसन्नतासे अपने घर गये। पाठक! एक बार विचार कीजिये, अमूल्य-रस-रत्नको इस प्रकार तुच्छ समझके फेंक देना और तत्काल विरक्त हो जाना, क्या रसिकशिरोमणिकी सामान्य उदारता हुई? नहीं! यह कार्य बड़ी उदारहृदयता और स्वार्थत्यागका हुआ। उस दिनसे कविवरने एक नवीन अवस्था धारण की—

तिस दिनसों बानारसी, करी धर्मकी चाह।
तजी आसिखी[1] फासिखी[2]; पकरी कुलकी राह॥

खरगसेनजी पुत्रका उक्त वृत्तान्त सुनकर बहुत हर्षित हुए। उन्हें आशा हो गई कि, मेरे कुलका नाम जैसा आज तक रहा है, वैसा आगे भी रहेगा। पुत्रकी पूर्वावस्थासे साम्प्रत अवस्थाका मिलान कर वे चकित हो गये। निश्चय किया कि,—

कहैं दोष कोउ न तजै, तजै अवस्था पाय।
जैसे बालककी दशा, तरुण भये मिट जाय॥२७२॥

और—

उदय होत शुभकर्मके, भई अशुभकी हानि।
तातें तुरत बनारसी, गही धर्मकी बानि॥ २७३॥

थोड़े ही समयमें क्या से क्या हो गया। जो बनारसी संसारके एक क्लेशजन्यरसके रसिया थे, वे ही अब जिनेन्द्रके शान्तरसके वशमें हो गये। अड़ौस पड़ौसके लोग तथा कुटुम्बीजन जिसको कल गली कूचोंमें भटकते देखते थे, आज उसी बनारसीको जिन-मन्दिरको अष्टद्रव्ययुक्त जाते देखते हैं। जिनदर्शन किये बिना

१ आशिकी। २ फासिकी अर्थात् पापकर्म।

भोजनके त्यागकी प्रतिज्ञायुक्त देखते हैं। चतुर्दश नियम, व्रत, सामायिक, स्वाध्याय, प्रतिक्रमणादि नाना आचार-विचार-युक्त देखते हैं। और देखते हैं, सच्चे हृदयसे सम्पूर्ण क्रियाओंको करते। स्वभावका इस प्रकार पलटना बहुत थोड़ा देखा जाता है।

तव अपजसी बनारसी,

अब जस भयो विख्यात ॥

खरगसेनजीके दो कन्या थी, जिसमेंसे एक तो जौनपुरमें विवाही गई थी, दूसरी कुमारी थी। इस वर्ष अर्थात् संवत् १६६४ के फाल्गुणमासमें पाटलीपुर (पटना)में किसी धनिकके पुत्रसे उसका भी विवाह कर दिया गया। कन्याका विवाह सानन्द हो चुकनेपर इसी वर्ष—

बानारसिके दूसरोः भयो और सुतकीर।

दिवस कैकुमें उड़ि गयो, तज पिंजरा शरीर ॥ २८० ॥

इस पोतेके मरनेसे खरगसेनजीको विशेष दुःख रहा। परन्तु तीन वर्षतक पुत्रके रंग ढंग अच्छे रहे, यह देखकर उन्हें बहुत कुछ शान्तवन भी मिलता रहा। संवत् १६६७ में एक दिन खरगसेनजीने पुत्रको एकान्तमें बुलाके कहा "बेटा! अब तुम सयाने हो गये। हमारा वृद्धकाल आया। पुत्रोंका धर्म है कि, योग्य-वय-प्राप्त होनेपर पिताकी सेवा करें, इस लिये अब तुम यह घरका सब कार्यभार संभालो और हम दोनोंको रोटी खिलाओ" यह सुनके पुत्र लज्जावनत हो रहा, उससे कुछ कहा नहीं गया। पिताका प्रेम देखके आंखोंमें आंसू भर लाया। उसी समय पिताने अपने हाथसे पुत्रको गोदमें लेके हरिद्राका तिलक कर दिया, और घरका सब काम सोंप दिया। पीछे

दो मुद्रिका, चौवीस माणिक, चौतीस मणि, नौ नीलम, वीस पन्ना, और चार गांठ फुटकर चुनी, इस प्रकारसे तो जवाहिरात, और २० मन घीव, दो कुप्पे तैल, दो सौ रुपयाका कपडा इस प्रकार माल और कुछ नकद रुपया देकर व्यापारके लिये आगराको जानेकी आज्ञा दी। पुत्रने आज्ञा शिरोधार्य करके सब माल गाड़ियोंपर लदाके अनेक साथियोंके साथ आगरेकी यात्रा कर दी। प्रतिदिन ५ कोसके हिसावसे चलके गाड़ियां इटावाके निकट आई, वहां मंजिल पूरी हो जानेसे एक ऊजड़ स्थानमें डेरा डाल दिया। थोडे समय विश्राम कर पाये थे, कि मेघ उमड़ आये, अंधकार हो गया, और लगा मूसलधार पानी वरसने। साथके सब लोग गाड़ियां छोडके इधर उधर भागने लगे। कुछ लोग पयादे होकर शहरकी सरायमें गये, परन्तु सरायमें कोई उमराव ठहरे हुए थे, इससे स्थान खाली नहीं मिला। वाजारमें भी कोई जगह खाली नहीं देखी, आंधी और मेघकी झड़ीके मारे घर २ के कपाट बन्द थे, कहीं खडे होनेका भी ठिकाना नहीं पडा। कविवर कहते हैं—

फिरत फिरत फावा भये, बैठन कहै न कोय।
तलैं कीचसों पग भरें, ऊपर वरसत तोय॥ २९४॥
अंधकार रजनी विषैं; हिमरितु अगहनमास।
नारि एक बैठन कह्यो; पुरुष उठ्यो लै बाँस!॥ २९६॥

नगरमें जब रातनिकालनेका कहीं भी ठीक न पडा, तब लाचार होके गोपुरके पार एक चौकीदारकी झोपडी थी, वहां आये, और चौकीदारोंको अपनी सब आपत्ति कह सुनाई। चौकीदारोंका

हृदय इन बेचारोंकी कथा सुनके पिघल आया। उन्होंने कहा अच्छा आज रातभर आप लोग यहां आनन्दसे रहो, हम अपने घर जाके सोवेंगे। परन्तु इतना ध्यान रखना कि, सवेरे नगरका हाकिम आवेगा, वह विना तलाशी लिये नहीं जाने देगा, इस लिये उसे कुछ दे लेके राजी कर लेना। चौकीदार चले गये, इन लोगोंने पानी लाके हाथ पैर धोये, गीले कपडे सूखनेको डाल दिये और प्याल निछाके सबके सब विश्रामकी चिन्तामें लगे। लोगोंकी आंखें झपती ही जाती थीं, कि इतनेमें एक जबर्दस्त आदमी आया, और लगा डांट डपट बतलाने। तुम लोग किसके हुक्मसे यहां आये? कौन हो? यहांसे अब शीघ्र चले जावो, नहीं तो अच्छा नहीं होगा इत्यादि। इस नवीन आपत्तिसे भयभीत होके बेचारे उठ बैठे, और विना कुछ कहे सुने चलने लगे। परन्तु इन लोगोंकी तत्कालीन दशा देखके पत्थर भी पसीजता था, नवागन्तुक तो आदमी ही था। इनके सीधेपनको देखके उससे न रहा गया, जाते हुए लौटा लिया और अपना एक टाट बिछानेको दे दिया। चौकीमें जगह इतनी थोडी थी कि, सोना तो दूर रहा, चार आदमी सुभीतेसे बैठ भी नहीं सकते थे। तब टाटपर नीचे तो दुखिया बनारसी तथा उनके साथी सोये और ऊपर खाट बिछाके नवागन्तुक अपने पांव फैलाके सोया! समय पडनेपर इतनी ही गनीमत है! ज्यों त्यों रात्रि पूरी हो गई, सबेरे देखा तो, वर्षा बंद हो चुकी थी, आकाश निखरके निर्मल हो गया था। उठके अपनी २ गाड़ियोंपर आये, और मार्गका सुभीता देखके गाडी चला दीं। आगरा निकट आ गया। बनारसीदासजी सोचने लगे, कहां जाना चाहिये? माल कहां उतराना चाहिये? और मुझे कहां ठहरना चाहिये? क्योंकि उन्हें

व्यापारके लिये घरसे बाहिर निकलनेका यह पहिला ही अवसर था। निदान चित्तमें कुछ निश्चय करके गाडियोंको पीछे छोड आप मोतीकटलेमें पहुंचे। आपके छोटे बहनेउ, बन्दीदासजी चांपसी-के घरके पास रहते थे, उन्हींके यहां गये। बहनेऊने सालेका यथोचित सत्कार किया। दो चार दिनमें बहनेऊकी सम्मतिसे एक दूसरा मकान किराये से लिया और उसमें सब माल असबाब रखके बेचना खर्चना आरंभ कर दिया।

पहिले कपडा बेचके उसका हिसाब तयार किया तो, व्याजमूल देके कुछ घाटा रहा, पश्चात् घीव तैल बेचा, उसका भी यही हाल हुआ, केवल चार रुपया लाभमें रहे। कपडा और घी तैलकी बिक्रीका रुपया हुंडीसे जौनपुर भेज दिया और सबके पीछे जवाहि-रातपर हाथ लगाया। बनारसीदास व्यापारसे अभी तक एक तो प्रायः अनभिज्ञ थे, दूसरे आगरेका व्यापार!। अच्छे २ ठगा जाते हैं, इनकी तो बात ही क्या थी। जिस तिसको साधु असाधुकी जांच किये विना ही आप जवाहिरात दे देते थे, और उसके साथ जहां चाहे तहां चले जाते थे। जौहरियोंके लिये यह वर्ताव बड़े धोखेका है। परन्तु अच्छा हुआ कि, किसी लुचे लफंगेकी दृष्टि नहीं पड़ी। तो भी अशुभ कर्मका उदय था, इजारबन्दके छोरमें कुछ छूटा जवाहिरात बांध लिया था, वह न मालूम कहां खिसककर गिर गया। माल बहुत था, इससे चोट भी गहरी लगी, परन्तु किसीसे कुछ कहा नहीं। आपत्तिपर आपत्तियां प्रायः आती हैं। किसी कपड़ेमें कुछ माणिक बंधे थे, वे डेरेमें रक्खे थे उन्हें चूहे कपड़े समेत ले गये। दो जडाऊ पहुंची किसी शेठको बेचीं थी, दूसरे दिन उसका दिवाला निकल गया! एक जडाऊ मुद्रिका थी, वह

सडकपर गांठ लगाते हुए नीचे गिर पड़ी, परन्तु जब नीचे देखा तब कुछ भी पता नहीं लगा, न जाने किस उठाईगीरेके हाथमें सफाईसे पड़ गई । इन एकपर एक आई हुई अनेक आपत्तियोंसे बनारसीका कोमलहृदय कम्पित हो गया। और संध्याको खूब जोरसे ज्वर चढ़आया। चिन्ताके कारण बीमारी बढ़ गई। वैद्यने दश कोरी लंघनें कराई, पीछेसे पथ्य दिया। पथ्यके पश्चात् अशक्तिताके कारण महीने भर तक बाजारका आना जाना नहीं हुआ। इस बीचमें पिताके अनेक पत्र आये, परन्तु किसीका भी उत्तर नहीं दिया। तौ भी बात छुपी नहीं रही। उत्तमचन्द जौहरी जो आपके बड़े बहनेऊ थे, उन्होंनें खरगसेनजीको अपने पत्रमें लिख भेजा कि, बनारसीदास जमा पूंजी सब खोके भिखारी हो गये हैं!। इस खबरसे खरगसेनजीके घरमें रोना पीटना होने लगा। उन्होंने अपनी स्त्रीकी सम्मतिसे बनारसीको घरका मौर बांधा था, इसलिये स्त्रीसे कलह पूर्वक कहने लगे कि "मैं तो पहिले ही जानता था कि, पूत धूल लगावेगा, परन्तु तेरे कहनेसे तिलक किया था, उसका यह फल हुआ—

कहा हमारा सब थया, भया भिखारी पूत ।
पूंजी खोई बेहया, गया बनज गय सूत ॥ ३२१ ॥

यहां बनारसीदासजी जो कुछ वस्तु पासमें थी, सो सब बेच २ के खाने लगे, और इसतरह जब पासमें केवल दो चार टके रह गये, तब हाट बाजारका जाना भी छोड दिया । दिन व्यतीत

करनेके लिये मृगावती और मधुमालती नामक पुस्तकोंको डेरेमें बैठे हुए पढा करते थे। पोथियोंको सुननेके लिये दो चार रसिक-पुरुष भी पास आ बैठते थे, और प्रसन्न होते थे। श्रोताओंमें एक कचौडीवाला था, उसके यहांसे आप प्रतिदिन दोनों वक्त कचौडी उधार लेके खाया करते थे। जब उधार खाते २ बहुत दिन बीत गये, तब एक दिन पोथी सुनकर जाते हुए कचौडीवालेको एकान्तमें बुलाकर लज्जित होते हुए आपने कहा कि,—

तुम उधार कीन्हों बहुत, आगे अब जिन देहु।
मेरे पास कछू नहीं, दाम कहांसों लेहु? ॥

---

१ मृगावती यह एक कल्पित कथा है। इसके बनानेवाले कविका नाम कुतुबन था। कुतबन जातिके मुसलमान थे और विक्रम संवत् १५६० के लगभग विद्यमान थे। शेख बुरहानके दो चेले थे, एक कुतुबन और दूसरा मलिक मुहम्मदजायसी। ये दोनों ही हिन्दीके अच्छे कवि हो गये हैं। मलिक मुहम्मदजायसीका पद्मावतकाव्य हिन्दीमें एक उत्कृष्ट श्रेणीका ग्रन्थ है। यह काव्य मृगावतीसे ३७ वर्ष पीछे बनाया गया है। मृगावतीकी कथा जिस प्रकार देव और परियोंकी असम्भवबातोंसे भरी है, उस प्रकार पद्मावतकी कथा नहीं है। पद्मावत ऐतिहासिक कथाके आधारपर लिखा गया है, और मृगावती केवल कल्पनाका प्रबन्ध है। परन्तु मृगावती कल्पितप्रबन्ध होनेपर भी सुन्दरता और सरलतासे कूट २ कर भरा है, इससे रसिकोंका जी उसे बिना पढ़े नहीं मानता। विपत्तिके समय कविवरके चित्तको इससे अवश्य विश्राम मिलता होगा। कुतुबन जौनपुरके बादशाह शेरशाहसूरके पिता हुसे-नशाहके आश्रित थे, ऐसा समालोचक भाग ३ अंक २७-२८-२९ में प्रकाशित हुआ है, परन्तु शेरशाहको हुसैनशाहका बेटा बतलानेमें भूल हुई जान पड़ती है। क्योंकि शेरशाहका जौनपुरके हुसैनशाहसे कुछ

कचौरीवाला भला आदमी था, वह जानता था कि, बनारसीदास कोई अविश्वस्त पुरुष नहीं है, किन्तु एक विपत्तिका मारा हुआ व्यापारी है। उसने कहा कि, कुछ चिन्ताकी बात नहीं है। आप उधार लेते जावें, मेरे द्रव्यकी परवाह न करें, और जहां जी चाहे, आवें जावें। समयपर मेरा द्रव्य वसूल हो जावेगा। इस सज्जनकी बातका बनारसीदास और कुछ उत्तर न दे सके, और पूर्वोक्त क्रमसे दिन काटने लगे। छह महीने इसी दशामें बीत गये। एक दिन मृगावतीकी कथा सुननेको ताबीताराचन्दजी नामके एक पुरुष आये। यह रिश्तेमें बनारसीदासजीके श्वसुर होते थे। कथाके हो चुकनेपर उन्होंने बनारसीदासजीसे पहिचान निकालके बडा स्नेह प्रगट किया और एकान्तमें ले जाके प्रार्थना की कि, कल प्रभातकाल

सम्बन्ध नहीं था। वह शूर जातिका पठान था और उसका असली नाम फरीद, बापका हसन और दादाका इब्राहीम था। इब्राहीम घोडोंका व्यापार करता था, परन्तु उसका बेटा हसन व्यापार छोडके सिपाही बना और बहुत दिनोंतक रायमल शेखावतकी नौकरी करता रहा। वहांसे सुलतान सिकन्दर लोदीके अमीर नसीरखांके पास नौकर रहा। फरीद बापसे रूठकर पहिले लोदी पठानों और फिर बाबरबादशाहके मुगल अमीरोंके पास रहा। बाबरने इसकी आंखोंमें फसाद देखकर पकडनेका हुक्म दिया, जिससे वह भागकर सहसरामके जंगलोंमें लूट मार करने लगा। फिर बिहार और बंगालेका मुल्क दबाते २ हुमायू बादशाहसे लड़ा और उनको निकालके संवत् १६९७ में हिन्दुस्थानका बादशाह बन बैठा।

२ मधुमालती हमारे देखनेमें नहीं आई, इसके बनानेवाले कवि **चतुर्भुजदासनिगम** (कायस्थ) हैं। इसग्रन्थकी रचना भी संवत् १६०० के लगभग हुई जान पडती है। मधुमालतीकी श्लोकसंख्या १२०० है। कहते हैं कि, यह एक प्राचीनपद्धतिका पद्यबन्ध उपन्यास है।

मेरे घरको आप अवश्य ही पवित्र करें। ऐसा कहकर चले गये और दूसरे दिन फिर लिवानेको आ पहुंचे। बनारसीदासजी साथ हो लिये, इधर श्वसुर महाशय अपने एक नौकरको गुप्तरीतिसे आज्ञा दे गये कि, तू इस मकानका भाडा वगैरह चुकाकर और डेरा डंडा उठाकर अपने घर पीछेसे ले आना। नौकरने आज्ञाकी पूरी २ पालना की। भोजनोपरान्त बनारसीदासजीपर जब यह बात प्रगट हो गई, तब श्वसुरने हाथ जोडके कहा कि, इसमें आपको दुःखी नहीं होना चाहिये। यह घर आपका ही है, आप यदि प्रसन्नतासे रहें, तो मैं अत्यन्त प्रसन्न होऊंगा। संकोची बनारसीदासजी कुछ कर न सके और श्वसुरालयमें रहने लगे। दो महीने बीत गये। व्यापार करनेकी चिन्ता रात्रि दिन सताती रही, निदान धरमदास जौहरीके साझेमें व्यापारका प्रयत्न किया। जसू और अमरसी दो भाई थे, यह जातिके ओसवाल थे। अमरसीका पुत्र धरमसी अथवा धरमदास जौहरी था। धरमसीका चालचलन अच्छा नहीं था, थोडीसी उमरमें ही उसके पीछे अनेक व्यसन लग चुके थे। इन व्यसनोंसे पीछा छुडानेके लिये ही बनारसीदासजीकी संगति उसके बापने तजवीज की और निरन्तर समागम रखनेके लिये ५००) की पूंजी देकर दोनोंको सांझी बना दिया।

दोनों साझी माणिक, मणि, मोती, चुनी आदि खरीदने और वेचने लगे। कुछ दिनोंमें जब बनारसीदासजीने थोडासा द्रव्य क-

---

१-२ ये दोनों नाम कच्छी तथा गुजरातीसे जान पड़ते हैं। उस समय आगरा राजधानी थी, इससे वहां भिन्न २ प्रान्तवालोंने आकर दूकाने की थीं।

आया, तब कचौरीवालेका हिसाब कर उसके रुपया चुका दिये । कुल १४) चौदह रुपयाका जोड हुआ । पाठको! वह कैसा समय था, जब आगरे सरीखे शहरमें भी दोनो वक्तकी पूरी कचौरियोंका खर्च केवल दो रुपया मासिक था! और आज कैसा समय है, जब उन दो रुपयोंमें एक सप्ताहकी भी गुजर नहीं होती!! भारतवासियोंको इस अंग्रेजी राज्यमें भी क्या वह समय फिर मिलैगा? इस सांझेके व्यापारमें दो वर्ष पूरे हो गये, पर विशेष लाभ कुछ नहीं सूझा, इससे बनारसी विषादयुक्त हुए और आगरा छोड देनेका विचार किया। नरू-साहुसे सांझेका सब हिसाब किया तो, दो वर्षकी कमाई २००) निकली, और इतना ही खर्च बैठ गया। चलो छुट्टी हुई, हिसाब बराबर हो गया। कविवर कहते हैं—

निकसी थोथी सागर मथा, ।
भई हींगवालेकी कथा ॥
लेखा किया रूखतल बैठि,
पूंजी गई * * में पैठि ॥ ३६७ ॥

आगरा छोड़के आप खैराबाद (ससुराल) को जानेके विचारमें थे, कि एकदिन बाजारसे लौटते हुए सड़कमें एक गठरी पड़ी हुई मिली, उसमें आठ सुन्दर मोती बंधे थे। बड़ी खुशी हुई। धनार्थी मोही-जीवको प्रसन्नता और कब होगी? बड़े यत्नसे मोती कमरमें लगा-लिये। और दूसरे दिन रास्ता नापने लगे। रात्रिको श्वसुरालयमें पहुंचे बड़े आदरसे लिये गये; सबको प्रसन्नता हुई। समयपर भार्यासे एकान्त समागम हुआ। सामान्य संयोगसे, सामान्य प्रेमसे, सामान्य आन-न्दसे हमारे दम्पतिका यह संयोग, प्रेम, आनन्द कुछ विलक्षण ही था।

पतिप्राणा स्त्री पतिके सन्मुख कुछ समयको स्तंभित हो रही, कुछ समयको पति भी स्थकित हो रहा। दोनोंके पौद्गलिक शरीरोंने इस प्रकार सब ओरसे मौन धारण कर लिया। परन्तु यह शरीर क्रिया ऐसी ही नहीं बनी रही, पतिप्राणास्त्रीने साहस करके कुछेक अस्फुटित स्वरोंसे प्राणपतिकी शारीरिक कुशलता पूछी, और स्वामीसे सुन्दर शब्दोंमें उत्तर पाया। पश्चात् व्यापारसम्बन्धी प्रश्न किये, जिनका उत्तर पतिने मनगढ़न्तकरके अयथार्थ देना चाहा, क्योंकि बीती कथा कहनेके योग्य नहीं थी, परन्तु अर्द्धांगिनी भावभंगीसे उनका वाक्छल ताड़ गई, और अपनी स्नेहचतुराईसे शीघ्र ही पतिका आन्तरिक विषय जाननेमें सफलमनोरथा हुई। बनारसीदासजी अपनी प्रियतमासे कुछ छुपाकर न रख सके। जिन दम्पतियोंके दो शरीर एक मन हैं, उनके बीचमें कपट को स्थान कब मिल सक्ता है? पतिकी दशाका अनुमानकर साध्वी स्त्रीने आजकलकी स्त्रियोंकी नाईं पैसेकी प्रीति नहीं दिखलाई। बड़ी गंभीरतासे पतिको आश्वासन दिया और कहा—

समय पायके दुख भयो, समय पाय सुख होय।
होनहार सो ह्वै रहै, पाप पुण्य फल दोय॥ ३७६॥

इसप्रकार नाना सुखशोकके संभाषणोंमें और संयोग वियोगके चिन्तवनमें रात्रिकाल शेष हो गया। संयोगकी रातें बहुत छोटी होती हैं! शीघ्र ही सबेरा हो गया। दिवसमें एकान्त पाकर उस पतिप्राणा स्त्रीने अपने पतिके करकमलोंमें २०) रु० कहींसे लाके रक्खे और हाथ जोरके कहा—

ये मैं जोरि धरे थे दाम। आये आज तुम्हारे काम।
साहिब! चिन्त न कीजे कोय। 'पुरुष जियैं तो सब कछु होय॥'

अहाहा! यह अन्तका वनितावदन-विनिर्गत-पद कैसा मनोहर है? ऐसे शब्द भाग्यवान् पुरुषोंके अतिरिक्त अन्यपुरुषोंको सुनना नसीब नहीं होते। उस वन्दनीय स्त्रीकी तृप्ति इतनेहीमें नहीं हुई, उसने एकान्त पाकर अपनी माताकी गोदमें सिर रख दिया और फूट २ के रोने लगी। पतिकी आर्थिक अवस्थाके शोकसे उसका हृदय कितना विद्ध हुआ है, सो माताको खोलके दिखलाने लगी। बोली—"जननी! मेरी लज्जा अब तेरे हाथ है। यदि तू साहाय्य नहीं करेगी, तो प्राणपति-सर्वस्व न जानें क्या करेंगे। वे इतने लज्जालु हैं कि, अपने विषयमें किसीसे याच्ञा तो दूर रहै, एक अक्षर भी नहीं कह सक्ते। मुझसे न जाने उन्होंने कैसे कह दिया है। उनका चित्त बहुत डांवाडोल है। वे न तो घर जाना चाहते हैं और न यहां रहना चाहते हैं, परन्तु यदि तू कुछ आर्थिक सहायता करेगी, तो व्यवसाय अवश्य ही करने लगेंगे।" (धन्य पति-व्रते!), पुत्रीके हृदयदुःख को जानकर माताने आश्वासन देते हुए आंसू पोंछकर कहा, "बेटी! उदास-निराश मत हो। मेरे पास ये दोसौ रुपये हैं, सो तुझे देती हूं, इससे वे आगरेको जाकर व्यापार कर सकेंगे" (धन्य जननी!)

पुनः रात्रि हुई। दम्पति समागम हुआ। पति परायणा साध्वीने अपने कोकिल-कण्ठ-विनिन्दित-स्वरसे लालयितनेत्रोंद्वारा पति-की मुखच्छवि अवलोकन करते हुए कहा "नाथ! मैं समझती हूं कि आप जौनपुर जानेके विचारमें नहीं होंगे, और यथार्थमें वहां जाना इस दशामें अच्छा भी नहीं है। मेरे कहनेसे आप आगरेको एक बार फिर जाइये! एक बार फिर उद्योग कीजिये! अबकी बार अवश्य ही आप सफलमनोरथ होंगे। मैं दोसौ रुपया और भी आपको

देती हूं। इन्हें मैंने अपने प्राणोंमेंसे निकाले हैं। आप ले जाइये और व्यापारमें लगाइये।" भाग्यशाली बनारसी भार्याकी कृतिपर अवाक् हो रहे। हां, न, कुछ भी नहीं कहा गया। रजनी विविधविचारोंमें पूर्ण हो गई।

दूसरे दिनसे व्यापारकी ओर चित्त लगाया गया। कपड़ा, मोती, माणिक्यादि खरीदना शुरू किया। इस तयारीमें और श्वसुरालयके सत्कारमें चार महीने गत हो गये। अवकाश बहुत मिला, इसलिये कविता भी समय २ पर अल्पबहुत की गई। अजितनाथके छन्दों[1] और धनंजयनाममालाके दोसौ दोहोंकी[2] रचना इसी समय की। पश्चात् अगहनसुदी १२ को माल भराके आगरेकी ओर रवाना हुए।

अबकी बार कटलेमें माल उतारा। समयपर श्वसुरके घर भोजन करना, बाजारमें कोठीपर सोना, और दिनभर दूकानमें बैठना, बस यही उस समयका नित्यकर्म था। समयकी बलिहारी! कपडेका भाव बिलकुल गिर गया। बिक्री एकदम गिर गई। अतः बजाजीसे हाथ धोकर मोती माणिक्योंमें चित्त दिया। मोतीका एक हार जो ४०) में खरीदा था, ७०) में बेचा। ३०) लाभ हुआ, इससे संतोष हुआ। तब आपने विचार किया, कि आगामी कपडेका व्यापार कभी नहीं करना, जवाहिरातका ही करना। देखो! सहज ही पौन दूने हो गये।

श्रीमाल-खोबरागोत्रज वेणीदासजीके पौत्र नरोत्तमदास, बालचन्द और बनारसीदास इन तीनोंमें बडी गाढ़ी मैत्री थी। ये तीनों रात्रिदिन

---

१ बनारसीविलास-पृष्ठ १९३।

२ नाममाला एकबार हमारे देखनेमें आई थी, परन्तु फिर बहुत खोज करने पर भी नहीं मिली। बडी अच्छी-सरल कविता है।

एकत्र रहकर आमोद प्रमोदमें सुखसे कालयापन करते थे । एक दिन तीनों मित्र एक विचार होकर कोल (अलीगढ़) की यात्राको गये । वहां संसारकी प्रबल-तृष्णाके वशीभूत होकर भगवत्से प्रार्थी हुए—

* * * * * * । हमको नाथ! लच्छमी देहु ।
लछमी जब देहो तुम तात । तब फिर करहिं तुम्हारी जात॥

हाय ! यह लक्ष्मी ऐसी ही वस्तु है । यह भगवत्से संसारक्षयकी प्रार्थनाके बदले संसारवृद्धिकी प्रार्थना कराती है और किये हुए शुभ-फल-प्रदायक-पुण्यकर्मरूप वृक्षको इस याचना और निदानके कुठारसे काट डालती है । आज भी न जाने कितने लोग इसके कारण देवी देवताओं को मना रहे होंगे ! बस, यही प्रार्थना करके हमारे तीनों मित्र घरको लौट आये, कोलकी यात्रा समाप्त हुई ।

फाल्गुणमें वालचन्दका विवाह था । बरातकी तयारी हुई । मित्रने बनारसीदासजीसे साथ चलनेको अतिशय आग्रह किया । तब अन्तर्द्रव्य मोती आदि बेचके ३२) रुपया पासमें किये और बरातमें शामिल हो गये, नरोत्तमदासको भी साथ जाना पड़ा । बरातमें सब रुपया खर्च हो गये । लौटके आगरे आये और खैराबादी कपड़ेको हारके फरोख्त कर दिया, परन्तु हिसाब किया तो मूल और ब्याज देके ४)रु० घाटेमें रहे ! अदृष्टको कौन जानता है ? व्यापारकार्य निःशेष हो चुकनेपर घरको जानेका दृढ़निश्चय कर लिया । परन्तु मित्रवर्य्य नरोत्तमदासजीने कहा—

कहै नरोत्तमदास तब, रहौ हमारे गेह ।
भाईसों क्या मित्रता? कपटीसों क्या नेह ? ४०६

1 जात्रा (यात्रा) ।

इस पर बनारसीदासजीने बहुत कुछ कहा सुना, परन्तु सब व्यर्थ हुआ। मित्रके यहां रहना ही पडा।

कुछ दिनके पश्चात् साहुकी आज्ञासे नरोत्तमदास, उनके श्वसुर, और बनारसीदासजी तीनों पटनाकी ओर रवाना हुए। सेवक कोई साथमें नहीं लिया। फीरोजाबादसे शाहजादपुरके लिये गाडीभाडा किया। शाहजादपुरमें पहुंचते ही भाड़ेवालेने अपना रास्ता पकडा। सरायमें डेरा डाल दिया। मार्गकी थकावटके मारे तीनोंको पड़ते ही गहरी निद्राने घेर लिया। एक प्रहरके बाद जब एक मित्रकी निद्रा-टूटी, उस समय चांदनी का कुछ धुंधला २ उजेला था, इसलिये उसने समझा कि, प्रभात हो गया। अतः दोनों साथियोंको जगाया और उसी वक्त कूच कर दिया। एक कुली किरायेपर करके अपने साथ कर लिया, और उसपर बोझा लाद दिया। परन्तु दो चार कोस चलकर ही रास्ता भूल गये। एक बडे बीहड़ जंगलमें जा फँसे। कुली रोने लगा और थोड़ा बहुत चलकर नौ दो ग्यारह हो गया। बडी विपत्ति उपस्थित हुई। उस जंगलमें इन दुखियोंके सिवाय चौथा जीव ही न था, यदि सहायता मांगते तो किससे? अतः तीनोंने बोझेके तीन हिस्से करके अपने २ सिरके हवाले किये और लगे रोते गाते रास्ता काटने। आधी रातके पश्चात् आपत्तिके मारे एक चोरोंके ग्राममें पहुंचे। पहिले पहिले चोरोंके चौधरीसे ही सामना हुआ। उसने पूछा कि, तुम कौन हो और कहांसे आये हो? इस समय सबके होश गायब थे, क्योंकि इस ग्रामकी कथा पहिलेसे सुनी हुई थी। परन्तु बनारसीदासजीकी बुद्धि इस समय काम कर गई, उन्होंने अपना कल्पित नामग्राम बताके एक श्लोक पढा और उच्चस्वरसे चौधरीको आशीर्वाद दिया। श्लोकयुक्त आशीर्वाद सुनके चौधरी कुछ मृदु हुआ। उसने ब्राह्मण समझके दंडवत किया और बडे आदरके

साथ अपने घर ले गया। तथा "आप लोग मार्ग भूल गये हैं, रात्रिभर विश्राम कर लें, प्रातः आपको रास्ता बतला दिया जावेगा" इस प्रकार वचनामृत कहके संतोषित किया। सशंकितचित्त मित्र चौधरीके घर ठहर गये। जब चौधरी अपने शयनागारमें चला गया, तब तीनोंने सूत वटकर जनेऊ बनाकर धारण किये और मिट्टी घिसके मस्तक त्रिपुण्ड्रोंसे सुशोभित किये। यथा—

माटी लीन्हीं भूमिसों, पानी लीन्हों ताल।
विप्रवेष तीनों धरयो, टीका कीन्हों भाल ॥ ४२४ ॥

नानाप्रकारकी चिन्ताओंमें रात बिताई। सूरज निकलनेके पहिले ही हयारूढ़ चौधरीने आकर प्रणाम किया। विप्रोंने आशिष दी, और बोरिया बसना बांदके तीनों साथ हो गये। तीन कोस चलनेपर फतहपुरकी रास्ता मिलगई, तब चौधरी तो शिष्टाचारपूर्वक अपने घरको लौटा, और ये दो कोस चलने पर फतहपुर मिला, वहां दो मजदूर करके इलाहाबास गये। सरायमें डेरा लिया। गंगाके तट पर रसोई बनाके भोजन किये। पश्चात् बनारसीदासजी घूमनेके लिये नगरमें निकले। एक स्थानमें अचानक पिता खरगसेनजीके दर्शन हो गये। पुत्र पिताके चरणोंसे लपट गया, परन्तु पिताका चिरपुत्रवियोगी हृदय इस अचानकसम्मिलनको सह न सका, खरगसेनजीको तत्काल ही मूर्च्छा आ गई।

बनारसीदास और नरोत्तमदास दोनों एक डोली भाडे करके और उसमें खरगसेनको सवार कराके जौनपुर आये। फिर जौनपुरमें दो चार दिन ठहरके व्यापारके लिये बनारस आये। बनारस जाकर पार्श्वनाथ परमेश्वरकी पूजन की। इस समय हार्दिक

भक्तिका अतिशय उद्गार हुआ। अतः दोनों मित्रोंने सदाचारकी अनेक प्रतिज्ञायें कीं—

अडिल्ल।

सांझ समय दुविहार, प्रात नवकार सहि।
एक अथेली पुण्य, निरन्तर नेम गहि॥
नौकरवाली एक, जाप नित कीजिये।
दोष लगै परभात, तो घीव न लीजिये॥ ४३७॥

दोहा।

मारग वरत यथा शकति, सब चौदस उपवास।
साखी कीन्हें पार्श्वजिन, राखीं हरी पचास॥
दोय विवाह सु सुरति है, आगे करनी और।
परदारा संगम तज्यो, दुई मित्र इक ठौर॥ ४३९॥

भगवत्की पूजन करके दोनों मित्र घर आये। भोजनादि करके हंसी खुशीकी बातें कर रहे थे, इतनेमें पिताकी चिट्ठी मिली। उसमें अत्यन्त दुःखप्रद समाचार थे। "तुम्हारे तीसरे पुत्रका जन्म हुआ, परन्तु १५ दिनके पीछे ही वह चल बसा, साथमें अपनी माताको भी लेता गया!" बस इससे आगे और नहीं पढ़ा गया। शोकसे छाती फटने लगी, आंखोंसे आंसुओंकी धारा खर २ बहने लगी। अपनी सुयोग्य सहधर्मिणीके अलौकिक गुणों और भक्तिभावोंको स्मरण करकर उनके हृदयकी क्या दशा थी, इसका अनुमान हम लोग नहीं कर सक्ते। "हाय! वेचारीसे अन्तसमय भी न मिल सके, एकवार उसके पिपासित नेत्रोंको मेरे ये लालायित नेत्र भी न देख सके। मैंने बड़ा भारी अपराध किया, जो उसकी दुःखावस्थामें साहाय्य न

किया। न जाने बेचारीके प्राण कैसे दुःखसे छूटे होंगे। सतीसाध्वि! मैं तुम्हारी भक्तिका कुछ भी बदला न दे सका, क्षमा करना।"

इस प्रकारके उथल पुथल विचारोंमें मग्न बनारसीको नरोत्तमदासने नाना उपदेशोंसे सचेत किया और चिट्ठी पूरी पढ़नेको कहा। तब धैर्य्यावलम्बन करके बनारसी आगे पढ़ने लगे, यह लिखा था।

"तुम्हारी सारी अर्थात् बहूकी छोटी बहिन कुँआरी है। तुम्हारी ससुरालसे एक ब्राह्मण उसकी सगाईकी बातचीत लेके आया था, सो मैंने तुमसे बिना पूँछे ही शुभमुहूर्त शुभदिनमें सगाई पक्की करली है। भरोसा है कि, तुम मेरी इस कृतिसे अप्रसन्न नहीं होओगे" इन द्विरूपक समाचारोंको पढकर कविवरने कहा—

एकबार ये दोऊ कथा। संडासी लुहारकी यथा।
छिनमें अगिनि छिनक जलपात। त्यों यह हर्षशोककी बात॥

अपने गृहसंसारके इस प्रकार अचानक परिवर्तनसे किसको शोक-वैराग्य नहीं होता? सबको होता है और अधिक होता है। परन्तु खेद है कि, मोहमाया-परिवेष्टित-चित्तमें वह स्मशान-वैराग्य चिरकाल तक नहीं रहता। जगतके यावत्कार्य नियमानुसार चलते ही रहते हैं, किसीके मरने वा जन्मलेनेसे उनमें अन्तर नहीं आता। बनारसीदासजीकी भी यही दशा हुई। थोड़े दिनों तक उनका चित्त शोकाकुल रहा, परन्तु पीछे व्यापारादि कार्योंमें लिप्त होके वे सब भूल गये। सब ही भूल जाते हैं।

इन दिनों दोनों मित्रोंने छह सात महीने व्यापारमें बड़ी मशक्कत उठाई। आवश्यकतानुसार कभी जौनपुर और कभी बनारसमें रहे, परन्तु निरन्तर साथमें रहे। उस समय जौनपुरका नव्वाब चीनीकिलीचखां था, यह बड़ा बुद्धिमान, पराक्रमी तथा दानी

था। और बादशाहकी ओरसे " चारहजारीमीर " कहलाता था। इसने एक बार कविवरकी प्रशंसा सुनकर इन्हें बुलाया और बडे प्रेमसे सिरोपाव देकर सत्कार किया। नव्वाबमें और कविवरमें अत्यन्त गाढ मैत्री हो गई। नव्वाबकी कविवरपर बडी कृपा रहने लगी। कुलीचखां कोई प्रदेश फतह करनेके लिये अन्यत्र चला गया और दो महिनेतक लौटके नहीं आया। इसी समय जौनपुरमें इनका कोई परम वैरी उत्पन्न हुआ, उसने इन दोनों (बनारसी-नरोत्तम) को अतिशय दुःखित किया। और बहुत सी आर्थिक हानि भी पहुंचाई।

तिन अनेकविध दुख दियो, कहौं कहां लों सोय।
जैसी उन इनसों करी, तैसी करै न कोय॥ ४५२॥

चीनीकिलीचखां देश विजय करके जौनपुर आगया, बनारसीदासजीसे पूर्वानुसार स्नेह रहा। अबकी बार उसने कविवरसे कुछ विद्याभ्यास करना प्रारंभ किया। नाममाला, श्रुतबोध, छन्द कोष, आदि अनेक ग्रन्थ पढे। किलीचखांके चले जानेपर जिस पुरुषने दुःख पहुंचाया था, उसके विषयमें यद्यपि कविवरने नव्वाबसे कुछ भी नहीं कहा था, और अपना पूर्वोपार्जित कर्मोंका फल समझकर वे उससे कुछ बदला भी नहीं लेना चाहते थे, परन्तु वह भयभीत हो गया, और नव्वाबसे प्रार्थना करके पांच पंचोंमेंसे क्षमा मांगके झगडेका निबटेरा जब तक न किया, तब तक उसे निराकुलता नहीं हुई। सज्जनोंके शत्रु स्वयं आकुलित रहा करते हैं! संवत् १६७२ में चीनीकिलीचखांका शरीरपात हो गया। कविवरको इस गुणग्राहीकी मृत्युसे शोक हुआ। वे अपने मित्रके साथ जौनपुर छोडके पटनेको चले गये, वहां छह सात महीने रहकर

रहे। तब तक सुना कि, आगानूर आगरेकी ओर चला गया है। अतः शीघ्र ही सफ़र करके जौनपुर आ गये।

जौनपुरमें सबलसिंहजी मोठियाका पत्र आया कि, "दोनों सांझी यहां चले आओ, अब पूर्वमें रहनेकी आवश्यकता नहीं है।" पाठकोंको स्मरण होगा कि, यह सबलसिंह वही हैं, जिन्होंने इन दोनोंको साझी करके व्यापारको भेजा था। इस चिट्ठीके साथमें एक गुप्तचिट्ठी नरोत्तमदासजीके नामकी आई थी, जो उनके पिताने भेजी थी। नरोत्तमदासजीने चिट्ठी मनोनिमेष पूर्वक बांची और एक दीर्घनिःश्वास लेकर अपने प्राणाधिकप्रिय मित्र बनारसीके हाथमें वह चिट्ठी दे दी और पाठ करनेको कहा। बनारसी बांचने लगे, उसमें लिखा था—

खरगसेन बानारसी, दोऊ दुष्ट विशेष।
कपटरूप तुझसों मिले, करि धूरतका भेष॥ ४८१
इनके मत जो चलेगा, सो मांगेगा भीख।
तातें तू हुशियार रह, यही हमारी सीख॥ ४८२

चिट्ठी पढते ही बनारसीके मुखपर कुछ शोककी छाया दिखाई दी। यह देखते ही नरोत्तम हाथ जोड़के गद्गद हो बोला "मेरे अभिन्नहृदय-मित्र! संसारमें मुझे तू ही एक सच्चा बांधव मिला है। मेरे पिताकी बुद्धि अविचारित-रम्य है। वे किसी दुष्टके बहकानेमें लगे हैं, अतः उनकी भूल क्षन्तव्य है। मेरा अचलविश्वास आपमें यावचन्द्र-दिवाकर रहेगा। आप मुझपर कृपा रक्खें।" मित्रके इस विशदविवेक-पूर्ण और विश्वस्तभापणसे बनारसी विमुग्ध-अवाक हो रहे। चित्तमें आनन्दकी धारा बहने लगी और उसमेंसे मंद २ शब्द निकलने लगे "यदि संसारमें मित्र हो, तो ऐसा ही हो। अहा!

"विधिना केन सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम्" । एक दिन अपने मित्रके गुणोंका मनन करते हुए बनारसीदासजीने निम्नलिखित कवित्त बनाया था । इसे वे निरन्तर पढा करते थे—

नवपद ध्यान गुनगान भगवंतजीको,
करत सुजान दिन ज्ञान जगि मानिये ।
रोम रोम अभिराम धर्मलीन आठों जाम,
रूप-धन-धाम काम मूरति बखानिये ॥
तनकौ न अभिमान सात खेत देत दान,
महिमान जाके जसको वितान तानिये ।
महिमानिधान प्रान प्रीतम 'बनारसी' को,
चहुपद आदि अच्छरन नाम जानिये ॥ ४४८ ॥

नरोत्तमदास संवत् १६७३ के वैशाखमें साझेका लेखा करके साहुकी आज्ञानुसार आगरे चले गये । बनारसीदास नहीं जा सके, क्योंकि इस समय उनके पिता खरगसेनजीको बीमारी लगने लगी थी । पुत्रने पिताकी जी जानसे सेवा की, नाना औषधियोंका सेवन कराया, परन्तु फल कुछ भी नहीं हुआ । मौतका परवाना आ चुका था, अतः विलम्ब नहीं हो सका । ज्येष्ठकृष्णा पंचमीकी कालरात्रिमें खरगसेनजीका प्राणपखेरू शरीर पंजरसे देखतेही देखते उड़ गया । पुत्र अतिशय शोकाकुल हुआ । पूज्य पिताके पूज्य गुणस्मरण करके हाय पिता! हाय पिता! कहनेके सिवाय वह और कुछ न कर सका—

कियो शोक बानारसी, दियो नैन भर रोय ।
हियो कठिन कीन्हों सदा, जियो न जगमें कोय ॥ ४९५

पिताके स्वर्गवास होनेपर १ महीने तक पुत्रने पितृशोक मनाया। शोक विस्मृत करनेके लिये लोगोंने उन्हें अनेक शिक्षायें देकर, ज्यों त्यों संतोषित किया। जीव इष्टजनोंके वियोगमें दुःखी होते हैं, परन्तु निदान यह संसार है, मोहमायामें शीघ्र ही उसको भूल जाते हैं। बनारसी फिर जगज्जालमें लीन हुए। थोड़े दिन पीछे साहुजीका पत्र आया कि "तुम्हारे विना लेखा नहीं चुकेगा, अतः तुम्हें आगरेको आना चाहिये।" साहुजीकी आज्ञानुसार बनारसीदासजी आगरेको रवाना हुए। इस यात्रामें मुगलाईके न्याय और अत्याचारका कविवरने अपनेपर वीता हुआ वृत्तान्त लिखा है, पाठकोंको यह रुचिकर होगा।

"मैं अपने शाहजीकी आज्ञासे एक शीघ्रगामी अश्वपर सवार होके आगरेको रवाना हुआ। पहिले दिन घेसुआ नामक गांवमें रात्रि हो जानेसे ठहरना पड़ा। संयोगसे उसी दिन आगरेका एक कोठीवाल महेश्वरी अपने ६ नौकरोंके साथ इसी ग्राममें मेरे पास ही ठहर गया। और भी २-३ ब्राह्मण तथा अन्य लोगोंका संग हो गया। सब १९ मनुष्य हो गये। सब आपसमें यह राय करके कि, आगरे तक बराबर साथ चलेंगे, दूसरे दिन घेसुआसे डेरा उठाके चल पड़े। कई दिन चलकर इस संघने घाटमपुरके निकट कुर्रा नामक ग्रामकी सरायमें डेरा डाला। सब लोग अपने २ खाने दानेकी चिन्तामें लगे, कोई बाजार गया, कोई अन्य कहीं गया। मथुरावासी ब्राह्मणोंमेंसे एक दूध लेनेके लिये अहीरके घर गया और दूसरा बाजारमें पैसे भुनाकर खाद्यसामग्री लेके डेरेपर आगया। थोड़ी देरमें वह सराफ जिसके यहांसे विप्र पैसे लाया था, आ धमका और बोला कि, तू हमको धोखा देकर

खोटा रुपया दे आया है। विप्रने कहा तू झूठ बोलता है, मैं चोखा देके आया हूं। बस! दो चार बार की 'मैं मैं तू तू' में बन पडी। विप्रजीने सराफको खूब मार जमाई। लोगोंने बीच बचाव बहुत करना चाहा, पर चौबेजी कब माननेवाले देवता थे! सराफका एक भाई मदद करनेके लिये दौडा हुआ आया। पर चौबेजीके आगे लडनेमें बचाकी हिम्मत नहीं पडी; इसलिये एक जालसाजी सोची। ठीक ही है "जो बलसे नहीं जीता जावे उसे अकलसे जीतना चाहिये।" ब्राह्मणके कपडोंमें २५) रु० और भी बंधे हुए थे, उन्हें सराफके भाईने खोल लिये और "ये भी सब बनावटी तथा खोटे हैं" ऐसा कहता हुआ कोतवालके पास पहुंचा। मार्गमें चौबेके असली रुपयोंको कहीं चला दिये और बनावटी रुपये कोतवालके सन्मुख पेश किये और बोला "दुहाई सरकार की! नगरमें बहुतसे ठग आये हुए हैं, वे इसी तरह हजारों खोटे रुपया चला रहे हैं। और ऐसे जबर्दस्त हैं कि, लोगोंको मारने पीटनेसे भी बाज नहीं आते। मेरे भाईको मार २ के अधमुआ कर डाला है। दुहाई हुजूर! बचाइयो!!" कोतवालने इस वणिककी रिपोर्टको नगरके हाकिमतक पहुंचाई। हाकिमने दीवान सा० को तहकीकातके लिये भेज दिया। संध्याका वक्त हो गया था, कोतवाल और दीवानकी सवारी सरायमें पहुंची। नगरके सैकड़ों आदमियोंकी सवारी भी सरायमें जा जमी। बडा जमघट्ट हुआ। कोतवाल और दीवानके सामने विप्र हाजिर किये गये। इजहार होने लगे। पहिले उनके नाम ग्रामादि पूछे गये, फिर रुपयोंके विषयमें पूंछतांछ की गई। लोग नानाप्रकारकी सम्मतियां देने लगे। कोई बोले ठग हैं, कोई पाखंडी वेषी हैं, कोई बोले मालूम तो भले आदमीसे होते हैं। कोतवालने सबकी सुन सुना-

कर हुक्म दिया, इनको और इनके साथियोंको इसीसमय बांध लो। इसपर दीवानसा०ने उन्हें छेड़ा। कहा कि, उतावली नहीं करनी चाहिये। अभी रात्रिको चोर साहूका पूरा २ निश्चय नहीं हो सक्ता, जब तक सवेरा न हो, इन्हें पहिरेमें रखनेकी व्यवस्था कीजिये। सबेरे जैसा निश्चय हो, कीजियेगा। दीवानसा०की बात मान ली गई और सब लोग पहिरेमें रक्खे गये। उन्हें यह भी आज्ञा दी गई कि, "घाटमपुर, कुरी, बरी आदि तीन चारग्रामोंमेंसे यदि तुम अपनी विश्वस्तताके विषय साक्षी उपस्थित कर सकोगे, तो छोड़ दिये जाओगे अन्यथा तुम्हारा कल्याण नहीं है।" सब लोग चले गये, रात्रि आधी वीतगई, चिन्ताके मारे हम लोगोंके पास नींद खड़ी भी नहीं हुई। जब कि नगरभरमें वह अपना चक्र चलाके प्रायः सबको प्राणहीन कर चुकी थी। नाना सोच विचारोंमें मेरा कलेजा उछल रहा था कि, एकाएक महेश्वरी कोठीवालने कहा "मित्र! अपनी रक्षाका द्वार निकल आया। मुझे अब स्मरण हो आया कि, मेरा छोटाभाई पासके इसी बरी ग्राममें विवाहा है। अब कोई चिन्ता नहीं है" मेरे शुष्क हृदयमें आशालताका संचार हुआ; पर एकप्रकारसे संदेह बना ही रहा, क्यों कि इतने विलम्बसे महेश्वरीने जो बात कही है, उसमें कुछ कारण अवश्य है, जो सर्वथा विपत्तिसे खाली नहीं हो सक्ता।

सवेरा हो गया, दीवान और कोतवालकी सवारी आ पहुंची। साथमें हम १९ आसामियोंके लिये शूली भी तयार की हुई लाई गई, इन्हें देखते ही दयालु-हृदय पुरुष कांप उठे! कि आज किन अभागोंके दिन आ पहुंचे! हम लोगोंसे साक्षी मागी गई। महेश्वरीने बरीमें अपनी ससुरालकी बात कही। इसके सुनते ही हम सब लोगोंको पहिरेमें छोडके और महेश्वरीको साथ लेके

दीवान कोतवाल वगैरकी ओर गये । ससुरालवालोंसे भेट हुई । आदर सत्कार होने लगे । ससुरालवाले बडे प्रतिष्ठित पुरुष थे, उनके भेंट मिलापसे ही कोतवालकी साक्षी पूरी हो गई, वे शक्ल सी भराये लौट आये और हमसे कहने लगे "आप सच्चे साहु हैं, हम लोगोंसे अपराध हुआ जो आप लोगोंको इतना कष्ट पहुंचाया, माफ कीजियेगा।" मैंने कहा आप राजा हम प्रजा हैं । राजा प्रजाका ऐसा ही सम्बन्ध है, इसमें आपका कोई दोष नहीं है—

जो हम कर्म पुरातन कियो। सो सब आय उदय रस दियो।
भावी अमिट हमारा मता। इसमें क्या गुनाह क्या खता॥

इस प्रकार बातचीत करके दीवानादि लज्जित होते हुए अपने २ घर आये । मैंने एक दिन और भी मुकाम किया । छह सात सेर फुलेल लेकर हाकिम, दीवान, कोतवाल सबकी भेटमें दिया । वे बहुत प्रसन्न हुए । अवसर पाकर मैंने उनसे कहा आपके नगरका सराफ ठग था, हम लोग मुफ्तमें फसाये गये थे । यद्यपि हम लोग अपने भाग्यसे बच निकले, परन्तु उस ठगके विषयमें कुछ भी विचार नहीं किया गया । गरीब ब्राह्मणोंके रुपये दिला देना चाहिये, वे व्यर्थ ही लूट लिये गये हैं । इसपर हाकिमोंने लज्जित होते हुए कहा, हमने आपके विना कहे ही उसको पकडनेकी व्यवस्थाकी थी, परन्तु खेद है कि, भेद खुलनेके पहिले ही वे दोनों यहां से लापता हैं । अतः लाचारी है ।

शामको महेश्वरी शाह आ गये, आनन्द मंगल होने लगे । शेरके पंजेसे छुटकारा पाया, सबेरे ही सब लोग चल पडे । नदीके पार होते हुए विप्रलोग मार्गमें आडे पड गये और लगे दाढ़ें मारकर रोने । हमारे रुपये लूट लिये गये, अब हम कैसे जीवेंगे । अब तो

हम यहीं प्राण दे देवेंगे। उनके इन दयायोग्य वचनोंसे हमलोग दुःखी हो गये। दया आ गई। ब्राह्मणोंका विलाप और नहीं सुना गया। हम दोनों (महेश्वरी-बनारसी)ने मिलके २५) रु० विप्रोंको देकर संतुष्ट किया। ब्राह्मण आशिष देते हुए विदा हो गये।

"ब्राह्मण गये अशीष दै,

भये वणिक निष्पाप"

इस प्रकार मुगलाई के एक राजकीय चरित्रका वर्णन समाप्त हुआ। जिस समय आगरा बहुत निकट रह गया था, किसी पथिकने बनारसीदासजीको वह वज्र खबर सुनाई, जिसके सुननेके लिये वे आजन्म प्रस्तुत नहीं थे। और जिसके सुननेके लिये उनका कोमल हृदय सर्वथा असमर्थ था, परन्तु आनेवाली आपदायें कहकर नहीं आतीं, अचानक आ दबाती हैं। पथिकने कहा "तुम्हारे मित्र नरोत्तमका परलोक हो गया।" इसके अतिरिक्त बनारसी और कुछ न सुन सके। उनका सुन्दर शरीर तत्काल धराशायी हो गया, विचारशक्ति चली गई, वे मूर्च्छामें आविर्भूत हो गये। उनके साथी इस दशामें बड़े व्याकुल हुए, जलसेचनादि उपायोंसे उनकी मूर्च्छा-निवृत्ति की। मूर्च्छानिवृत्तिके साथ शोककी ज्वाला उनके हृदयमें धधक उठी, जिसके कारण मुंहमेंसे संतप्त उच्छ्वास निकलने लगे, और नेत्रोंसे बाष्पस्वरूप जलधारा निकलने लगी। विषादयुक्त-वदन-विनिर्गत 'हाय मित्र! हाय मित्र! हाय मित्र! कहां गये' आदि शब्द सुननेवालोंकी आंखोंमेंसे भी दो चार बूंद आंसुओंके निकालते थे। बड़ी बुरी अवस्था हो गई। लोगोंने ज्यों त्यों समझा बुझाकर उन्हें आगरेमें ठिकानेपर पहुंचाया। वहां

वे अनेक दिन तक शोकाकुल रहे, बड़ी कठिनतासे मित्रशोकको विस्मृत कर सके ।

एक दिन आगरेमें किस लिये आये हैं? इस बातकी चिन्ता हुई, तब साहुजीके हिसाब करनेके लिये गये । परन्तु साहुजीका शाही दरबार देखके अवाक् हो रहे । उन्होंने वणिकोंके घर ऐसा अंधाधुंध कभी नहीं देखा था । साहुजी तकियेके सहारे पड़े हैं । वन्दीजन विरद पढ रहे हैं । नृत्यकारिणी छमाके भर रही है । नानाप्रकारके सुंदर वादित्र बज रहे हैं । भांड अपनी रंगविरंगी नकलोंमें मस्त हैं । और शेठजी तथा उनके सेवक सबहीमें मस्त हैं । भला! वहां इनका हिसाब कौन सुने? और वहां इतना अवकाश किसको? कविवर लिखते हैं, कि इस दरबारमें पैर तोड़ते २ मैंने चार महिने खो दिये ।

जबहिं कहैं लेखेकी बात । साहु जबाब देहिं परभात ।
मासी बरी छमासी जाम । दिन कैसा? यह जाने राम ॥
सूरज उदय अस्त है कहां? विषयी विषय मगन है जहां ॥

साहुजीके अंगाशाह नामक बहनेऊ (भगिनीपति) थे, जो बनारसीदासके मित्र थे । इनके द्वारा बनारसीदासने बड़ी कठिनतासे अपना हिसाब साफ किया । साहुजीने कहने सुननेसे ज्यों त्यों फारकती लिख दी । इसके बाद ही बनारसीदासके भाग्यका सितारा चमका । उन्होंने साझा छोड़के पृथक् दूकान कर ली, और उसमें खूब लाभ उठाया ।

संवत् १६७३ के फाल्गुणमासके लगभग आगरेमें उस रोगकी उत्पत्ति हुई, जो आज सारे भारतवर्षमें व्याप्त है, और जो दशवर्षसे लक्षावधि प्रजाको मुंह फाड़ २ के निगल रहा है । जिसके आगे

डाक्टर लोग असमर्थ हो जाते हैं, हकीम लोग जवाब दे देते हैं, और वैद्य बगलें झांकते हैं। जिसे अंग्रेजीमें प्लेग, हिन्दीमें मरी, और मराठी गुजरातीमें मरकी कहते हैं। अनेक लोगोंका ख्याल है कि, यह रोग भारतमे पहिले पहिल हुआ है, परन्तु यह उनकी भूल है। इसके सैकड़ो प्रमाण मिलते हैं, कि प्लेग अनेक बार हो चुका है। और उसका यही रूप था जो आज है। कविवरने इस विषयमें जो वाक्य लिखे हैं, वे ये हैं—

---

१ बम्बईके भूतपूर्व कमिश्नर 'सर जेम्स केम्बले'ने 'अहमदाबादगेजेटियर' में कुछ दिन पहिले इस विषय सम्बन्धी अनेक उल्लेख किये हैं, जो पाठकोंके जानने योग्य हैं। उन्होंने लिखा है कि, "ईस्वी सन् १६१८ अर्थात् वि० सं० १६७५ के लगभग अहमदाबादमें प्लेग फैल रहा था, जो कि आगरा-दिल्लीकी ओरसे आया था, और जिसका प्रारंभ ई० स० १६११ में पंजाबसे निश्चित होता है। जिस समय प्लेग आगरा और दिल्लीमें कहर मचा रहा था, वहांके तत्कालीन बादशाह जहांगीर उससे डरकर अहमदाबादमें कुछ दिनोंके लिये आ रहे थे। कहते हैं कि उनके आनेके थोड़े ही दिन पीछे इस छुआछूतके रोगने अहमदाबादमें अपना डेरा आ जमाया था। सारांश—अहमदाबादमें आगरा-दिल्लीसे और आगरा-दिल्लीमें पंजाबसे प्लेगका बीज आया था। उस समय प्लेगका चक्र यत्र तत्र ८ वर्षके लगभग चला था। वर्तमान प्लेगकी नाई उस समय भी उसका चूहोंसे घनिष्ट सम्बन्ध पाया जाता था, अर्थात् उस समय जहां २ प्लेगका उपद्रव होता था, चूहोंकी संख्यामें वृद्धि होती थी।" उस समय हिन्दुस्थानमें जो यूरोपियन रहते थे, उन्हें भी प्लेगमें फँसना पड़ा था। वह काले और गोरोंके साथ नीतिज्ञ राजाकी नाई तब भी एक सा बर्ताव करता था। इस विषयमें "मि० टेरी" नामक ग्रन्थकारने लिखा है "नौ

"इस ही समय ईति विस्तरी। परी आगरे पहिली मरी।
जहां तहां सब भागे लोग। परगट भया गांठका रोग॥
निकसै गांठि मरै छिनमाहिं। काहूकी वसाय कछु नाहिं॥
चूहे मरें वैद्य मर जाहिं। भयसों लोग अन्न नहिं खाहिं॥"

मरीसे भयभीत होकर लोग भाग २ के दूर २ के खेटों और जंगलोंमें जा रहे। बनारसीदासजी भी एक अजीजपुर नामके ग्राममें एक ब्राह्मण मालगुजारके यहां जाके रहने लगे। मरीकी निवृत्ति होनेपर वे अपने मित्र 'निहालचन्द्' जीके विवाहको अमृतसर गये, और वहांसे लौटकर फिर आगरेमें रहने लगे। माताको भी जौन-

---

दिनके अरसेमें सात अंग्रेजोंकी मृत्यु हो गई, प्लेगमें फंसनेके बाद इन रोगियोंमेंसे कोई भी २४ घंटेसे अधिक जीता नहीं रहा, बहुतोंने तो १२ घंटेमें ही रास्ता पकड लिया।" सन् १६८४ में औरंगजेब बादशाहके लश्करमें भी प्लेगने कहर मचाया था, ऐसा इतिहाससे पता लगा है।

बनारसीदासजीके नाटकसमयसार ग्रन्थमें भी प्लेगका पता लगता है। उसमें बंधद्वारके कथनमें जगवासी जीवोंके लिये कहा है—

"धरमकी बूझी नहीं उरझे भरम माहिं
नाचि नाचि मर जाहिं मरी कैसे चूहे हैं।"

पाठकोंको जानना चाहिये कि, उस समय प्लेगको मरी कहते थे। यद्यपि महामारी (हैजा) को भी मरी कहते हैं, परन्तु चूहोंका मरना यह प्लेगका ही असाधारण लक्षण है, हैजाका नहीं।

१ प्लेगका एक विशेष भेद भी है, जिसमें गांठ नहीं निकलती, केवल ज्वर होता है और ज्वरके पश्चात् मृत्यु। वैद्यक ग्रन्थकारोंने प्लेगको "ग्रन्थिक सन्निपात" बतलाया है। यह असाध्य रोग है।

पुरसे अपने पास बुला लिया, और उनकी आज्ञानुसार खैराबाद जाकर उन्होंने अपना दूसरा विवाह कर लिया। खैराबादसे आकर कविवरके चित्तमें यात्रा करनेकी इच्छा हुई, इसलिये वे अपनी माता और नवीन भार्याको साथ लेकर 'अहिछित्ति पार्श्वनाथ'की वंदनाको गये, और वहांसे हस्तिनागपुर आये। वहां पर भगवान् शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, और अर:नाथकी भक्तिसहित पूजन की। पूजनमें एक तात्कालिक षट्पद बनाकर पढ़ा—

श्री विसंसेननरेश[1], सूरनृप[2]-राय सुदंसन[3]।
ऐरा-सिरि-आदेवि,(?)[4]करहिं जिस देव प्रसंसन॥
तासु नँदन सारंग[5],-छाग[6]-नन्दावत[7] लंछन।
चालिस-पैंतिस-तीस, चाप[8] काया छवि कंचन।
सुखरास 'बनारसिदास' भनि, निरखत मन आनन्दई।
हथिनापुर-गजपुर-नागपुर, शान्ति-कुन्थु-अर बन्दई॥

हस्तिनापुरसे दिल्ली, मेरठ, कोल होते हुए बनारसीदासजी सकुटुम्ब सकुशल आगरा आ गये। संवत् १६७६ में कविवरको द्वितीयभार्यासे एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। ७७ में माताका स्वर्गवास हो गया। ७९ में पुत्र तथा भार्या दोनोंने विदा मांग ली। और लोकरीतिके अनुसार संवत् ८० में खैराबादके कूकड़ीगोत्रज वेगाशाहजीकी पुत्रीके साथ विवाह हो गया। जैसे पतझर होके वृक्षोंमें पुनः नवीन सुकोमल उत्पलोंकी सृष्टि होती है, उसी प्रकार कविवर

१ विश्वसेन। २ सूरसिंह। ३ सुदर्शन। ४ ऐरादेवी, श्रीकान्तादेवी, सुमित्रादेवी। ५ मृग। ६ मेप। ७ नन्दावर्त। ८ धनुष् (माप विशेष)।

एक वार कुटुम्बहीन होके पुनः गृहस्थ हो गये । इस प्रकार थोड़े-ही दिनोंमें बनारसीदासजीके संसारमें अनेक उलट फेर हुए ।

आगरेमें अर्थमल्लजी नामक एक सज्जन अध्यात्मरसके परम-रसिक थे । कविवरके साथ उनका विशेष समागम रहता था । वे कविवरकी विलक्षण काव्यशक्ति देखकर हर्षित होते थे, परन्तु उनकी कविताको अध्यात्मकल्पतरुके सौरभसे हीन देख-कर कभी २ दुःखी भी होते थे, और निरन्तर उन्हें इस ओरको आकर्षित करनेके प्रयत्नमें रहते थे । एक दिन अवसर पाकर उन्हों ने पं० रायमल्लजीकृत बालावबोधटीकासहित नाटकसम-यसार ग्रन्थ कविवरको देकर कहा आप इसको एक वार पढ़िये और सत्यकी खोज कीजिये । कविवरने चित्त लगाकर समयसारका पाठ करना आरंभ कर दिया । एक वार पूरा पढ़ गये, पर संतोष न हुआ अतः फिर पढ़ा । इस प्रकार वारंवार पढ़ा और भापार्थ मनन किया, परन्तु एकाएक आध्यात्मिक पेच समझ लेना सहज नहीं है । विना गुरुके अध्यात्मका यथार्थ मार्ग नहीं सूझ सक्ता । क्योंकि विलक्षणदृष्टि पुरुष भी अध्यात्ममें भूलते और चक्कर खाते देखे जाते हैं । कविवरकी बुद्धि इस परम आध्यात्मिक प्रकाशको देख-

---

१ पंडित रायमल्लजी भाषाके बहुत प्राचीन लेखक प्रतीत होते हैं । पं० दुलीचन्दजीने इन्हें तेरहवींशताब्दीके लगभगका बतलाया है । समयसार टीका, प्रवचनसार टीका, पंचास्तिकाय टीका, षट्प्राभृत टीका, द्रव्यसंग्रह टीका, सिन्दूरप्रकर टीका, एकीभाव टीका, श्रावकाचार, भक्तामरकथा, भक्तामर टीका, और अध्यात्मकमल मार्तंड आदि ग्रन्थोंके प्रभावशाली रचयिता हैं । खेद है कि इनमेंसे किसी भी ग्रन्थको हमने नहीं देखा ।

कर भी याथार्थ्य न देख सकी, उन्हें कुछ का कुछ जँचने लगा। बाह्यक्रियाओंसे वे हाथ धो बैठे, और जहां तहां उन्हें निश्चयनय ही सूझने लगा। "न इधरके हुए न उधर के हुए" वाली कहावत चरितार्थ हुई। कविवरने अपनी उस समयकी दशा एक दोहेमें इस तरह व्यक्त की है—

करनीको रस मिट गयो, भयो न आतमस्वाद।
भई **बनारसि**की दशा, जथा ऊंटको पाद॥ ५९७॥

इसी समय आपने ज्ञानपचीसी, ध्यानवत्तीसी, अध्यात्मवत्तीसी, शिवमन्दिर, आदि अनेक व्यवहारातीत सुन्दर कविताओंकी रचना की। अध्यात्मकी उपासनाके साथ २ आचारभ्रष्टताकी मात्रा बढ़ने लगी, और जैसा कि उपर कहा है, वे बाह्यक्रियाओंको सर्वथा छोड़ ही बैठे। उन्होंने जप, तप, सामायिक, प्रतिक्रमण, आदि क्रियाओंको ही केवल नहीं छोड़ा, किन्तु इतनी उच्छृंखलता धारण की, कि भगवत् का चढा हुआ नैवेद्य (निर्म्माल्य) भी खाने लगे। इनके चन्द्रभान, उदयकरन, और थानमलजी आदि मित्रोंकी भी यही दशा थी। चारों एकत्र बैठकर केवल अध्यात्मकी चरचामें अपना कालक्षेप करते थे। इस चरचामें अध्यात्मरसका इतना विपुलप्रवाह होता था कि, उसमें प्रत्येक, धर्म, जाति, व्यवहारकी, उचित, अनुचित, श्रव्य, अश्रव्य सम्पूर्ण बातें वे रोक टोक प्रवाहित होती थीं। वे जिस बातको कहते तथा सुनते थे, उसीको घुमा फिराके व्यंगपूर्वक अध्यात्ममें घटानेकी चेष्टा किया करते थे। सारांश यह है कि, उस समय इनके जीवन का अहोरात्रिका एक मात्र यही कार्य हो रहा था। हमारे जैनसमाजमें उक्त मतके अनुयायी अब भी बहुतसे लोग हैं, जो लोकशास्त्रके उलंघन करनेको ही

कमर कसे रहते हैं, और अपने अभिप्रायको प्रबल बनानेकी इच्छासे आचार्योंके वाक्योंको भी अप्रमाण कहनेमें नहीं चूकते। श्रावकोंकी क्रियाओंको वे हेय समझते हैं, और निश्चयक्रियाओंमें अनुरक्त रहनेकी डींग मारा करते हैं। ऐसे महाशयोंको इस नायकके उत्तरीय जीवनसे शिक्षा लेनी चाहिये। इस ऊर्द्ध और अधःकी मध्यदशाका पूर्ण वर्णन करनेको जिसमें हमारे कविवर और उनके मित्र लटक रहे थे, हमारे पास स्थान नहीं है। इसलिये एक दोहेमें ही उसकी इतिश्री करना चाहते हैं। पाठक इन शुद्धाम्नायियोंकी अवस्थाका अनुमान इसीसे कर लेंगे—

नगन होंहि चारों जने, फिरहिं कोठरी माहिं।
कहहिं भये मुनिराज हम, कछु परिग्रह नाहिं॥

इस अवस्थाको देखकर—

कहहिं लोग श्रावक अरु जती। बानारसी 'खोसरामती'।

क्योंकि—

निंदा थुति जैसी जिस होय। तैसी तासु कहैं सब कोय।
पुरजन विना कहे नहिं रहैं। जैसी देखैं तैसी कहैं॥

सुनी कहैं देखी कहैं, कलपित कहैं बनाय।
दुराराधि ये जगतजन, इनसों कछु न बसाय॥

कविवरने अपनी इस समयकी अवस्थापर पीछेसे अत्यन्त खेद प्रगट किया है; परन्तु फिर संतोषवृत्तिसे कहा है कि "पूर्वकर्मके उदयसंयोगसे असाताका उदय हुआ था, वही इस कुमतिके उत्पादका यथार्थ कारण था। इसीसे बुद्धिमानों और गुरुजनोंकी शिक्षायें भी कुछ असर न कर सकीं। कर्मवासना जब तक थी, तब तक उक्त

दुर्बुद्धिके रोकनेको कोन समर्थ हो सक्ता था? परन्तु जब अशुभके उदय का अन्त हुआ, तव सहज ही वह सब खेल मिट गया। और ज्ञानका यथार्थ प्रकाश समक्ष हो गया" इसप्रकार संवत् १६९२ तक हमारे चरित्रनायक अनेकान्तमतके उपासक होकर भी एकान्तके झूलनेमें खूब झूले। पश्चात् जब उदयने पलटा खाया, तब पंडित रूपचन्द्जीका आगरेमें आगमन हुआ। मानों आपके भाग्यकी प्रेरणा ही उन्हे आगरेमें खींच लाई। पंडितजीने आपको अध्यात्मके एकान्त रोगमें ग्रसित देखकर गोमट्टसाररूप औषधोपचार करना प्रारंभ कर दिया। अर्थात् आप कविवरको गोमट्टसार पढ़ाने लगे। गुणस्थानोंके अनुसार ज्ञान और क्रियाओंका विधान भलीभांति समझते ही हृदयके पट खुल गये, सम्पूर्ण संशय दूर भाग गये और—

तव **बनारसी** और हि भयो।
स्याद्वाद्परणति परणयो।
सुनि २ रूपचन्द्के वैन।
वानारसी भयो दिढ़ जैन॥

हिरदेमें कछु कालिमा, हुती सरदहन वीच।
सोउ मिटी समता भई, रही न ऊंच न नीच॥

इस ७–८ वर्षके वीचमें अनेक बातें लिखने योग्य हो चुकी हैं, जो उक्त डगमगदशाके सिलसिलेमें पड़ जानेसे नहीं लिखी जा सकीं, अतः अब लिख दी जाती हैं। संवत् १६८४ में जहांगीर सम्राट् काल-

१ हंटर साहिबने जहांगीरकी मृत्युके विषयमें केवल इतना लिखा है कि, "सन् १६२७ में (संवत् १६८४) में जब कि उसका बेटा

वश हो गये, और उनकी मृत्युके चार महीने पश्चात् शाहजहां सिंहासनारूढ़ हुए। शाहजहां जहाँगीरके बेटे थे। जहांगीरने २२ वर्ष राज्यभोग किया। काश्मीरके मार्गमें उनकी अचानक मृत्यु हो गई। इसी वर्ष बनारसीदासजीकी तीसरी भार्यासे प्रथमपुत्र अव-

---

शाहजहां और बडा सरदार महतावखां ये दोनों वागी हो रहे थे, जहांगीर मर गया, और शाहजहां अपने बापके मरनेकी खवर सुनते ही मारामारा मुल्क दक्षिणसे उत्तरको आया, और सन् १६२८ में आगरे आकर उसने गद्दीपर बैठनेका इश्तहार दे दिया। अवश्य ही कविवर लिखित ४ महीने इस बीचमें गुजर गये होंगे, और तख्त खाली रहा होगा।

१ तुजुक जहांगीरीमें बादशाहकी मृत्युके विषय इस प्रकार लिखा है-"मच्छी भवन, अजोल और वेरनागकी सैर करके बादशाह काश्मीरसे लाहौरकी ओरको बढे, और बीरमकलेके पहाड़में एक कुतूहलजनक शिकार करनेमें आप मग्न हुए। जमीदार लोग हरिणोंको हकालके पहाड़की चोटीपर लाते थे, और बादशाह साहब नीचेसे गोली मारते थे। हरिण गोली खाकर चक्कर खाता हुआ, नीचे तक आता था, इससे आप बडे प्रसन्न होते थे। (पर हाय! उन बेचारे तृणजीवी जीवोंको भी क्या प्रसन्नता होती थी?) एक दिन उस देशका एक प्यादा एक हरिणको घेरकर पहाड़पर लाया। वह हरिण एक पत्थरकी ओटमें इस तरह हो गया, कि, बादशाह नीचेसे उसे नहीं देख सक्ते थे, इसलिये वह (प्यादा) उसके हकालनेको फिरसे चला। परन्तु चलनेमें अभागेका पैर फिसल पड़ा। पास ही एक वृक्ष था, उसको उसने पकडा परन्तु वह उखड आया। निदान उस पहाडकी चोटीसे लुडकता हुआ बुरी तरहसे जमीन पर आ गिरा, और गिरते ही प्राणहीन हो गया। एकके पीछे एक जीवकी यह दशा देखकर बादशाहको बड़ा उद्वेग हुआ। वे अपने दुःखित चित्तको

तरित हुआ, परंतु थोड़े दिन जीकर ही चल बसा। फिर संवत् ८५ में दूसरा पुत्र हुआ, जो दो वर्ष जीकर उसी पथका पथिक बन गया! संवत् ८७ में तीसरा पुत्र और ८९ में एक पुत्री इस प्रकार दो संतान हुए। यह पुत्री भी थोड़े दिनकी होकर मर गई। पुत्र 'दिन दूने रात चौगुने, के क्रमसे बढ़ने लगा। कविवरका शून्यगृह आनन्दकारी कलरवयुक्त हो गया। सूक्तिमुक्तावली, अध्यात्मबत्तीसी, पैढी, फाग, धमाल, सिन्धुचतुर्दशी, फुटकर कवित्त, शिवपच्चीसी, भावना, सहस्रनाम, कर्मछत्तीसी, अष्टकगीत, वचनिका आदि कविताओंका निर्म्माण भी इसी ७—८ वर्षके बीचमें हुआ। यद्यपि कविता निर्माणके समय वे केवल शुद्धरसका आस्वादन करते थे, और वह एकान्त होनेसे जिनागमके अनुकूल नहीं था,

---

सम्हाल नहीं सके, और शिकार छोड़के दौलतखानेमें आ गये। थोड़ी देरमें उस प्यादेकी असहाया माता रोती पीटती बादशाहके पास आई। तब उन्होंने बहुत सा नकद रुपया देकर उस बुढ़ियाको थोड़ी बहुत तसल्ली की, परन्तु स्वतः उनके चित्तकी तसल्ली नहीं हुई। उनकी दशा बुढ़ियासे भी विचित्र हो गई। मानो यमराजने इस कौतुकके मिषसे उन्हें दर्शन दे दिया था।

बादशाह इसी दशामें वीरमकल्लेसे थेने और थेनेसे राजौरको गये। फिर वहांसे सदाकी नाईं पहर दिन रहे कूच किया। मार्गमें प्याला मांगा, पर ज्यों ही मुंहसे लगाया, छूटकर उलटा आ पड़ा। दौलतखानेमें पहुंचने तक यही दशा रही। बड़ी कठिनतासे रात निकली। प्रातःकाल कई स्वास बड़ी सख्तीसे आये और प्रहर दिन चढ़के अनुमान २८ सफर सन १०३७ (कार्तिक वदी ३० संवत् १६८४) को ६० वर्षकी उमरमें हिंदुस्थानके एक शक्तिशाली सम्राट्का प्राण निकल गया। सब लोग देखते ही रह गये"।

परन्तु उक्त सब कवितायें भी जिनागमके प्रतिकूल होंगी, ऐसी शंका न करनी चाहिये। वे सब अनुकूल ही हुई हैं। ऐसा कविवरने अर्द्धकथानकमें स्वयं कहा है—

सोलह सौ बानवे लों, किये नियतरस पान।
पै कवीसुरी सब भई, स्यादवाद परमान॥

गोमट्टसारके पढ़ चुकने पर पंडित रूपचन्दजीकी कृपासे जब बनारसीके हृदयके कपाट खुल गये, तब उन्होंने भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यप्रणीत नाटकसमयसार ग्रन्थका भाषापद्यानुवाद करना प्रारंभ किया। भाषा साहित्यके भंडारमें यह ग्रन्थ कैसा अद्वितीय, और अनुपम है, अध्यात्म सरीखे कठिन विषयको कैसी सरलता और सुन्दरतासे इसमें कहा है, उसे पाठक तब ही जान सकेंगे, जब एकबार उक्त पुस्तकका आद्यन्त पाठ कर जावेंगे। संवत् १६९३ की आश्विन शुक्ला त्रयोदशीको यह ग्रन्थ पूर्ण किया गया है, ऐसा ग्रन्थकी अन्त्यप्रशस्तिसे प्रगट होता है।

संवत् ९६ का वह दिन कविवरके लिये बहुत शोकप्रद हुआ, जिस दिन उनके प्यारे इकलौते पुत्रने शरीर छोड़ दिया। ९ वर्षके एक होनहार बालकके इस प्रकार चले जानेसे किस माता-पिताको शोक न होता होगा? अबकी बार कविवरके हृदयमें गहरी चोट बैठी, उन्हें यह संसार भयानक दिखाई देने लगा। क्योंकि—

नौ बालक हूए मुवे, रहे नारिनर दोय।
ज्यों तरुवर पतझार ह्वै, रहैं ठूंठसे होय॥

वे विचार करने लगे कि—

तत्त्वदृष्टि जो देखिये, सत्यारथकी भांति ।
ज्यों जाकौ परिग्रह घटै, त्यों ताको उपशांति ॥

परन्तु—

संसारी जानैं नहीं, सत्यारथकी बात ।
परिग्रहसों मानै विभव, परिग्रहविन उतपात ॥

इस प्रकार विचार करनेपर भी दो वर्ष तक कविवरके मोहका उपशान्त नहीं हुआ । संवत् १६९८ में जब कि यह अर्द्ध कथानक रचा गया है, कुछ मोह उपशान्त हुआ, ऐसा कहकर हमारे चरित्र नायकने कथानकके पूर्वार्द्ध को पूर्ण किया है ।

जीवनचरित्रके अन्तमें नायकके गुणदोषोंकी आलोचना करनेकी प्रथा है । विना आलोचनाके चरित्र एक प्रकार अधूरा ही कहलाता है । अतएव कविवरके गुणदोषोंकी आलोचना करना अभीष्ट है । जीवनचरित्रके लेखकोंको इस विषयमें बड़ा परिश्रम करना पडता है, परन्तु तौ भी वे यथार्थ लिखनेमें असमर्थ होते हैं । और अनुमानादिके भरोसे जो थोड़ा बहुत लिखते भी हैं, वह नायकके विशेषकर बाह्यचरित्रोंसे सम्बन्ध रखता है । ऐसी दशामें पाठक प्रायः नायकके अन्तर्चरित्रोंसे अनभिज्ञ ही रहते हैं । परन्तु बड़े हर्षकी बात है कि, हमारे चरित्रनायक स्वयं अपने चरित्रोंको लिखके रख गये हैं, इस लिये हमको इस विषयमें विशेष प्रयास तथा चिन्ता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । उन्हींके अक्षरोंको हम यहां लिखकर अर्द्धकथानकके चरित्रको पूर्ण करते हैं ।

अब **बनारसीके** कहौं, बर्तमान गुणदोष ।
विद्यमान पुर **आगरे** । सुखसों रहै सजोप ॥

गुणकथन ।

भाषा कवित अध्यातम माहिं । पंडित और दूसरो नाहिं ॥
क्षमावंत संतोषी भला । भली कवितपढ़वेकी कला ॥
पढ़ै संसकृत प्राकृत शुद्ध । विविध-देशभाषा-प्रतिबुद्ध ।
जाने शब्द अर्थको भेद । ठाने नहीं जगतको खेद ॥
मिठबोला सबहीसों प्रीति । जैनधर्मकी दिढ़ परतीति ॥
सहनशील नहिं कहै कुबोल । सुथिर चित्त नहिं डांवाडोल ॥
कहै सबनिसों हित उपदेश । हिरदै सुष्ट दुष्ट नहिं लेश ॥
पररमणीको त्यागी सोय । कुव्यसन और न ठानै कोय ॥
हृदय शुद्धसमकितकी टेक । इत्यादिक गुन और अनेक ॥
अलप जघन्य कहे गुन जोय । नहिं उतकिष्ट न निर्मल होय ॥

दोषकथन ।

क्रोध मान माया जलरेख । पै लछमीको मोह विशेख ॥
पोतै हास्य कर्मका उदा । घरसों हुआ न चाहै जुदा ॥
करै न जप तप संजम रीत । नहीं दान पूजासों प्रीत ॥
थोरे लाभ हर्ष बहु धरै । अलप हानि बहु चिन्ता करै ॥
मुख अवद्य भाषत न लजाय । सीखै भंडकला मन लाय ॥
भाषै अकथकथा विरतंत । ठानै नृत्य पाय एकन्त ॥
अनदेखी अनसुनी बनाय । कुकथा कहै सभामें आय ॥
होय निमग्न हास्यरस पाय । मृषावाद विन रह्यो न जाय ॥
अकसात भय व्यापै घनी । ऐसी दशा आय कर बनी ॥

उपसंहार।

कबहूं दोष कबहुँ गुन कोय। जाको उदय सु परगट होय॥
यह बनारसीजीकी बात। कही थूल जो हुती विख्यात॥
और जो सूच्छम दशा अनंत। ताकी गति जाने भगवंत॥
जे जे बातें सुमिरन भई। तेते वचनरूप परिनई॥
जे बूझी प्रमाद इहि माहिं। ते काहूपै कहीं न जाहिं॥
अलप थूल भी कहै न कोय। भाषै सो जु केवली होय॥

एक जीवकी एकदिन, दशा होत जेतीक।
सो कहि सकै न केवली, यद्यपि जाने ठीक॥
मनपरजय अरु अवधिधर, करहिं अलप चिंतौन।
हमसे कीटपतंगकी, बात चलावै कौन॥
तातें कहत बनारसी, जीकी दशा रसाल।
कछू थूलमें थूलसी, कही बहिर विवहार।
वरस पंच पंचासलों, भाख्यो निज विरतंत॥
आगे भावी जो कथा, सो जाने भगवंत॥
वरस पँचावन ए कहे, वरस पँचावन और।
बाकी मानुप आयुमें, यह उतकिष्टी दौर॥
वरस एकसौ दश अधिक, परमित मानुप आव।
सोलह सौ अट्ठानवे, समय बीच यह भाव॥
तातें अरधकथान यह, बानारसीचरित्र।
दुष्ट जीव सुन हँसहिंगे, कहहिं सुनहिंगे मित्र॥

शेषजीवन ।

पूर्वमें कह चुके हैं कि, कविवर बनारसीदासजीकी जीवनी संवत् १६९८ तककी है। इसके पश्चात् वे कब तक संसारमें रहे? क्या २ कार्य किये? प्रतिज्ञानुसार अपनी शेष जीवनी लिखी कि, नहीं? अन्य नवीन ग्रन्थोंकी रचना की कि नहीं? आदि अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं, परन्तु इनका उत्तर देनेके लिये हमारे निकट कोई भी साधन नहीं है। और तो क्या हम यह भी निश्चय नहीं कर सक्ते कि, उनका देहोत्सर्ग कब और किस स्थानमें हुआ? यह बड़े शोककी बात है।

पाठकगण जीवनचरित्रका जितना भाग ऊपरि पाठ कर चुके हैं, उसपर यदि विचार किया जावे, तो निश्चय होगा कि, वह समय उनकी आपत्तियोंका था। उस ५५ वर्षके जीवनने उन्हें बहुत थोड़ा समय ऐसा दिया है, जिसमें वे सुखसे रहे हों। बहुत थोडे पुरुषोंके जीवनमें इस प्रकार एकके पश्चात् एक, अपरिमित आपतियें उपस्थित हुई हैं। इस ५५ वर्ष की आयुके पश्चात् मोहके उपशांत होने पर उनके सुखका समय आया था, मानो विधाताने उनके जीवनके दुःख सुखमय दो विभाग स्वयं कर दिये थे और इसी लिये कविवरने इस प्रथम जीवनको पृथक् लिखनेका प्रयास किया था। आश्चर्य नहीं कि दूसरे सुखमय

१ 'बनारसीविलास' कविवरकी अनेक रचनाओंका संग्रह है। उसमें "कर्मप्रकृतिविधान" नामक सबसे अन्तिम कविता है, जो संवत् १७०० के फाल्गुणकी रची हुई है। इसके पश्चात्की कोई भी कविता प्राप्य नहीं है। इससे यह भी जाना जाता है कि, कदाचित् कविवरका सुखमय जीवन १०-५ वर्षसे अधिक नहीं हुआ हो।

जीवनको भी उन्होंने हम लोगोंके लिये लिखा हो। परन्तु वह आज हमको प्राप्त नहीं हैं। यह हम लोगोंका अभाग्य है।

इतिहास लिखने में जनश्रुतियां भी साधनभूता हैं। क्योंकि अनेक इतिहासोंके पत्र केवल जनश्रुतियोंके आधार पर ही रंगे जाते हैं। कविवरके जीवनकी अनेक जनश्रुतियां प्रचलित हैं। परन्तु अनुमानसे जाना जाता है कि, वे सब प्रथम जीवनके पश्चात्की हैं, इसलिये हम उन्हें शेषजीवनमें सम्मिलित करना ठीक समझते हैं।

१ शाहजहां बादशाहके दरबारमें कविवर बनारसीदासजीने बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। बादशाहकी कृपाके कारण उन्हें प्रतिदिन दरबारमें उपस्थित होना पड़ता था और महलमें जाकर प्रायः निरन्तर सतरंज खेलना पड़ती थी। कविवर सतरंजके बड़े खिलाड़ी थे। कहते हैं कि, बादशाह इनके अतिरिक्त किसी अन्यके साथ सतरंज खेलना पसन्द ही नहीं करते थे। बादशाह जिस समय दौरेपर निकलते थे, उस समय भी वे कविवरको साथमें रखते थे। तब अनेक राजा और नवाब खूब चिढ़ते थे, जब वे एक साधारण वणिकको बादशाहकी बराबरी पर बैठा देखते थे, और अपनेको उससे नीचे। संवत् १६९८ के पश्चात् कविवरका मोह उपशान्त होने लगा था, ऐसा कथानकमें कहा गया है। और हम जो कथा लिखते हैं, वह उसके भी कुछ पीछेकी है, जब कि, उनके चरित्र और भी विशद हो रहे थे, और जब वे अष्टांग सम्यक्त्वकी धारणा पूर्णतया कर रहे थे। कहते हैं कि उस समय कविवरने एक दुर्धर प्रतिज्ञा धारण की थी। अर्थात् उन्होंने संसारको तुच्छ समझके यह निश्चय किया था कि, मैं

---

१ सतरंजपर कविवरने अनेक कवितायें लिखी हैं।

जिनेन्द्रदेवके अतिरिक्त किसीके भी आगे मस्तक नम्र नहीं करूंगा। जब यह बात फैलते २ बादशाहके कानोंतक पहुंची, तब वे आश्चर्ययुक्त हुए परन्तु क्रोधयुक्त नहीं हुए। वे कविवरके स्वभावसे और धर्मश्रद्धासे भलीभांति परिचित थे, परन्तु उस श्रद्धाकी सीमा यहां तक पहुंच गई है, यह वे नहीं जानते थे, इसीसे विस्मित हुए। इस प्रतिज्ञाकी परीक्षा करनेके रूपमें उस समय बादशाहको एक मसखरी सूझी। आप एक ऐसे स्थानमें बैठे, जिसका द्वार बहुत छोटा था, और जिसमें विना सिर नीचा किये हुए कोई प्रवेश नहीं कर सक्ता था। पश्चात् कविवरको एक सेवकके द्वारा बुला भेजा। कविवर द्वारपर आते ही ठिठक गये, और हुजूरकी चालाकी समझके चटसे बैठ गये। पश्चात् शीघ्र ही द्वारमें पहिले पैर डालके प्रवेश कर गये। इस क्रियासे उन्हें मस्तक नम्र न करना पड़ा। बादशाह उनकी इस बुद्धिमानी से बहुत प्रसन्न हुए, और हँसकर बोले, कविराज! क्या चाहते हो? इस समय जो मांगो मिल सक्ता है, कविवरने तीन वार वचनबद्ध करके कहा, जहांपनाह! यह चाहता हूं कि, आजके पश्चात् फिर कभी दरबारमें स्मरण न किया जाऊं! इस विचित्र याचनासे बादशाह तथा अन्य समस्त दरबारी जो उस समय उपस्थित थे, चकित तथा स्तंभित हो रहे। बादशाह इस वचनके हार देनेसे बहुत दुःखी हुए, और उदास होके बोले, कविवर! आपने अच्छा नहीं किया। इतना कहके अन्तःपुरमें चले गये, और कई दिनतक दरबारमें नहीं आये। कविवर अपने आत्मध्यानमें लवलीन रहने लगे।

२ जहांगीरके दरबारमें भी इससे पहिले एक वार और यह बात

चली थी, कि बनारसीदास किसीको सलाम नहीं करते हैं। कहते हैं कि, उससमय जब उनसे सलाम करनेके लिये कहा गया था, तब उन्हों ने–यह कवित्त गढ़कर कहा था—

जगतके मानी जीव, ह्वै रह्यो गुमानी ऐसो,
आस्रव असुर दुखदानी महा भीम है।
ताको परिताप खंडिवेको परगट भयो,
धर्मको धरैया कर्म रोगको हकीम है॥
जाके परभाव आगे भागें परभाव सब,
नागर नवल सुखसागरकी सीम है।
संवरको रूप धरै साधै शिवराह ऐसो,
ज्ञानी पातशाह ताको मेरी तसलीम है॥[1]

३ एक बार बनारसीदासजी किसी सड़कपर शुष्कभूमि देखकर पेशाब करने लगे, यह देखकर एक शाही सिपाहीने जो तत्काल ही भरती हुआ था, और जो कविवरको पहिचानता नहीं था, पासमें आकर इन्हें पकड़ लिया और दो चार चपत (तमाचे) जड़ दिये। कविवरने तमाचे सह लिये, चूं तक नहीं किया और चलते बने। दूसरे दिन शाहीदरबारमें कार्यवशात्, दैवयोगसे वही सिपाही उस समय हाजिर किया गया, जब कविवर बादशाहके निकट ही बैठे हुए थे। उन्हें देखकर बेचारे सिपाहीके प्राण सूख गये। वह समझा कि, अब मेरी मृत्यु आ पहुँची है, तब ही मैंने कल इस दरबारीसे खड़े बैठे शत्रुता कर ली है। आज इसीने शिकायत करके मुझे उपस्थित कराया है। इन विचारों-

१ यह कवित्त "नाटक समयसार" में भी है।

से वह थर २ कांपने लगा। बनारसी उसके मनका भाव समझ गये। सिपाही जिसकार्यके लिये बुलाया गया था, जब उसकी आज्ञा दे दी गई, तब पीछेसे कविवरने बादशाहसे उसकी सिफारिश की कि, हुजूर! यह सिपाही बहुकुटुम्बी और अतिशयदीन है, यदि सरकारसे इसका कुछ वेतन बढ़ा दिया जावे, तो बेचारेका निर्वाह होने लगेगा। मैं जानता हूं, यह ग्रानतदार नौकर है। कविवरके कहने पर उसी समय उसकी वेतन वृद्धि कर दी गई। इस घटनासे सिपाही चकित स्तंभित हो गया। उसके हृदयमें कविवरके लिये 'धन्य! धन्य!' शब्दोंकी प्रतिध्वनि बारम्बार उठने लगी। वह उन्हें मनुष्य नहीं किन्तु देवरूपमें समझने लगा, और उस दिनसे नित्य प्रातःकाल उनके द्वारपर जाके जब नमस्कार कर आता, तब अपनी नौकरीपर जाता था।

४ आगरेमें एक बार "बाबा शीतलदासजी" नामके कोई सन्यासी आये हुए थे। लोगोंमें उनकी शान्तिता और क्षमाके विषयमें नाना प्रकार अतिशयोक्तियां प्रचलित हो रही थी, जिन्हें सुनकर कविवर उनकी परीक्षा करनेको प्रस्तुत हो गये। एक दिन प्रभातकालमें सन्यासीजीके पास गये, और बैठके भोली २ बातें करने लगे। बातोंका सिलसिला टूटने पर पूछने लगे, महाराज! आपका नाम क्या है? बाबाजी बोले, लोग मुझे 'शीतलदास' कहा करते हैं। कुछ देर पीछे यहां वहांकी वार्ता करके फिर पूछने लगे, कृपानिधान! मैं भूल गया, आपका नाम? उत्तर मिला, शीतलदास। एक दो बातें करनेके पीछे ही फिर पूछ बैठे, महाशय! क्षमा कीजिये, मैं फिर भूल गया, आपका नाम? इस प्रकार जब तक आप वहां बैठे रहे, फिर २

कर नाम पूछते रहे, और उसी प्रकार उत्तर भी पाते रहे। फिर वहांसे उठके जब घरको चलने लगे, तब थोडी दूर जाके लौटे और फिर पूछ बैठे, महाराज! क्या करूं, आपका नाम सर्वथा अपरिचित है, अतः मैं फिर भूल गया, फिर बतला दीजिये। अभी तक तो बाबाजी शान्तिताके साथ उत्तर देते रहे, परन्तु अबकी बार गुस्सेसे बाहर निकल ही पड़े। झुँझलाके बोले, अबे बेवकूफ! दशबार कह तो दिया कि, शीतलदास! शीतलदास!! शीतलदास!!! फिर क्यों खोपड़ी खाये जाता है? बस! परीक्षा हो चुकी, महाराज फेल (अनुत्तीर्ण) हो गये। कविवर यह कह कर वहांसे चलते बने कि, महाराज! आपका यथार्थ नाम 'ज्वालाप्रसाद' होने योग्य है, इसी लिये मैं उस गुणहीन नामको याद नहीं रख सक्ता था।

५ एकबार दो नग्नमुनि आगरेमें आये हुए थे, और मन्दिरमें ठहरे थे। सब लोग उनके दर्शन वन्दनको आते जाते थे, और अपनी २ बुद्ध्यनुसार प्रायः सब ही उनकी प्रशंसा किया करते थे। कविवर परीक्षाप्रधानी जीव थे। उन्हें सब लोगोंकी नाईं, दर्शन पूजनको जाना ठीक नहीं जँचा, जब तक कि मुनि परीक्षित न हों। अतएव स्वयं परीक्षाके लिये उद्यत हुए। एक दिन उक्त मुनिद्वय मन्दिरके दालानमें एक झरोखे (गवाक्ष)के निकट बैठे हुए थे और सन्मुख भक्तजन धर्मोपदेश सुननेकी आशासे बैठे थे। झरोखेकी दूसरी ओर एक बाग था। उस बागमें मुनियोंकी दृष्टि भलीभांति पहुंचती थी, और बागमें टहलनेवाले पुरुषकी दृष्टि भी मुनियोंपर स्पष्टरीत्या पड़ती थी। कविवर उस बगीचेमें पहुंचे, और झरोखेके

समीप खड़े हो गये। जब किसी मुनिकी दृष्टि उनकी ओर आती थी, तब वे अंगुली दिखाके उसे चिढ़ाते थे। मुनियोंने उनकी यह कृति कई बार देखके मुख फेर लिया, परन्तु कविवरने अपनी अंगुली मटकाना बन्द न किया। निदान मुनिद्वय क्षमा विसर्जन करनेको उद्यत हो गये। और भक्तजनोंकी ओर मुंह करके बोले, कोई देखो तो बागमें कोई कूकर ऊधम मचा रहा है। इतने शब्दोंके सुनते ही जब तक कि, लोग बागमें देखनेको आये, कविवर लम्बे २ पैर रखके नौ दो ग्यारह हो गये। देखा तो वहां कोई न था। बनारसीदासजी पैर बढ़ाये हुए चले जा रहे थे। फिरके मुनि महाशयोंसे कहा, महाराज! वहां और तो कूकर शूकर कोई न था, हमारे यहांके सुप्रतिष्ठित पंडित बनारसीदासजी थे, जो हम लोगोंके पहुंचनेके पहिले ही वहांसे चले गये। यह जानके कि, वह कोई विद्वान् परीक्षक था, मुनियोंको कुछ चिन्ता हुई, और दोचार दिन रहके वे अन्यत्र विहार कर गये। कहते हैं कि, कविवर परीक्षा कर चुकनेपर फिर मुनियोंके दर्शनोंको नहीं गये।

६ भाषाकवियोंमें गोस्वामी तुलसीदासजी बहुत प्रसिद्ध हैं। उनकी बनाई हुई रामायणका भारतमें असाधारण प्रचार है, और यथार्थमें वह प्रचारके योग्य ही ग्रन्थ है। गोस्वामीजी बनारसीदासजीके समकालीन थे। संवत् १६८० में जिस समय तुलसीदासजीका शरीरपात हुआ था, बनारसीदासजीकी आयु केवल ३७ वर्षकी थी। इस लिये जो अनेक कथाओंमें सुनते हैं कि, बनारसीदासजी और तुलसीदासजीका कई बार मिलाप हुआ था, सर्वथा निर्मूलक भी नहीं हो सक्ता।

गोस्वामीजी निरे कवि ही नहीं थे, वे एक सच्चरित्र महात्मा थे। और सज्जनोंसे भेट करना बनारसीदासजीका एक स्वभाव था; इस लिये भी दन्तकथाओंपर विश्वास किया जा सक्ता है। यद्यपि कविवरकी जीवनी संवत् १६९८ तककी है, और उसमें इस विषयका उल्लेख नहीं है, तौ भी दन्तकथाओंमें सर्वथा तथ्य नहीं हैं, ऐसा नहीं कहा जा सक्ता। एक साधारण बात समझके जीवनीमें उसका उल्लेख न करना भी संभव है।

कहते हैं कि, एकबार तुलसीदासजी बनारसीदासजीकी काव्य-प्रशंसा सुनकर अपने कुछ चेलोंके साथ आगरे आये तथा कविवरसे मिले। कई दिनोंके समागमके पश्चात् वे अपनी बनाई हुई रामायणकी एक प्रति भेट देकर विदा हो गये। और पार्श्वनाथस्वामीकी स्तुतिमय दो तीन कवितायें जो बनारसीदासजीने भेटमें दी थी, साथमें लेते गये। इसके दो तीन वर्षके उपरान्त जब दोनों कविश्रेष्ठोंका पुनः समागम हुआ, तब तुलसीदासजीने रामायणके सौन्दर्य्य विषयमें प्रश्न किया। जिसके उत्तरमें कविवरने एक कविता उसी समय रचके सुनाई—

"**विराजै रामायण घटमाहिं, विराजै रामायण०**"

(बनारसीविलास पृष्ठ २४२।)

तुलसीदासजी इस अध्यात्मचातुर्यको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले "आपकी कविता मुझे बहुत प्रिय लगी है," मैं उसके बदलेमें आपको क्या सुनाऊं?। उस दिन आपकी पार्श्वनाथस्तुति पढके मैंने भी एक पार्श्वनाथस्तोत्र बनाया था, उसे आपको ही भेट करता हूं। ऐसा कहके "भक्तिविरदावली" नामक एक सुन्दर कविता कविवरको अर्पण की। कविवरको उस कवितासे

बहुत संतोष हुआ, और पीछे बहुत दिनों तक दोनों सज्जनोंकी भेट समय २ पर होती रही।

भक्तिबिरदावलीकी कविता सुन्दर है, उसकी रचना अनेक छन्दोंमें है। तो भी रामायणकी कविताका ढंग उसमें नहीं है, इस लिये उक्त किंवदन्तीपर एकाएक विश्वास नहीं हो सक्ता। पाठकोंके जाननेके लिये उसके अन्तिम दो छन्द यहां उद्धृत किये जाते हैं—

गीतिका।

पदजलज श्री भगवानजूके, वसत हैं उर माहिं।
चहुँगतिविहंडन तरनतारन, देख विघन विलाहिं॥
थकि धरनिपति नहिं पार पावत, नर सु वपुरा कौन?
तिहि लसत करुणाजन–पयोधर, भजहिं भविजन तौन॥
दुति उदित त्रिभुवन मध्य भूषन, जलधि ज्ञान गभीर।
जिहि भाल ऊपर छत्र सोहत, दहन दोष अधीर॥
जिहि नाथ **पारस** जुगल पंकज, चित्त चरनन जास।
रिधि सिद्धि कमला अजर राजित, भजत **तुलसीदास**॥

उक्त विरदावलीमें 'तुलसीदास' इस नामके अतिरिक्त जो कि पांच छह स्थानोंमें आया है, और कोई बात ऐसी नहीं है, जिससे यह निश्चय हो सके कि, यह 'तुलसी' गुसांइजी ही थे, अथवा कोई अन्य। परन्तु गुसांईजी का होना सर्वथा असंभव भी नहीं कहा जा सक्ता। क्योंकि उस समयके विद्वानोंमें आजकलकी नाईं धर्मद्वेष नहीं था। वे बड़े सरलहृदयके भक्त थे।

७ कविवरका देहोत्सर्गकाल अविदित है, यह ऊपर कहा

जा चुका है, परन्तु मृत्युकालकी एक किंवदन्ती प्रसिद्ध है। कहते हैं कि, अन्तकालमें कविवरका कंठ अवरुद्ध हो गया था, रोगके संक्रमणके कारण वे बोल नहीं सक्ते थे। और इसलिये अपने अन्त समयका निश्चयकर ध्यानावस्थित हो रहे थे। लोगोंको विश्वास हो गया था कि, ये अब घंटे दो घंटेसे अधिक जीवित नहीं रहेंगे, परन्तु कविवरकी ध्यानावस्था जब घंटे दो घंटेमें पूर्ण नहीं हुई, तब लोग तरह २ के ख्याल करने लगे। मूर्खलोग कहने लगे कि, इनके प्राण माया और कुटुम्बियोंमें अटक रहे हैं, जब तक कुटुम्बीजन इनके सम्मुख न होंगे और दौलतकी गठरी इनके समक्ष न होगी, तब तक प्राणविसर्जन न होंगे। इस प्रस्तावमें सबने अनुमति प्रकाश की, किसीने भी विरोध नहीं किया। (मूर्खमंडलको नमस्कार है!) परन्तु लोगोंके इस तरह मूर्खता-पूर्ण विचारोंको कविवर सहन नहीं कर सके। उन्होंने इस लोकमूढताका निवारण करना चाहा, इसलिये एक पट्टिका और लेखनीके लानेके लिये निकटस्थ लोगोंको इशारा किया। बड़ी कठिनताके साथ लोगोंने उनके इस संकेतको समझा। जब लेखनी पट्टिका आ गई, तब उन्होंने निम्नलिखित दो छन्द गढकर लिख दिये। इन्हें पढकर लोग अपनी भूलको समझ गये, और कविवरको कोई परम विद्वान् और धर्मात्मा समझकर वैयावृत्यमें लवलीन हुए।

ज्ञान कुतक्का हाथ, मारि अरि मोहना।
प्रगट्यो रूप स्वरूप, अनंत सु सोहना॥
जा परजैको अंत, सत्यकर मानना।
चले बनारसिदास, फेर नहिं आवना॥

इस कथासे जाना जाता है कि, कविवरकी मृत्यु किसी ऐसे स्थानमें हुई है, जहां उनके परिचयी नहीं थे । क्योंकि आगरे अथवा जौनपुरमें उनकी बडी प्रतिष्ठा थी, वहां इस प्रकारकी घटना नहीं हो सक्ती थी ।

बनारसीदासजीकी रचना ।

बनारसीविलास, नाटकसमयसार, नाममाला, और अर्द्ध-कथानक, ये चार ग्रन्थ कविवरकी रचनाके प्रसिद्ध हैं । बाबा दुलीचन्दजी संगृहीत ग्रन्थोंकी सूची (जैनशास्त्र नाममाला) में बनारसीपद्धति ग्रन्थ भी आपका बनाया हुआ लिखा है । अभी तक हम अर्धकथानक और बनारसीपद्धति दोनोंको एक समझते हैं, परन्तु दुलीचन्दजीके लेखसे दो पृथक् ग्रन्थ प्रतीत होते हैं । क्योंकि उन्होंने बनारसीपद्धतिको जयपुरके भंडारमें मौजूद बतलाया है । अतः हो सक्ता है कि, यह कोई दूसरा ग्रन्थ हो, अथवा

---

१ और पांचवा ग्रन्थ वह है, जो यमुनानदीके विशालगर्भमें सदाके लिये विलीन हो गया है । और जिसके लिये कर्ता महाशयके रसिक मित्र दुःखी हुए थे । पाठको ! स्मरण है, वह शृङ्गार-रसका ग्रन्थ था ।

२ बनारसीपद्धतिकी श्लोकसंख्या बाबा दुलीचन्दजीने ५०० लिखी है, और अर्धकथानककी श्लोकसंख्या उससे दुगुनीके अनुमान है । अर्धकथानकमें ६७० दोहा चौपाई हैं । अतः संदेह होता है कि, यह कोई दूसरा ग्रन्थ होगा, यदि बाबाजीका लिखना सत्य हो तो । इसके अतिरिक्त बाबाजीने बनारसीपद्धतिको भाषा छन्दोबद्ध विलासोंके कोष्टकमें भी लिखा है । जिससे प्रतीत होता है कि, यह भी कोई बनारसीविलास सरीखा संग्रह है, जो किसी दूसरेने किया है, अथवा स्वयं कविवरका किया हुआ है ।

अर्द्धकथानकका ही उत्तरार्द्ध हो, जिसमें उत्तरजीवनकी कथा लिखी गई हो, और अपर नाम बनारसीपद्धति हो। परन्तु हमारे देखनेमें यह ग्रन्थ नहीं आया। प्रयत्नसे यदि प्राप्त हो जावेगा, तो वह भी कभी पाठकोंके समक्ष किया जावेगा।

१ बनारसी विलास—यह कोई स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं है, किन्तु कविवर रचित अनेक कविताओंका संग्रह है, इस संग्रहके कर्त्ता आगरानिवासी पंडित जगजीवनजी हैं। आप कविवरकी कविताके बड़े प्रेमी थे। संवत् १७७१ में आपने बड़े परिश्रमसे इस काव्यका संग्रह किया है, ऐसा अन्त्यप्रशस्तिसे स्पष्ट प्रतिभासित होता है। सज्जनोत्तम जगजीवनजी आगराके ही रहनेवाले थे, इससे संभवतः उनकी सब कविताओंका संग्रह आपने किया होगा; परन्तु हमको आशा है कि, यदि अब भी प्रयत्न किया जावेगा, तो बहुत सी कवितायें एकत्रित हो सकेंगी। इस भूमिकाके लिखते समय हमने दो तीन स्थानोंको इस विषयमें पत्र लिखे थे। यदि अवकाश होता, तो बहुत कुछ आशा हो सकी थी, परन्तु शीघ्रता की गई, इससे कुछ नहीं हो सका। तथापि दो तीन पद इस संग्रहके अतिरिक्त मिले हैं, जिन्हें हमने ग्रन्थान्तमें लगा दिये हैं। 'बनारसी विलास' की कविता कैसी है, इसके लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। "कर कंकनको आरसी क्या?" काव्यरसिक पाठक स्वयं इसका निर्णय कर लेंगे।

२ नाटक समयसार—यह ग्रन्थ भाषासाहित्यके गगनमंड-

---

१ संग्रहकर्त्ताने इस ग्रन्थमें थोडेसे पद्य कँवरपालजी छापवाले भी संग्रह कर लिये हैं। यह कँवरपालजी बनारसीदासजीके पांच मित्रोंमें अन्यतम थे।

लका निष्कलंक चन्द्रमा है। इसकी रचनामें कविवरने अपनी जिस अपूर्व शक्तिका परिचय दिया है, उसे भाषासाहित्यके अध्यात्मकी चरमसीमा कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी। नाटक समयसारकी रचना आदिका समय पहिले लिखा जा चुका है, यहां उसके काव्यका परिचय देनेके लिये हम दो चार छन्द उद्धृत करते हैं। पाठक ध्यानसे पढ़ें, और देखें हमारा लिखना कहां तक सत्य है।

(१)

मोक्ष चलवेको सौन, करमको करै वौन,
जाको रस भौन बुध लौन ज्यों घुलत है।
गुणको गिरंथ निरगुनको सुगम पंथ,
जाको जस कहत सुरेश अकुलत है॥
याहीके जो पक्षी सो उड़त ज्ञान गगनमें,
याहीके विपक्षी जगजालमें रुलत है।
हाटक सो विमल विराटक सो विसतार,
नाटक सुनत हिय फाटक खुलत है॥

(२)

काया चित्रसारीमें करम परजंक भारी,
मायाकी सँवारी सेज चादर कलपना।
सैन करै चेतन अचेतनता नींद लिये,
मोहकी मरोर यह लोचनको ढपना॥

१ जीना (सीढियां)। २ वमन (उलटी)। ३ सुवर्ण। ४ पलंग।

उदै बल ओर यहै स्वासको शवद घोर,
विषय सुख काजकी दौर यहै सपना ॥
ऐसी मूढ दशामें मगन रहै तिहूंकाल,
धावै भ्रमजालमें न पावै रूप अपना ॥

(३)

काजविना न करै जिय उद्यम, लाजविना रन माहिं न जूझै।
डीलविना न सधै परमारथ, शीलविना सतसों न अरूझै ॥
नेमविना न लहै निहचैपद, प्रेमविना रस रीति न बूझै।
ध्यानविना न थँमै मनकी गति, ज्ञानविना शिवपंथ न सूझै ॥

(४)

रूपकी न झाँक हिये करमको डाँक पिये,
ज्ञान दबि रह्यो मिरगांक जैसे बनमें।
लोचनकी ढाँकसों न माने सदगुरु हाँक,
डोलै पराधीन मूढ राँक तिहूंपनमें ॥
टाँक इक मांसकी डलीसी तामें तीन फाँके,
तीनिको सो आँक लिखि राख्यो काहू तनमें।
तासों कहै 'नाँक' ताके राखिवेको करें काँक,
लाँकसो खरग बांधि बाँक धरे मनमें ॥

---

१ झलक। २ चन्द्रमा। ३ रंक (दीन)। ४ टंक (परिमाणविशेष)। ५ टुकड़े। ६ अंक (संख्या)। ७ लंक (कमर)। ८ बंकता (टेढ़ाई)।

(५)

है नाहीं नाहीं सु है, है है नाहीं नाहिं ।
यह सरवंगी नयधनी, सब माने सबमाहिं ॥

(६)

कायासे विचारि प्रीति मायाहीमें हारजीति,
लिये हठरीति जैसे हारिलकी लकरी ।
चुंगुलके जोर जैसे गोह गहि रहै भूमि,
त्यों ही पाँय गाड़े पै न छांड़े टेक पकरी ॥
मोहकी मरोरसों भरमको न ठोर पावे,
धावै चहुंओर ज्यों बढ़ावे जाल मकरी ।
ऐसी दुरबुद्धि भूलि झूठके झरोखे झूलि,
फूली फिरै ममता जंजीरनसों जकरी ॥

(७)

रूपकी रसीली भ्रम कुलफकी कीली सील,
सुधाके समुद्र झीली सीली सुखदाई है ।
प्राची ज्ञानभानकी अजाची है निदान की सु,
राची नरवाची ठौर सांची ठकुराई है ॥
धामकी खबरदार रामकी रमनहार,
राधा रस पंथनिमें ग्रंथनिमें गाई है ।
संततिकी मानी निरवानी नूरकी निशानी,
यातें सदबुद्धि रानी राधिका कहाई है ॥

पाठक ! इस ग्रन्थकी सम्पूर्ण रचना इसी प्रकारकी है। जिस पद्यको देखते हैं, जी चाहता है कि, उसीको उद्धृत कर लें, परन्तु इतना स्थान नहीं है, इसलिये इतनेमें ही संतोष करना पड़ता है। आपकी इच्छा यदि अधिक बलवती हो, तो उक्त ग्रन्थका एकवार आद्यन्त पाठ कर जाइये।

नाटकसमयसार मूल, भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यकृत प्राकृतग्रन्थ है। उसपर परमभट्टारक श्रीमदमृतचन्द्राचार्यकृत संस्कृत टीका तथा कलशे हैं। और पंडित रायमलजीकृत बालावबोधिनी भाषा-टीका है। इन्हीं दोनों तीनों टीकाओंके आश्रयसे कविवरने इस अपूर्व पद्यानुवादकी रचना की है।

२ नाममाला—यह महाकवि श्रीधनंजयकृत नाममालाका भाषा पद्यानुवाद है। शब्दोंका ज्ञान करनेके लिये यह एक अत्यन्त सरल और उपयोगी ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ हमारे देखनेमें नहीं आया। परन्तु ग्रन्थप्रकाशक महाशयने मुजफ्फरपुरजिलेके छपरौली ग्रामके बालकोंको एकवार पढ़ते हुए सुना था, परन्तु पीछे प्रयत्न करने पर भी नहीं मिला। नाममालाके कुछ दोहे नाटक समयसारमें इस प्रकार लिखे हैं—

प्रेक्षा धिषना शेमुषी, धी मेधा मति बुद्धि।
सुरति मनीषा चेतना, आशय अंश विशुद्धि॥

---

१ पण्डित जयचन्दजी, और पंडित हेमराजजीने भी समयसारकी भाषाटीका की है। पंडित जयचन्दजीकी टीका सबसे विस्तृत और बोधप्रद कही जाती है।

२ शेमुषीधिषणा प्रज्ञा, मनीषा धीस्तथाशयः॥ ११०॥

निपुन विचच्छन विबुध बुध, विद्याधर विद्वान।
पटु प्रवीन पंडित चतुर, सुधी सुजन मतिमान॥
कलावान कोविद कुशल, सुमन दच्छ धीमन्त।
ज्ञाता सज्जन ब्रह्मविद, तज्ञ गुनीजन सन्त॥

४ अर्द्धकथानक—यह कविवरकी रचनाका चौथा ग्रन्थ है, इसमें ६७३ दोहा चौपाई हैं। हमने यह जीवनचरित्र इसी ग्रन्थके आधारसे लिखा है। इसकी कविताका विशेष परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जीवनचरित्रमें यत्र तत्र इसके अनेक पद्य उद्धृत किये गये हैं। अनुमानसे जाना जाता है, कि यह ग्रन्थ बड़ी शीघ्रतासे लिखा गया है, क्योंकि अन्य कविताओंकी नाईं कविवरने इसमें यमकानुप्रासादिपर ध्यान नहीं दिया है। केवल व्यतीतदशाका कथन ही इसके रचनेका मुख्य उद्देश रहा है। फिर भी कहीं २ के स्वाभाविक पद्य बड़े मनोहर हुए हैं।

उपसंहार।

अन्तमें हिन्दीके प्रिय गुणग्राही पाठकवर्गोंसे निवेदन करके यह लेख पूर्ण किया जाताहै कि, ग्रन्थकर्ता, प्रकाशक और सबके अन्तमें संशोधक तथा चरित्रलेखकके परिश्रमका विचार करके वे इसे ध्यानसे पढ़ें, पढ़ावें, और सर्व साधारणमें प्रचार करें। इतनेसे ही हम लोग अपना परिश्रम सफल समझेंगे। प्रकाशक महाशयकी आदरणीय प्रेरणासे मैंने इस ग्रन्थके संशोधनादिका कार्य अपनी मन्दबुद्ध्यनुसार किया

---

१ प्राज्ञामेधादिमान्विद्वानभिरूपो विचक्षणः।
पण्डितः सूरिराचार्यो वाग्मी नैयायिकः स्मृतः॥ १११॥

है, उसमें कहांतक सफलता हुई है, इसके निर्णयका भार पाठकोंपर ही है। यदि वाचकोंने हमारे इस परिश्रमका किंचित् भी आदर किया तो, शीघ्र ही वृन्दावनविलासादि काव्य ग्रन्थ कवियोंके विस्तृत इतिहाससहित दृष्टिगोचर करनेका प्रयत्न किया जावेगा।

हिन्दीके माननीय पत्रसम्पादकों और समालोचकोंसे प्रार्थना है कि, वे कृपाकर इस ग्रन्थकी आद्यन्त-पाठपूर्वक निष्पक्षदृष्टिसे समालोचना करनेकी कृपा करें और हम लोगोंके उत्साह और हिन्दी-प्रचारकी रुचिको बढावें।

बनारसीदासजीके चरित्र लिखनेमें माननीय मुंशी देवीप्रसादजी मुंसिफ जोधपुरसे मुसलमानी इतिहासकी बहुत सी बातोंकी सहायता मिली है, इस लिये यह ग्रन्थ और लेखक दोनों उनके आभारी हैं।

ग्रन्थसंशोधन तथा जीवनचरित्रमें दृष्टिदोषसे तथा प्रमादवशसे यदि कोई भूल रह गई हो, तो पाठकवृन्द क्षमा करें। क्योंकि—

"न सर्वः सर्वं जानाति" इत्यलम् विद्वद्वरेषु।

बम्बई-चन्दाबाड़ी। }
३०-९-०५ ई० }

विनयावनत—
नाथूराम प्रेमी।
देवरी (सागर) निवासी।

बनारसीविलास ग्रन्थकी

विषयानुक्रमणिका.

नमः श्रीवीतरागाय.

जैनग्रन्थरत्नाकरस्य—रत्न ७ वां

बनारसीविलास.

विषय सूचनिका

कवित्त मनहर.

प्रथम सहस्र[1]नाम सिन्दूरप्रकर[2]धाम, बावनीसवैया[3] वेद-निर्णय[4] पचासिका । त्रेसठशलाका[5] मार्गणा[6] करमकी[7] प्रकृति[8]-कल्याणमन्दिर साधुवन्दन[9] सुवासिका ॥ पैड़ी[10] करमछत्तीसी[11] पीछे ध्यानकी बत्तीसी[12], अध्यातम[13] बत्तीसी पचीसी[14] ज्ञान शासिका । शिवकी पचीसी[15] भवसिन्धुकी चतुरदशी[16], अध्यातमफाग[17] तिथिषोड़स[18]विलासिका ॥ १ ॥

तेरहकाठिया[19] मेरे मनका सुप्यारागीत[20], पंचपद[21] विवान सुमति देवीशत[22] है । शारदा बड़ाई[23] नवदुरगा[24] निर्णय नाम[25], नौरतन[26] कवित्त सु पूजा[27] दानदत[28] है ॥ दशबोल[29] पहेली[30] सुप्रश्न[31]

प्रश्नोत्तरमाला, अवस्था मतान्तर दोहरा वरणत है। अजितके छन्द शान्तिनाथछन्द सेनानिव, नाटककवित्त चार, वानी मिथ्या मत है ॥ २ ॥

फुटकरसवैया बनाये वच गोरखके, वेद आदिभेद परमारथ वचनिका। उपादान निमित्तकी चिट्ठी तिनहीके दोहे, भैरों रामकली ओ विलावल सचनिका ॥ आशावरी वरवा सु धनाश्री सारंग गौरी, काफी ओ हिंडोलना मलारकी मचनिका। भूपर उद्योत करो भव्यनके हिरदेमें, विरथौ! बनारसीविलासकी रचनिका ॥ ३ ॥

दोहा.

ये वरणे संक्षेपसों, नाम भेद विरतन्त।
इनमें गर्भित भेद बहु, तिनकी कथा अनन्त ॥ १ ॥
महिमा जिनके वचनकी, कहै कहां लग कोय।
ज्यों ज्यों मति विस्तारिये, त्यों त्यों अधिकी होय ॥२॥

इति विषयसूचनिका.

श्री

अथ जिनसहस्त्रनाम.

दोहा.

परमदेव परनामकर, गुरुको करहुं प्रणाम ।
बुधिबल बरणों ब्रह्मके, सहसअठोत्तर नाम ॥ १ ॥
केवल पदमहिमा कहों, कहों सिद्ध गुनगान ।
भाषा प्राकृत संस्कृत, त्रिविधि शब्द परमान ॥ २ ॥
एकारथवाची शबद, अरु द्विरुक्ति जो होय ।
नाम कथनके कवितमें, दोष न लागे कोय ॥ ३ ॥

चौपाई १५ मात्रा.

प्रथमोंकाररूप ईशान । करुणासागर कृपानिधान ॥
त्रिभुवननाथ ईश गुणवृन्द । गिरातीत गुणमूल अनन्द ॥ १ ॥
गुणी गुप्त गुणग्राहक बली । जगतदिवाकर कौतूहली ॥
क्रमवर्ती करुणामय क्षमी । दशावतारी दीरघ दमी ॥ २ ॥
अलख अमूरति अरस अखेद । अचल अबाधित अमर अवेद ॥
परम परमगुरु परमानन्द । अन्तरजामी आनँदकन्द ॥ ३ ॥
प्राणनाथ पावन अमलान । शील सदन निर्मल परमान ॥
तत्त्वरूप तपरूप अमेय । दयाकेतु अविचल आदेय ॥ ४ ॥
शीलसिन्धु निरुपम निर्वाण । अविनाशी अस्पर्श अमान ॥
अमल अनादि अदीन अछोभ । अनातङ्क अज अगम अलोभ ॥५॥

अनवस्थित अध्यातमरूप । आगमरूपी अघट अनूप ॥
अपट अरूपी अभय अमार । अनुभवमंडन अनघ अपार ॥६॥
विमलपूतशासन दातार । दशातीत उद्धरन उदार ॥
नभवत पुंडरीकवत हंस । करुणामन्दिर एनविध्वंस ॥ ७ ॥
निराकार निहचै निरमान । नानारसी लोकपरमान ॥
सुखधर्मी सुखज्ञ सुखपाल । सुन्दर गुणमन्दिर गुणमाल ॥ ८ ॥

दोहा.

अम्बरवत आकाशवत, क्रियारूप करतार ।
केवलरूपी कौतुकी, कुशली करुणागार ॥ १२ ॥

इति ओंकार नाम प्रथमशतक ॥१॥

चौपाई.

ज्ञानगम्य अध्यातमगम्य । रमाविराम रमापति रम्य ॥
अप्रमाण अघहरण पुराण । अनमित लोकालोक प्रमाण॥१३॥
कृपासिन्धु कूटस्थ अछाय । अनभव अनारूढ असहाय ॥
सुगम अनन्तराम गुणग्राम । करुणापालक करुणाधाम ॥ १४॥
लोकविकाशी लक्षणवन्त । परमदेव परब्रह्म अनन्त ॥
दुराराध्य दुर्गस्थ दयाल । दुरारोह दुर्गम दिकपाल ॥ १५ ॥
सत्यारथ सुखदायक सूर । शीलशिरोमणि करुणापूर ॥
ज्ञानगर्भ चिद्रूप निधान । नित्यानन्द निगम निरजान ॥ १६ ॥

१. 'विपुल' ऐसा भी पाठ है.

अकथ अकरता अजर अजीत । अवपु अनाकुल विषयातीत ॥
मंगलकारी मंगलमूल । विद्यासागर विगतदुकूल ॥ १७ ॥
नित्यानन्द विमल निरुजान । धर्मधुरंधर धर्मविधान ।
ध्यानी धामवान धनवान । शीलनिकेतन बोधनिधान ॥ १८ ॥
लोकनाथ लीलाधर सिद्ध । कृती कृतारथ महासमृद्ध ॥
तपसागर तपपुञ्ज अछेद । भवभयभंजन अमृत अभेद ॥१९॥
गुणावास गुणमय गुणदाम । स्वपरप्रकाशक रमता राम ॥
नवल पुरातन अजित विशाल । गुणनिवास गुणग्रह गुणपाल ॥२०

दोहा.

लघुरूपी लालचहरन, लोभविदारन वीर ।
धारावाही धौतमल, धेय धराधर धीर ॥ २१ ॥

इति ज्ञानगम्यनाम द्वितीयशतक ॥२॥

पद्धरिछन्द.

चिन्तामणि चिन्मय परम नेम । परिणामी चेतन परमछेम ॥
चिन्मूरति चेता चिद्विलास । चूड़ामणि चिन्मय चन्द्रभास ॥२२॥
चारित्रधाम चित् चमत्कार । चरनातम रूपी चिदाकार ॥
निर्वाचक निर्मम निराधार । निरजोग निरंजन निराकार ॥२३॥
निरभोग निरास्त्रव निराहार । नगनरकनिवारी निर्विकार ।
आतमा अनक्षर अमरजाद । अक्षर अवंध अक्षय अनाद॥२४॥

---

१. 'विपति अतीत' ऐसा भी पाठ है. २ वस्त्र.

आगत अनुकम्पामय अडोल। अशरीरी अनुभूती अलोल ॥
विश्वंभर विस्मय विश्वटेक। व्रजभूषण व्रजनायक विवेक॥२५॥
छलभंजन छायक छीनमोह। मेधापति अकलेवर अकोह ॥
अद्रोह अविग्रह अग अरंक। अद्भुतनिधि करुणापति अवंक २६
सुखराशि दयानिधि शीलपुंज। करुणासमुद्र करुणाप्रपुंज ॥
वज्रोपम व्यवसायी शिवस्थ। निश्चल विमुक्त ध्रुव सुथिर सुस्थ २७
जिननायक जिनकुंजर जिनेश। गुणपुंज गुणाकर मंगलेश ॥
क्षेमंकर अपद अनन्तपानि। सुखपुंजशील कुलशील खानि॥२८॥
करुणारसभोगी भवकुठार। कृपिवत कृशानु दारन तुसार ॥
कैतवरिपु अकल कलानिधान। धिषणाधिप ध्याता ध्यानवान २९

दोहा.

छँपाकरोपम[1] छलरहित, छेत्रपाल छेत्रज्ञ ॥
अंतरिक्षवत गगनवत, हुत कर्माकृत यज्ञ ॥ ३० ॥

इति चिन्तामणि नाम तृतीयशतक ॥ ३ ॥

पद्धरिछन्दः

लोकांत लोकप्रभु सुसमुद्र। संवर सुखधारी सुखसमुद्र ॥
शिवरसी गूढ़रूपी गरिष्ट। चलरूप बोधदायक वरिष्ट ॥३१॥
विद्यापति धीधव विगतवाम। धीवंत विनायक वीतकाम ॥
धीरस्व शिलीद्रुम शीलमूल। लीलाविलास जिन शारदूल॥३२
परमारथ परमातम पुनीत। त्रिपुरेश तेजनिधि त्रपातीत ॥
तपराशि तेजकुल तपनिधान। उपयोगी उग्र उदोतवान॥३३॥

---

१ चन्द्रोपम.

उत्पातहरण उद्दामधाम । व्रजनाथ विमक्षर विगतनाम ॥
बहुरूपी बहुनामी अलोप । विषहरण विहारी विगतदोप॥२४॥
छितिनाथ छमाधर छमापाल । दुर्गम्य दयार्णव दयामाल ॥
चतुरेश चिदातम चिदानंद । सुखरूप शीलनिधि शीलकन्द॥२५॥
रसव्यापक राजा नीतिवंत । ऋषिरूप महर्षि महमंहंत ॥
परमेश्वर परमऋषि प्रधान । परत्यागी प्रगट प्रतापवान॥२६॥
परतक्षपरमसुख करमसुद्र । हन्तारि परमगति गुणसमुद्र ॥
सर्वज्ञ सुदर्शन सदातृप्त । शंकर सुवासवासी अलिप्त ॥ २७॥
शिवसम्पुटवासी सुखनिधान । शिवपंथ शुभंकर शिखावान ॥
असमान अंशधारी अशेष । निर्द्वन्दी निर्वेद निरवशेष ॥२८॥

दोहा.

विस्मयधारी वोधमय, विश्वनाथ विश्वेश ।
वंधविमोचन वज्रवत, वुधिनायक विवुधेश ॥ २९ ॥

इति लोकांत नाम चतुर्थ शतक ॥४॥

छन्दरोडक.

महामंत्र मंगलनिधान मलहरन महाजप ।
मोक्षस्वरूपी मुक्तिनाथ मतिमथन महातप ॥
निस्तरङ्ग निःसङ्ग नियमनायक नंदीसुर ।
महादानि महज्ञानि महाविस्तार महासुर ॥ ४० ॥
परिपूरण परजायरूप कमलस्थ कमलवत ।
गुणनिकेत कमलासमूह धरनीश ध्यानरत ॥

मूर्तिवान मूर्तेश मारछम मर्म उछेदक ।
सिंहासननायक निराश निरभयपदवेदक ॥ ४१ ॥
शिवकारण शिवकरन भविक बंधव भवनाशन ।
नीरिरंश निःसमर सिद्धिशासन शिवआसन ॥
महाकाज महाराज मारजित मारविहंडन ।
गुणमय द्रव्यसरूप दशाधर दारिदखंडन ॥ ४२ ॥
जोगी जोग अतीत जगत उद्धरन उजागर ।
जगतबंधु जिनराज शीलसंचय सुखसागर ॥
महाशूर सुखसदन तरनतारन तमनाशन ।
अगनितनाम अनंतधाम निरमद निरवासन ॥ ४३ ॥
वारिजवत जलजवत पद्म उपमा पंकजवत ।
महाराम महधाम महायशवंत महासत ॥
निजकृपालु करुणालु बोधनायक विद्यानिधि ।
प्रशमसरूप प्रशमीश परमजोगीश परमविधि ॥ ४४ ॥

वस्तुछन्द.

सुरसभोगी रसील समुदायकी चाल—

शुभकारनशील इह सील राशि संकट निवारन ।
त्रिगुणातम तपतिहर परमहंसपर पंचवारन ॥
परम पदारथ परमपथ, दुखभंजन दुरलक्ष ।
तोषी सुखपोषी सुगति, दमी दिगम्बर दक्ष ॥ ४५ ॥

इति महामंत्र नाम पंचम शतक ॥५॥

रोडक छन्द.

परमप्रबोध परोक्षरूप, परमादनिकन्दन ।
परमध्यानधर परमसाधु, जगपति जगवंदन ॥
जिन जिनपति जिनसिंह, जगतमणि बुधकुलनायक ।
कल्पातीत कुलालरूप, दृगमय दृगदायक ॥ ४६ ॥
कोपनिवारणधर्मरूप, गुणराशि रिपुंजय ।
करुणासदन समाधिरूप, शिवकर शत्रुंजय ॥
परावर्त्तरूपी प्रसन्न, आतमप्रमोदमय ।
निजाधीन निर्द्वन्द, ब्रह्मवेदक व्यतीतमय ॥ ४७ ॥
अपुनर्भव जिनदेव सर्वतोभद्र कलिलहर ।
धर्माकर ध्यानस्थ धारणाधिपति धीरधर ॥
त्रिपुरगर्भ त्रिगुणी त्रिकाल कुशलातपपादप ।
सुखमन्दिर सुखमय अनन्तलोचन अविषादप ॥४८॥
लोकअग्रवासी त्रिकालसाखी करुणाकर ।
गुणआश्रय गुणधाम गिरापति जगतप्रभाकर ॥
धीरज धौरी धौतकर्म धर्म्मग धामेश्वर ।
रत्नाकर गुणरत्नराशि रजहर रामेश्वर ॥ ४९ ॥
निरलिङ्गी शिवलिङ्गधार बहुतुंड अनानन ।
गुणकदम्ब गुणरसिक रूपगुण अंजिक पानन ॥
निरअंकुश निरधाररूप निजपर परकाशक ॥
विगतास्रव निरबंध बंधहर बंधविनाशक ॥ ५० ॥

बृहत अनङ्ग निरंश अंशगुणसिन्धु गुणालय ।
लक्ष्मीपति लीलानिधान वितपति विगतालय ॥
चन्द्रवदन गुणसदन चित्रधर्मासुख थानक ।
ब्रह्मचारी वज्रवीर्य बहुविधि निरवानक ॥ ५१ ॥

दोहा.

सुखकदम्ब साधक सरन, सुजन इष्टसुखवास ।
बोधरूप बहुलातमक, शीतल शीलविलास ॥ ५२ ॥

इति श्रीपरमप्रबोधनामक षष्ट शतक ॥ ६ ॥

रूप चौपई.

केवलज्ञानी केवलदरसी । सन्यासी संयमी समरसी ॥
लोकातीत अलोकाचारी । त्रिकालज्ञ धनपति धनधारी ॥५४॥
चिन्ताहरण रसायन रूपी । मिथ्यादलन महारसकूपी ॥
निर्वृतिकर्ता मृषापहारी । ध्यानधुरंधर धीरजधारी ॥ ५५ ॥
ध्याननाथ ध्यायक वलवेदी । घटातीत घटहर घटभेदी ॥
उदयरूप उद्धत उतसाही । कलुपहरणहर किल्विपदाही ॥५६॥
वीतराग बुद्धीश विधारी[१] । चन्द्रोपम वितन्द्र व्यवहारी ॥
अगतिरूप गतिरूप विधाता । शिवविलास शुचिमय सुखदाता५७
परमपवित्र असंख्यप्रदेशी । करुणासिंधु अचिन्त्य अभेषी ॥
जगतसूर निर्म्मल उपयोगी । भद्ररूप भगवन्त अभोगी॥५८॥

१ 'बुद्धि सुविचारी' ऐसा भी पाठ है.

मानोपम भरता भववासी । द्वन्दविदारण वोधविलासी ॥
कौतुकनिधि कुशली कल्याणी । गुरू गुसाँई गुणमय ज्ञानी ॥५९॥
निरातंक निरवैर निरासी । मेघातीत मोक्षपदवासी ॥
महाविचित्र महारसभोगी । भ्रमभंजन भगवान अरोगी ॥६०॥
कल्मषभंजन केवलदाता । धाराधरन धरापति धाता ॥
प्रज्ञाधिपति परम चारित्री । परमतत्त्ववित् परमविचित्री ॥६१॥
संगातीत संगपरिहारी । एक अनेक अनन्ताचारी ॥
उद्यमरूपी ऊरधगामी । विश्वरूप विजया विश्रामी ॥ ६२ ॥

दोहा.

धर्मविनायक धर्मधुज, धर्मरूप धर्मज्ञ ।
रत्नगर्भ राधारमण, रसनातीत रसज्ञ ॥ ६३ ॥

इति केवलज्ञानी नामक सप्तम शतक ॥ ७ ॥

रूप चौपई.

परमप्रदीप परमपददानी । परमप्रतीति परमरसज्ञानी ॥
परमज्योति अघहरन अगेही । अजित अखंड अनंग अदेही ६४॥
अतुल अशेष अरेप अलेपी । अमन अवाच अदेख अभेपी ॥
अकुल अगूढ़ अकाय अकर्मी । गुणधर गुणदायक गुणमर्म्मी ६५
निस्सहाय निर्म्मम नीरागी । सुधारूप सुपथग सौभागी ॥
हतकैतवी मुक्तसंतापी । सहजस्वरूपी सबविधि व्यापी ॥ ६६॥
महाकौतुकी महद विज्ञानी । कपटविदारन करुणादानी ॥
परदारन परमारथकारी । परमपौरुषी पापप्रहारी ॥ ६७ ॥

केवलब्रह्म धरमधनधारी । हतविभाव हतदोष हँतारी ॥
भविकदिवाकर मुनिमृगराजा । दयासिंधु भवसिंधु जहाजा ॥६८॥
शंभु सर्वदर्शी शिवपंथी । निराबाध निःसँग निर्ग्रन्थी ॥
यती यंत्रदाहत (?) हितकारी । महामोहब्रारन बलधारी ॥६९॥
चितसन्तानी चेतनवंशी । परमाचारी गरमविध्वंसी ॥
सदाचरण स्वशरण शिवगामी । बहुदेशी अनन्त परिणामी ॥७०॥
वितथभूमिदारनहलपानी । भ्रमवारिजवनदहनहिमानी ॥
चारु चिदङ्कित द्वन्दातीती । दुर्गरूप दुर्लभ दुर्जीती ॥ ७१ ॥
शुभकारण शुभकर शुभमंत्री । जगतारन ज्योतीश्वर जंत्री ७२

दोहा.

जिनपुङ्गव जिनकेहरी, ज्योतिरूप जगदीश ।
मुक्ति मुकुन्द महेश हर, महदानंद मुनीश ॥ ७३ ॥

इति श्रीपरमप्रदीप नाम अष्टम शतक ॥ ८ ॥

मंगलकमला.

दुरित दलन सुखकन्द । हत भीत अतीत अमन्द ॥
शीलशरणहत कोप । अनभंग अनंग अलोप ॥ ७४ ॥
हंसगरभ हतमोह । गुणसंचय गुणसन्दोह[1] ॥
सुखसमाज सुख गेह । हतसंकट विगत सनेह ॥ ७५ ॥
क्षोभदलन हतशोक । अगणित बल अमलालोक ॥
धृतसुधर्म कृतहोम । सतसूर अपूरव सोम ॥ ७६ ॥

१ दूसरी पुस्तकमें 'त्रिगुणातम निज सन्दोह' ऐसा पाठ है.

हिमवत हतसंताप । व्रजव्यापी विगतालाप ॥
पुण्यस्वरूपी पूत । सुखसिंधु स्वयं संभूत ॥ ७७ ॥
समयसारश्रुतिधार । अविकलप अजल्पाचार ॥
शांतिकरन धृतशांति । कलरूप मनोहरकान्ति ॥ ७८ ॥
सिंहासनपर आरूढ़ । असमंजसहरन अमूढ़ ॥
लोकजयी हतलोभ । कृतकर्मविजय धृतशोभ ॥ ७९ ॥
मृत्युंजय अनजोग । अनुकम्प अशंक असोग ॥
सुविधिरूप सुमतीश । श्रीमान् मनीषाधीश ॥ ८० ॥
विदित विगत अवगाह । कृतकारज रूपअथाह ॥
वर्द्धमान गुणभान । करुणाधरलीलविधान ॥ ८१ ॥
अक्षयनिधान अगाध । हतकलिल निहतअपराध ॥
साधिरूप साधक धनी (?) । महिमा गुणमेरु महामनी (?) ८२
उतपति वैध्रुववान । त्रिपदी त्रिपुंज त्रिविधान ॥
जगजीत जगदाधार । करुणागृह विपतिविदार ॥ ८३ ॥
जगसाक्षी वरवीर । गुणगेह महागंभीर ॥
अभिनंदन अभिराम । परमेष्ठी परमोद्दाम ॥ ८४ ॥

दोहा.

सगुण विभूती वैभवी, सेमुषीश संबुद्ध ।
सकल विश्वकर्मा अभव, विश्वविलोचन शुद्ध ॥ ८५ ॥

इति दुरितदलननाम नवम शतक ॥ ९ ॥

मंगलकमला.

शिवनायक शिव एव । प्रचलेश प्रजापति देव ॥
मुदित महोदय मूल । अनुकम्पा सिंधु अकूल ॥ ८६ ॥
नीरोपम गतं पंक । नीरीहत निर्गत शंक ॥
नित्य निरामय मौन । नीरन्ध्र निराकुल गौन ॥ ८७ ॥
परम धर्म रथ सारथी (!)। धृत केवल रूप कृतारथी (!)॥
परम नित्य भंडार । संवरमय संयमधार ॥ ८८ ॥
शुमी सरवगत संत । शुद्धोधन शुद्ध सिद्धंत ॥
नैयायक नय जान । अविगत अनंत अभिधान ॥ ८९ ॥
कर्मनिर्जरामूल । अघभंजन सुखद अमूल ॥
अद्भुत रूप अशेष । अवगमनिधि अवगमभेष ॥ ९० ॥
बहुगुण रत्नकरंड । ब्रह्मांड रमण ब्रह्मंड ॥
वरद बंधु भरतार । महदंग महानेतार ॥ ९१ ॥
गतप्रमाद गतपास । नरनाथ निराथ निरास ॥
महामंत्र महास्वामि । महदर्थ महागति गामि ॥ ९२ ॥
महानाथ महज्ञान । महपावन महानिधान ॥
गुणागार गुणवास । गुणमेरु गभीर विलास ॥ ९३ ॥
करुणामूल निरंग । महदासन महारसंग ॥
लोकबन्धु हरिकेश । महदीश्वर महदादेश ॥ ९४ ॥

१ कं=पाप २ महत्+अंग ३ महत्+आसन. ४ महत्+ईश्वर. ५ महत्+आदेश.

महाविभु महवववंत । धरणीधर धरणीकंत ॥
कृपावंत कलिग्राम । कारणमय करत विराम ॥ ९५ ॥
मायावेलि गयन्द । सम्मोहतिमरहरचन्द ॥
कुमति निकन्दन काज । दुखगजमंजन मृगराज ॥९६॥
परमतत्त्वसत संपदा (?) । गुणत्रिकालदर्शीसदा (?) ॥
कोपदवानलनीर । मदनीरदहरणसमीर ॥ ९७ ॥
भवकांतारकुठार । संशयमृणालअसिधार ॥
लोभशिखरनिर्घात । विपदानिशिहरणप्रभात ॥ ९८ ॥

दोहा

संवररूपी शिवरमण, श्रीपति शीलनिकाय ॥
महादेव मनमथमथन, सुखमय सुखसमुदाय ॥ ९९ ॥

इति श्रीशिवनायक नाम दशम शतक ॥ १० ॥

दोहा.

इति श्रीसहसअठोतरी, नाम मालिका मूल ।
अधिक कसर पुनरुक्ति की, कविप्रमादकी भूल ॥१००॥
परमपिंड ब्रह्मंडमें, लोकशिखर निवसंत ।
निरखि नृत्य नानारसी, बानारसी नमंत ॥ १०१ ॥
महिमा ब्रह्मविलासकी, मोपर कही न जाय ।
यथाशक्ति कछु वरणई, नामकथन गुणगाय ॥ १०२ ॥
संवत सोलहसो निवे, श्रावण सुदि आदित्य ।
करनक्षत्र तिथि पंचमी; प्रगट्यो नाम कवित्त ॥ १०३ ॥

इति भाषाजिनसहस्रनाम ।
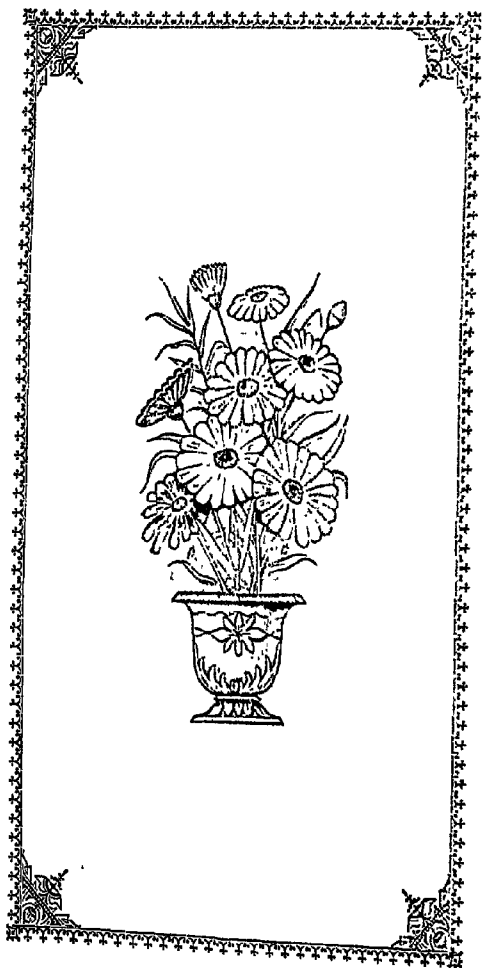
ॐ

श्रीसोमप्रभाचार्यविरचिता

सूक्तमुक्तावली

तथा

स्वर्गीय कविवर बनारसीदासजीकृत

भाषासूक्तमुक्तावली.

(सिंदूरप्रकर.)

धर्माधिकार।

शार्दूलविक्रीडित।

सिन्दूरप्रकरस्तपः करिशिरःक्रोडे कषायाटवी-
दावार्चिर्निचयः प्रबोधदिवसप्रारम्भसूर्योदयः।
मुक्तिस्त्रीकुचकुम्भकुङ्कुमरसः श्रेयस्तरोः पल्लव-
प्रोल्लासः क्रमयोर्नखद्युतिभरः पार्श्वप्रभोः पातु वः ॥१॥

षट्पद।

शोभित तपगजराज, सीस सिन्दूर पूरछवि।
बोधदिवस आरंभ, करण कारण उदोत रवि॥
मंगल तरु पल्लव, कषाय कांतार हुताशन।
बहुगुणरत्ननिधान, मुक्तिकमलाकमलाशन॥
इहिविधि अनेक उपमा सहित, अरुण चरण संताप हर।
जिनराय पार्श्वनखज्योति भर, नमत बनारसि जोर कर ॥१॥

शार्दूलविक्रीडित ।

सन्तः सन्तु मम प्रसन्नमनसो वाचां विचारोद्यताः
सूतेऽम्भः कमलानि तत्परिमलं वाता वितन्वन्ति यत् ।
किं वाभ्यर्थनयानया यदि गुणोऽस्त्यासां ततस्ते स्वयं
कर्तारः प्रथने न चेदथ यशःप्रत्यर्थिना तेन किम् ॥२॥

दोधकान्तबेसरीछन्द ।

जैसे कमल सरोवर वासै । परिमल तासु पवन परकासै ।
त्यों कवि भाषहिं अक्षर जोर । संत सुजस प्रगटहि चहुँओर ॥
जो गुणवन्त रसाल कवि, तौ जग महिमा होय ।
जो कवि अक्षर गुणरहित, तौ आदरै न कोय ॥ २ ॥

इन्द्रवज्रा ।

त्रिवर्गसंसाधनमन्तरेण पशोरिवायुर्विफलं नरस्य ।
तत्रापि धर्मं प्रवरं वदन्ति न तं विना यद्भवतोऽर्थकामौ ॥

दोधकान्तबेसरीछन्द ।

सुपुरुष तीन पदारथ साधहिं । धर्म विशेष जान आराधहिं ।
धरम प्रधान कहै सब कोय । अर्थ काम धर्महितैं होय ॥
धर्म करत संसारसुख, धर्म करत निर्वान ।
धर्मपंथसाधनविना, नर तिर्यंच समान ॥ ३ ॥

यः प्राप्य दुष्प्रापमिदं नरत्वं धर्मं न यत्नेन करोति मूढः ।
क्लेशप्रबन्धेन स लब्धमब्धौ चिन्तामणिं पातयति प्रमादात् ॥

कवित्त मात्रिक. (३१ मात्रा)

जैसे पुरुष कोइ धन कारण, हींडत दीपदीप चढ़ यान।
आवत हाथ रतनचिन्तामणि, डारत जलधि जान पाषान॥
तैसे भ्रमत भ्रमत भवसागर, पावत नर शरीर परधान।
धर्मयत्न नहिं करत 'बनारसि' खोवत वादि जनम अज्ञान ४

मन्दाक्रान्ता।

स्वर्णस्थाले क्षिपति स रजः पादशौचं विधत्ते
पीयूषेण प्रवरकरिणं वाहयत्यैधभारम्।
चिन्तारत्नं विकिरति कराद्वायसोड्डायनार्थं
यो दुष्प्रापं गमयति मुधा मर्त्यजन्म प्रमत्तः॥ ५॥

मत्तगयन्द. (सवैया)

ज्यों मतिहीन विवेक विना नर, साजि मतङ्गज ईंधन ढोवै।
कंचन भाजन धूल भरै शठ, मूढ़ सुधारससों पगधोवै॥
बाहित काग उड़ावन कारण, डार महामणि मूरख रोवै।
त्यों यह दुर्लभ देह 'बनारसि', पाय अजान अकारथ खोवै५

शार्दूलविक्रीडित।

ते धत्तूरतरुं वपन्ति भवने प्रोन्मूल्य कल्पद्रुमं
चिन्तारत्नमपास्य काचशकलं स्वीकुर्वते ते जडाः।
विक्रीय द्विरदं गिरीन्द्रसदृशं क्रीणन्ति ते रासभं
ये लब्धं परिहृत्य धर्ममधमा धावन्ति भोगाशया॥

कवित्त मात्रिक. (३१ मात्रा)

ज्यों जरमूर उखारि कल्पतरु, बोवत मूढ़ कनकको खेत।
ज्यों गजराज वेच गिरिवर सम, क्रूर कुबुद्धि मोल खर लेत॥
जैसे छांड़ि रतन चिन्तामणि, मूरख काचखंडमन देत।
तैसे धर्म विसार 'बनारसि' धावत अधम विषयसुखहेत॥६॥

शिखरिणी।

अपारे संसारे कथमपि समासाद्य नृभवं
न धर्मं यः कुर्याद्विषयसुखतृष्णातरलितः।
ब्रुडन्पारावारे प्रवरमपहाय प्रवहणं
स मुख्यो मूर्खाणामुपलमुपलब्धुं प्रयतते॥ ७॥

सोरठा।

ज्यों जल बूढ़त कोय, वाहन तज पाहन गहै।
त्यों नर मूरख होय, धर्म छांड़ि सेवत विषय॥ ७॥

द्वार गाथा।

शार्दूलविक्रीडित।

भक्तिं तीर्थकरे गुरौ जिनमते संघे च हिंसानृत-
स्तेयाब्रह्मपरिग्रहव्युपरमं क्रोधाद्यरीणां जयम्।
सौजन्यं गुणिसङ्गमिन्द्रियदमं दानं तपोभावनां
वैराग्यं च कुरुष्व निर्वृतिपदे यद्यस्ति गन्तुं मनः॥८॥

---

१ धतूरा. २ गर्दभ (गधा).

पट्पद ।

जिन पूजहु गुरुनमहु, जैनमतवैन बखानहु ।
संघ भक्ति आदरहु, जीव हिंसा नविधानहु ॥
झूठ अदत्त कुशील, त्याग परिग्रह परमानहु ।
क्रोध मान छल लोभ जीत, सज्जनता ठानहु ॥
गुणिसंग करहु इन्द्रिय दमहु, देहु दान तप भावजुत ।
गहि मन विराग इहिविधि चहहु, जो जगमैं जीवनमुकत॥८॥

पूजाधिकार ।

पापं लुम्पति दुर्गतिं दलयति व्यापादयत्यापदं
पुण्यं संचिनुते श्रियं वितनुते पुष्णाति नीरोगताम् ।
सौभाग्यं विदधाति पल्लवयति प्रीतिं प्रसूते यशः
स्वर्गं यच्छति निर्वृतिं च रचयत्यर्चार्हतां निर्मिता ॥९॥

३१ मात्रा सवैया छन्द ।

लोपै दुरित हरै दुख संकट; आपै रोग रहित नितदेह ।
पुण्य भँडार भरै जश प्रगटै; मुकति पंथसौं करै सनेह ॥
रचै सुहाग देय शोभा जग; परभव पँहुचावत सुरगेह ।
कुगति बंध दलमलहि वनारसि; वीतराग पूजा फल येह ॥९॥

स्वर्गस्तस्य गृहाङ्गणं सहचरी साम्राज्यलक्ष्मीः शुभा
सौभाग्यादिगुणावलिर्विलसति स्वैरं वपुर्वेश्मनि ।
संसारः सुतरः शिवं करतलक्रोडे लुठत्यञ्जसा
यः श्रद्धाभरभाजनं जिनपतेः पूजां विधत्ते जनः १०

देवलोक ताको घर आँगन; राजरिद्ध सेवैं तसु पाय।
ताको तन सौभाग्य आदि गुन; केलि विलास करै नित आय॥
सोनर त्वरित तरै भवसागर; निर्मल होय मोक्ष पद पाय।
द्रव्य भाव विधि सहित वनारसि; जो जिनवर पूजै मन लाय १०

शिखरिणी।

कदाचिन्नातङ्कः कुपित इव पश्यत्यभिमुखं
विदूरे दारिद्र्यं चकितमिव नश्यत्यनुदिनम्।
विरक्ता कान्तेव त्यजति कुगतिः सङ्गमुदयो
न मुञ्चत्यभ्यर्णं सुहृदिव जिनार्चां रचयतः॥११॥

ज्यौं नर रहै रिसाय कोपकर; त्यौं चिन्ताभय विमुख वखान।
ज्यौं कायर शंकै रिपु देखत; त्यौं दरिद्र भाजै भय मान॥
ज्यौं कुनार परिहरै खंडपति; त्यौं दुर्गति छंडै पहिचान।
हितु ज्यौं विभौ तजै नहिं संगत; सो सव जिनपूजाफल जान ११

शार्दूलविक्रीडित।

यः पुष्पैर्जिनमर्चति स्मितसुरस्त्रीलोचनैः सोऽर्च्यते
यस्तं वन्दत एकशस्त्रिजगता सोऽहर्निशं वन्द्यते।
यस्तं स्तौति परत्र वृत्रदमनस्तोमेन स स्तूयते
यस्तं ध्यायति क्लृप्तकर्मनिधनः स ध्यायते योगिभिः॥

जो जिनेंद्र पूजै फूलनसों; सुरनैनन पूजा तिस होय।
वंदैं भावसहित जो जिनवर; वंदनीक त्रिभुवनमैं सोय॥

जो जिन सुजस करै जन ताकी; महिमा इन्द्र करैं सुरलोय।
जो जिन ध्यान करत बनारसि; ध्यावैं मुनि ताके गुण जोय॥१२॥

गुरु अधिकार।

वंशस्थविलम्।

अवद्यमुक्ते पथि यः प्रवर्त्तते प्रवर्त्तयत्यन्यजनं च निस्पृहः।
स सेवितव्यः स्वहितैषिणा गुरुः स्वयं तरंस्तारयितुं क्षमः परम्॥१३॥

अडिल्ल छन्द।

पापपंथ परिहरहिं; धरहिं शुभपंथ पग।
पर उपगार निमित्त; बखानहिं मोक्षमग॥
सदा अवंछित चित्त; जु तारन तरन जग।
ऐसे गुरुको सेवत; भागहिं करम ठग॥१३॥

मालिनी।

विदलयति कुबोधं बोधयत्यागमार्थं
सुगतिकुगतिमार्गौ पुण्यपापे व्यनक्ति।
अवगमयति कृत्याकृत्यभेदं गुरुर्यो
भवजलनिधिपोतस्तं विना नास्ति कश्चित् १४

हरिगीतिका छन्द।

मिथ्यात दलन सिद्धांत साधक; मुकतिमारग जानिये।
करनी अकरनी सुगति दुर्गति; पुण्य पाप बखानिये॥
संसारसागरतरनतारन; गुरु जहाज विशेखिये।
जगमाहिं गुरुसम कह बनारसि; और कोउ न देखिये॥१४॥

शिखरिणी ।

पिता माता भ्राता प्रियसहचरी सूनुनिवहः
सुहृत्स्वामी माद्यत्करिभटरथाश्वः परिकरः ।
निमज्जन्तं जन्तुं नरककुहरे रक्षितुमलं
गुरोर्धर्माधर्मप्रकटनपरात्कोऽपि न परः ॥१५॥

मत्तगयन्द ।

मात पिता सुत बन्धु सखीजन; मीत हितू सुख कामन पीके ।
सेवक साज मतंगज बाज; महादल राज रथी रथनीके ॥
दुर्गति जाय दुखी बिललाय; परै सिर आय अकेलहि जीके ।
पंथ कुपंथ गुरू समझावत; और सगे सब स्वारथहीके ॥ १५ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

किं ध्यानेन भवत्वशेषविषयत्यागैस्तपोभिः कृतं
पूर्णं भावनयालमिन्द्रियजयैः पर्याप्तमाप्तागमैः ।
किं त्वेकं भवनाशनं कुरु गुरुप्रीत्या गुरोः शासनं
सर्वं येन विना विनाथबलवत्स्वार्थाय नालं गुणाः॥

वस्तु छन्द ।

ध्यान धारन ध्यान धारन; विषै सुख त्याग ।
करुनारस आदरन; भूँमि सैन इन्द्री निरोधन ॥
व्रत संजम दान तप; भगति भाव सिद्धंत साधन ॥
ये सब काम न आवहीं; ज्यौं बिन नायक सैन ॥
शिवसुख हेतु बनारसी; कर प्रतीत गुरुबैन ॥ १६ ॥

जिनमताधिकार।

शिखरिणी।

न देवं नादेवं न शुभगुरुमेनं न कुगुरुं
न धर्मं नाधर्मं न गुणपरिणद्धं न विगुणम्।
न कृत्यं नाकृत्यं न हितमहितं नापि निपुणं
विलोकन्ते लोका जिनवचनचक्षुर्विरहिताः ॥१७॥

कुंडलिया छन्द।

देव अदेव नहीं लखैं; सुगुरु कुगुरनहिं सूझ।
धर्म अधर्म गनै नहीं; कर्म अकर्म न बूझ॥
कर्म अकर्म न बूझ; गुण रु औगुण नहिं जानहिं।
हित अनहित नहिं सधै; निपुणमूरख नहिं मानहिं॥
कहत बनारसि ज्ञानदृष्टि नहिं अंध अवेवहिं।
जैनवचनदृगहीन; लखै नहिं देव अदेवहिं॥ १७॥

शार्दूलविक्रीडित।

मानुष्यं विफलं वदन्ति हृदयं व्यर्थं वृथा श्रोत्रयो-
र्निर्माणं गुणदोषभेदकलनां तेषामसंभाविनीम्।
दुर्वारं नरकान्धकूपपतनं मुक्तिं बुधा दुर्लभां
सार्वज्ञः समयो दयारसमयो येषां न कर्णातिथिः॥

३१ मात्रा सवैया छन्द।

ताको मनुज जनम सब निष्फल; मन निष्फल निष्फल जुगकान।
गुण अर दोष विचार भेद विधि; ताहि महा दुर्लभ है ज्ञान॥

ताको सुगम नरक दुख संकट; अगमपथ पदवी निर्वान ।
जिनमतवचन दयारसगर्भित; जे न सुनत सिद्धंतबखान १८

पीयूषं विषवज्जलं ज्वलनवत्तेजस्तमःस्तोमव-
न्मित्रं शात्रववत्स्रजं भुजगवच्चिन्तामणिं लोष्टवत् ।
ज्योत्स्नां ग्रीष्मजघर्मवत्स मनुते कारुण्यपण्यापणं
जैनेन्द्रं मतमन्यदर्शनसमं यो दुर्मतिर्मन्यते ॥१९॥

षट्पद ।

अंमृतको विष कहैं; नीरको पावक मांनहिं ।
तेज तिमरसम गिनहिं; मित्रकों शत्रु बखानहिं ॥
पहुपमाल कहिं नाग; रतन पत्थर सम तुल्लहिं ।
चंद्रकिरण आतप स्वरूप; इहि भांत जु भुल्लहिं ॥
करुणानिधान अमलानगुन; प्रघट बनारसि जैनमत ।
परमत समान जो मनधरत; सो अजान मूरख अपत ॥ १९ ॥

धर्मं जागरयत्यघं विघटयत्युत्थापयत्युत्पथं
भिन्ते मत्सरमुच्छिनत्ति कुनयं मथ्नाति मिथ्यामतिम् ।
वैराग्यं वितनोति पुष्यति कृपां मुष्णाति तृष्णां च य-
त्तज्जैनं मतमर्चति प्रथयति ध्यायत्यधीते कृती ॥२०॥

मरहटा छन्द ।

शुभ धर्म विकाशै, पापविनाशै; कुपथउथप्पनहार ।
मिथ्यामतखंडै, कुनयविहंडै; मंडै दया अपार ॥
तृष्णामदमारै, राग विडारै; यह जिनआगमसार ।
जो पूजैं ध्यावैं, पढैं पढावैं; सो जगमाहिं उदार ॥२०॥

संघ अधिकार ।

रत्नानामिव रोहणक्षितिधरः खं तारकाणामिव
स्वर्गः कल्पमहीरुहामिव सरः पङ्केरुहाणामिव ।
पाथोधिः पयसामिवेन्दुमहसां स्थानं गुणानामसा-
वित्यालोच्य विरच्यतां भगवतः संघस्य पूजाविधिः ॥

३१ मात्रा सवैया छन्द ।

जैसैं नभमंडल तारागण; रोहनशिखर रतनकी खान ।
ज्यों सुरलोक भूरि कलपद्रुम; ज्योंसरवर अंबुज वन जान ॥
ज्यों समुद्र पूरन जलमंडित, ज्यों शशिछविसमूह सुखदान ।
तैसैं संघ सकल गुणमन्दिर, सेवहु भावभगति मन आन २१

यः संसारनिरासलालसमतिर्मुक्त्यर्थमुत्तिष्ठते
यं तीर्थं कथयन्ति पावनतया येनास्ति नान्यः समः ।
यस्मै स्वर्गपतिर्नमस्यति सतां यस्माच्छुभं जायते
स्फूर्तिर्यस्य परा वसन्ति च गुणा यस्मिन्स संघोऽर्च्यताम्

जे संसार भोग आशातज, ठानत मुकति पन्थकी दौर ।
जाकी सेव करत सुख उपजत, तिन समान उत्तम नहिं और ॥
इन्द्रादिक जाके पद वंदत, जो जंगम तीरथ शुचि ठौर ।
जामैं नित निवास गुन मंडन, सो श्रीसंघ जगत शिरमौर ॥२२॥

लक्ष्मीस्तं स्वयमभ्युपैति रभसात्कीर्तिस्तमालिङ्गति
प्रीतिस्तं भजते मतिः प्रयतते तं लब्धुमुत्कण्ठया ।
स्वःश्रीस्तं परिरब्धुमिच्छति मुहुर्मुक्तिस्तमालोकते
यः संघं गुणसंघकेलिसदनं श्रेयोरुचिः सेवते ॥२३॥

ताको आय मिलै सुखसंपति, कीरति रहै तिहूं जग छाय ।
जिनसों प्रीत बढै ताके घट, दिन दिन धर्मबुद्धि अधिकाय ॥
छिनछिन ताहि लखै शिवसुन्दर, सुरगसंपदा मिलै सुभाय ।
वानारसि गुनरास संघकी, जो नर भगति करै मनलाय॥२३॥

यद्भक्तेः फलमर्हदादिपदवीमुख्यं कृषेः सस्यव-
चक्रित्वत्रिदशेन्द्रतादि तृणवत्प्रासङ्गिकं गीयते ।
शक्तिं यन्महिमस्तुतौ न दधते वाचोऽपि वाचस्पतेः
संघः सोऽघहरः पुनातु चरणन्यासैः सतां मन्दिरम् ॥

जाके भगत मुकतिपदपावत, इन्द्रादिक पद गिनत न कोय ॥
ज्यों कृषि करत धानफल उपजत, सहज पयार घास भुस होय॥
जाके गुन जस जंपनकारन, सुरगुरु थकित होत मदखोय ।
सो श्रीसंघ पुनीत बनारसि, दुरित हरन विचरत भविलोय २४

अहिंसा अधिकार ।

क्रीडाभूः सुकृतस्य दुष्कृतरजःसंहारवात्या भवो-
दन्वन्नौर्व्यसनाग्निमेघपटली संकेतदूती श्रियाम् ।
निःश्रेणिस्त्रिदिवौकसः प्रियसखी मुक्तेः कुगत्यर्गला
सत्त्वेषु क्रियतां कृपैव भवतु क्लेशैरशेषैः परैः ॥ २५ ॥

घनाक्षरी ।

सुकृतकी खान इन्द्र पुरीकी नसैनी जान
पापरजखंडनको, पौनरासि पेखिये ।
भवदुखपावकबुझायवेको मेघ माला,
कमला मिलायवेको दूती ज्यों विशेखिये ॥

सुगति वधूसों प्रीत; पालवेकों आलीसम,
कुगतिके द्वार दृढ; आगलसी देखिये ॥
ऐसी दया कीजे चित; तिहूँलोकप्राणीहित,
और करतूत काहू; लेखेमें न लेखिये ॥ २५ ॥

शिखरिणी ।

यदि ग्रावा तोये तरति तरणिर्यद्युदयते
प्रतीच्यां सप्तार्चिर्यदि भजति शैत्यं कथमपि ।
यदि क्ष्मापीठं स्यादुपरि सकलस्यापि जगतः
प्रसूते सत्त्वानां तदपि न वधः क्वापि सुकृतम् ॥

अभानक छन्द ।

जो पश्चिम रवि उगै; तिरै पाषान जल ।
जो उलटै भुवि लोक; होय शीतल अनल ॥
जो मेरू डिगमिगै; सिद्धि कहँहोय मल ।
तव हू हिंसा करत; न उपजत पुण्यफल ॥ २६ ॥

मालिनी ।

स कमलवनमग्नेर्वासरं भास्वदस्ता-
दमृतमुरगवक्रात्साधुवादं विवादात् ।
रुगपगममजीर्णाज्जीवितं कालकूटा-
दभिलपति वधाद्यः प्राणिनां धर्ममिच्छेत् ॥ २७ ॥

घनाक्षरी छन्द ।

अगनिमैं जैसें अरविंद न विलोकियत;
सूर अथवत जैसें वासर न मानिये ।

सांपके वदन जैसैं अमृत न उपजत;
काककूट खाये जैसैं जीवन न जानिये ॥
कलह करत नहिं पाइये सुजस जैसैं;
वाढ़तरसांस रोग नाश न वखानिये ।
प्राणी वधमांहिं तैसैं; धर्मकी निशानी नाहिं,
याहीतैं बनारसी विवेक मन आनिये ॥ २७ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

आयुर्दीर्घतरं वपुर्वरतरं गोत्रं गरीयस्तरं
वित्तं भूरितरं बलं बहुतरं स्वामित्वमुचैस्तरम् ।
आरोग्यं विगतान्तरं त्रिजगति श्लाघ्यत्वमल्पेतरं
संसाराम्बुनिधिं करोति सुतरं चेतः कृपार्द्रान्तरम् ॥

३१ मात्रा सवैया छन्द ।

दीरघ आयु नाम कुल उत्तम; गुण संपति आनंद निवास ।
उन्नति विभव सुगम भवसागर; तीन भवन महिमा परकास ॥
भुजबलवंत अनंतरूप छवि; रोगरहित नित भोगविलास ॥
जिनके चित्तदयाल तिन्होंके, सब सुख होंहि बनारसिदास ॥

सत्यवचन अधिकार ।

विश्वासायतनं विपत्तिदलनं दैवैः कृताराधनं
मुक्तेः पथ्यदनं जलाग्निशमनं व्याघ्रोरगस्तम्भनम् ।
श्रेयःसंवननं समृद्धिजननं सौजन्यसंजीवनं
कीर्तेः केलिवनं प्रभावभवनं सत्यं वचः पावनम् २९

षट्पद ।

गुणनिवास विश्वास वास; दारिद्दुखखंडन ।
देवअराधन योग; मुकतिमारग मुखमंडन ॥
सुयशकेलि आराम; धाम सज्जन मनरंजन ।
नागबाघवशकरन; नीर पावक भयमंजन ॥
महिमा निधान सम्पतिसदन; मंगल मीत पुनीत मग ।
सुखरासि बनारसि दास भन; सत्यवचन जयवंत जग २९

शिखरिणी ।

यशो यस्माद्भस्मीभवति वनवह्नेरिव वनं
निदानं दुःखानां यदवनिरुहाणां जलमिव ।
न यत्र स्याच्छायातप इव तपःसंयमकथा
कथंचित्तन्मिथ्यावचनमभिधत्ते न मतिमान् ॥३०॥

३१ मात्रा सवैया छन्द ।

जो भस्मंत करै निज कीरति; ज्यों वनअग्नि दहै वन सोय ।
जाके संग अनेक दुख उपजत; वढै वृक्ष ज्यों सींचत तोय ॥
जामै धरम कथा नहिं सुनियत; ज्यों रवि बीच छांहिं नहिं होय ।
सो मिथ्यात्व वचन वानारसि; गहत न ताहि विचक्षण कोय ३०

वंशस्थविलम् ।

असत्यमप्रत्ययमूलकारणं कुवासनासद्म समृद्धिवारणम् ।
विपन्निदानं परवञ्चनोर्जितं कृतापराधं कृतिभिर्विवर्जितम् ॥

रोडक छन्द ।

क्रुमति कुरीत निवास; प्रीत परतीत निवारन ।
रिद्धसिद्धसुखहरन; विपत दारिद दुख कारन ॥
परवंचन उतपत्ति; सहज अपराध कुलच्छन ।
सो यह मिथ्यावचन; नाहिं आदरत विचच्छन ॥३१॥

शार्दूलविक्रीडित ।

तस्याग्निर्जलमर्णवः स्थलमरिर्मित्रं सुराः किङ्कराः
कान्तारं नगरं गिरिर्गृहमहिर्माल्यं मृगारिर्मृगः ।
पातालं बिलमस्त्रमुत्पलदलं व्यालः शृगालो विषं
पीयूषं विषमं समं च वचनं सत्याञ्चितं वक्ति यः ३२

घनाक्षरी ।

पावकतैं जल होय; वारिधतैं थल होय,
शस्त्रतैं कमल होय; ग्राम होय वनतैं ।
कूपतैं विवर होय; पर्वततैं घर होय,
वासवतैं दास होय; हितू दुरजनतैं ॥
सिंघतैं कुरंग होय; व्याल स्यालअंग होय,
विषतैं पियूष होय; माला अहिफनतैं ।
विषमतैं सम होय; संकट न व्यापै कोय,
एते गुन होंय सत्य; वादीके दरसतैं ॥ ३२ ॥

अदत्तादान अधिकार ।

मालिनी ।

तमभिलषति सिद्धिस्तं वृणीते समृद्धि-
स्तमभिसरति कीर्तिर्मुञ्चते तं भवार्तिः ।

स्पृहयति सुगतिस्तं नेक्षते दुर्गतिस्तं
परिहरति विपत्तं यो न गृह्णात्यदत्तम् ॥ ३३ ॥

रोडक छन्द ।

ताहि रिद्धि अनुसरै; सिद्धि अभिलाष धरै मन ।
विपत संगपरिहरै, जगत विस्तरै सुजसधन ॥
भवआरति तिहिं तजै, कुगति वंछै न एक छन ।
सो सुरसम्पति लहै, गहै नहिं जो अदत्त धन ॥ ३३ ॥

शिखरिणी ।

अदत्तं नादत्ते कृतसुकृतकामः किमपि यः
शुभश्रेणिस्तस्मिन्वसति कलहंसीव कमले ।
विपत्तस्माद्दूरं व्रजति रजनीवाम्बरमणे-
र्विनीतं विद्येव त्रिदिवशिवलक्ष्मीर्भजति तम् ॥३४॥

(३१ मात्रा) सवैया छन्द ।

ताको मिलै देवपद शिवपद, ज्यों विद्याधन लहै विनीत ।
तामैं आय रहै शुभ सम्पति, ज्यों कलहंस कमलसों मीत ॥
ताहि विलोक दुरै दुख दारिद, ज्यों रवि आगम रैन विदीत ।
जो अदत्त धन तजत बनारसि, पुण्यवंत सो पुरुष पुनीत३४

शार्दूलविक्रीडित ।

यन्निर्वर्तितकीर्तिधर्मनिधनं सर्वागसां साधनं
प्रोन्मीलद्वधवन्धनं विरचितक्लिष्टाशयोद्बोधनम् ।
दौर्गत्यैकनिवन्धनं कृतसुगत्याश्लेषसंरोधनं
प्रोत्सर्पत्प्रधनं जिघृक्षति न तद्धीमानदत्तं धनम् ३५

मरहटा छन्द ।

जो कीरति गोपहि, धरम विलोपहि, करहि महाअपराध ।
जो शुभगति तोरहि, दुरगति लोरहि, जोरहि युद्ध उपाध ॥
जो संकट आनहिं, दुर्गति ठानहिं, वधबंधनको गेह ।
सब औगुण मंडित, गहैं न पंडित, सो अदत्तधन येह ॥३५॥

हरिणी ।

परजनमनःपीडाक्रीडावनं वधभावना-
भवनमवनिव्यापिव्यापल्लताघनमण्डलम् ।
कुगतिगमने मार्गः स्वर्गापवर्गपुरार्गलं
नियतमनुपादेयं स्तेयं नृणां हितकाङ्क्षिणाम् ॥ ३६ ॥

(३१ मात्रा) सवैया ।

जो परिजन संताप केलिवन; जो वध बंध कुबुद्धि निवास ।
जो जग विपतिबेलघनमंडल; जो दुर्गति मारग परकास ॥
जो सुरलोकद्वार दृढ आगल; जो अपहरण मुक्तिसुखवास ।
सो अदत्तधन तजत साधुजन; निजहितहेत बनारसिदास ३६

शीलाधिकार.

शार्दूलविक्रीडित ।

दत्तस्तेन जगत्यकीर्तिपटहो गोत्रे मषीकूर्चक-
श्चारित्रस्य जलाञ्जलिर्गुणगणारामस्य दावानलः ।
संकेतः सकलापदां शिवपुरद्वारे कपाटो दृढः
शीलं येन निजं विलुप्तमखिलं त्रैलोक्यचिन्तामणिः ३७

(३१ मात्रा) सवैया।

सो अपयशको डंक बजावत; लावत कुल कलंक परधान।
सो चारितको देत जलांजुलि; गुन बनको दावानल दान॥
सो शिवपन्थकिवार बनावत; आपति विपति मिलनको थान।
चिन्तामणि समान जग जो नर; शील रतन निजकरत मलान ३७

मालिनी।

हरति कुलकलङ्कं लुम्पते पापपङ्कं
सुकृतमुपचिनोति श्लाघ्यतामातनोति।
नमयति सुरवर्गं हन्ति दुर्गोपसर्गं
रचयति शुचि शीलं स्वर्गमोक्षौ सलीलम्॥ ३८॥

रोडक छन्द।

कुल कलंक दलमलहि; पापमलपंक पखारहि।
दारुन संकट हरहि; जगत महिमा विस्तारहि॥
सुरग मुकति पद रचहि; सुकृतसंचहि करुणारसि।
सुरगन बंदहि चरन; शीलगुण कहत बनारसि॥३८॥

शार्दूलविक्रीडित।

व्याघ्रव्यालजलानलादिविपदस्तेषां व्रजन्ति क्षयं
कल्याणानि समुल्लसन्ति विबुधाः सांनिध्यमध्यासते।
कीर्तिः स्फूर्तिमियर्ति यात्युपचयं धर्मः प्रणश्यत्यघं
स्वर्निर्वाणसुखानि संनिदधते ये शीलमाबिभ्रते॥३९॥

मत्तगयन्द।

ताहि न बाघ भुजंगमको भय; पानि न बोरै न पावक जालै।
ताके समीप रहैं सुर किन्नर; सो शुभ रीत करै अघ टालै॥

तासु विवेक बढै घट अंतर; सो सुरके शिवके सुख मालै।
ताकि सुकीरति होय तिहूँ जग; जो नर शील अखंडित पालै॥३९॥

तोयत्यग्निरपि स्रजत्यहिरपि व्याघ्रोऽपि सारङ्गति
व्यालोऽप्यश्वति पर्वतोऽप्युपलति क्ष्वेडोऽपि पीयूषति।
विघ्नोऽप्युत्सवति प्रियत्यरिरपि क्रीडातडागत्यपां-
नाथोऽपि स्वगृहत्यटव्यपि नृणां शीलप्रभावाद्ध्रुवम् ४०

षट्पद।

अग्नि नीरसम होय; मालसम होय भुजंगम।
नाहर मृगसम होय; कुटिल गज होय तुरंगम॥
विष पियूषसम होय; शिखरपाषान खंडमित।
विघन उलट आनंद; होय रिपुपलट होयहित॥
लीलातलावसम उदधिजल; गृहसमान अटवी विकट।
इहिविधि अनेक दुख होहिं सुख; शीलवंत नरके निकट॥४०॥

परिग्रहाधिकार.

कालुष्यं जनयन् जडस्य रचयन्धर्मद्रुमोन्मूलनं
क्लिश्नन्नीतिकृपाक्षमाकमलिनीं लोभाम्बुधिं वर्धयन्।
मर्यादातटमुद्रुजञ्छुभमनोहंसप्रवासं दिश-
न्किं न क्लेशकरः परिग्रहनदीपूरः प्रवृद्धिं गतः॥४१॥

३१ मात्रा सवैया।

अंतर मलिन होय निज जीवन; विनसै धर्मतरोवरमूल।
किलसै दयानीतिनलिनीवन; धरै लोभ सागर तनथूल॥

उठै वाद मरजाद मिटै सब; सुजन हंस नहिं पावहिं कूल ।
बढ़त पूर पूरै दुख संकट; यह परिग्रह सरितासम तूल ॥४१॥

मालिनी ।

कलहकलभविन्ध्यः कोपगृध्रश्मशानं
व्यसनभुजगरन्ध्रं द्वेषदस्युप्रदोषः ।
सुकृतवनदवाग्निर्मार्दवाम्भोदवायु-
र्नयनलिनतुषारोऽत्यर्थमर्थानुरागः ॥ ४२ ॥

मनहरण ।

कलह गयन्द उपजायवेको विंधगिरि;
कोप गीधके अधायवेको सुस्मशान है ।
संकट भुजंगके निवास करवेको विल;
वैरभाव चौरको महानिशा समान है ॥
कोमल सुगुनघनखंडवेको महा पौन;
पुण्यवन दाहवेको दावानल दान है ।
नीत नय नीरज नसायवेको हिम रासि;
ऐसो परिग्रह राग दुखको निधान है ॥ ४२ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

प्रत्यर्थी प्रशमस्य मित्रमधृतेर्मोहस्य विश्रामभूः
पापानां खनिरापदां पदमसद्ध्यानस्य लीलावनम् ।
व्याक्षेपस्य निधिर्मदस्य सचिवः शोकस्य हेतुः कलेः
केलीवेश्म परिग्रहः परिहृतेर्योग्यो विविक्तात्मनाम् ४३

प्रशमको अहित अधीरजको बाल हित;
महामोहराजाकी प्रसिद्ध राजधानी है।
भ्रमको निधान दुरध्यानको विलासवन;
विपतको थान अभिमानकी निशानी है॥
दुरितको खेत रोग शोग उतपति हेत;
कलहनिकेत दुरगतिको निदानी है।
ऐसो परिग्रह भोग सबनको त्याग जोग;
आतम गवेषीलोग याही भांति जानी है॥ ४३॥

वह्निस्तृप्यति नेन्धनैरिह यथा नाम्भोभिरम्भोनिधि-
स्तद्वल्लोभघनो घनैरपि धनैर्जन्तुर्न संतुप्यति।
न त्वेवं मनुते विमुच्य विभवं निःशेषमन्यं भवं
यात्यात्मा तदहं मुधैव विदधाम्येनांसि भूयांसि किम्॥

छप्पय।

ज्यों नहिं अग्नि अघाय; पाय ईंधन अनेक विधि।
ज्यों सरिता घन नीर; तृपति नहिं होय नीरनिधि।
त्यो असंख धन बढत; मूढ संतोष न मानहिं।
पाप करत नहि डरत; बंध कारन मन आनहिं॥
परतछ विलोक जम्मन मरन; अथिर रूप संसारक्रम।
समुझै न आप पर ताप गुन; प्रगट बनारसि मोह भ्रम॥४४॥

क्रोधाधिकार.

यो मित्रं मधुनो विकारकरणे संत्रासंसंपादने
सर्पस्य प्रतिबिम्बमङ्गदहने सप्तार्चिषः सोदरः।

चैतन्यस्य निषूदने विषतरोः सब्रह्मचारी चिरं

स क्रोधः कुशलाभिलापकुशलैर्निर्मूलमुन्मूल्यताम्॥४५॥

गीताछन्द ।

जो सुजन चित्त विकार कारन; मनहु मदिरा पान ।
जो भरम भय चिन्ता बढावत, असित सर्प समान ॥
जो जंतु जीवन हरन विषतरु; तनदहनदवदान ।
सो कोपरास विनास भविजन; लहहु शिव सुखथान ॥ ४५ ॥

हारिणी ।

फलति कलितश्रेयःश्रेणीप्रसूनपरम्परः
प्रशमपयसा सिक्तो मुक्तिं तपश्चरणद्रुमः ।
यदि पुनरसौ प्रत्यासत्तिं प्रकोपहविर्भुजो
भजति लभते भस्मीभावं तदा विफलोदयः ॥ ४६॥

३१ मात्रा सवैया ।

जब मुनि कोइ बोय तप तरुवर; उपशम जल सींचत चितखेत ।
उदित ज्ञान साखा गुण पल्लव; मंगल पहुप मुकत फलहेत ॥
तब तिहि कोप दवानल उपजत, महामोह दल पवन समेत ।
सो भस्मंत करत छिन अंतर, दाहत विरखसहित मुनिचेत ४६॥

शार्दूलविक्रीडित ।

संतापं तनुते भिनत्ति विनयं सौहार्दमुत्सादय-
त्युद्वेगं जनयत्यवद्यवचनं सूते विधत्ते कलिम् ।
कीर्तिं कृन्तति दुर्मतिं वितरति व्याहन्ति पुण्योदयं
दत्ते यः कुगतिं स हातुमुचितो रोषः सदोषः सताम् ॥

वस्तुछन्द।

कलह मंडन मंडन करन उद्वेग।
यशखंडन हित हरन, दुखविलापसंतापसाधन॥
दुरवैन समुच्चरन, धरम पुण्य मारग विराधन।
विनय दमन दुरगति गमन, कुमति रमन गुणलोप।
ये सब लक्षण जान मुनि, तजहि ततक्षण कोप॥ ४७॥

यो धर्मं दहति द्रुमं दव इवोन्मथ्नाति नीतिं लतां
दन्तीवेन्दुकलां विधुंतुद इव क्लिश्नाति कीर्तिं नृणाम्।
स्वार्थं वायुरिवाम्बुदं विघटयत्युल्लासयत्यापदं
तृष्णां घर्म इवोचितः कृतकृपालोपः स कोपः कथम्॥

षट्पद।

कोप धरम धन दहै, अग्नि जिम विरख विनासहि।
कोप सुजस आवरहि, राहु जिम चंद गरासहि॥
कोप नीति दलमलहि, नाग जिम लता विहंडहि।
कोप काज सब हरहि, पवन जिम जलधर खंडहि॥
संचरत कोप दुख ऊपजै, बढै त्रषा जिम धूपमहँ।
करुणा विलोप गुण गोप जुत, कोप निषेध महंत कहँ॥ ४८॥

मानाधिकार.

मन्दाक्रान्ता।

यस्मादाविर्भवति विततिर्दुस्तरापन्नदीनां
यस्मिञ्शिष्टाभिरुचितगुणग्रामनामापि नास्ति।

यश्च व्याप्तं वहति वधधीधूम्यया क्रोधदावं

तं मानाद्रिं परिहर दुरारोहमौचित्यवृत्तेः ॥ ४९ ॥

(मात्रा ३१) सवैया।

जातैं निकस विपति सरिता सव; जगमें फैल रही चहुं ओर।

जाके ढिग गुणग्राम नाम नहिं, माया कुमतिगुफा अति घोर॥

जहँवधवुद्धि धूम रेखा सम; उदित कोप दावानल जोर।

सो अभिमान पहार पटंतर; तजत ताहि सर्वज्ञकिशोर ॥ ४९॥

शिखरिणी।

शमालानं भञ्जन्विमलमतिनाडीं विघटय-

न्किरन्दुर्वाक्पांशूत्करमगणयन्नागमसृणिम्।

भ्रमन्नुर्व्यां स्वैरं विनयवनवीथीं विदलयन्

जनः कं नानर्थं जनयति मदान्धो द्विप इव ॥५०॥

रोडक छन्द।

भंजहिं उपशम थंभ; सुमति जंजीर विहंडहिं।

कुवचन रज संग्रहहिं; विनयवनपंकति खंडहिं॥

जगमें फिरहिं स्वछन्द; वेद अंकुश नहिं मानहिं।

गज ज्यों नर मदअन्ध; सहज सव अनरथ ठानहिं॥५०॥

शार्दूलविक्रीडित।

औचित्याचरणं विलुम्पति पयोवाहं नभस्वानिव

प्रध्वंसं विनयं नयत्यहिरिव प्राणस्पृशां जीवितम्।

कीर्तिं कैरविणीं मतङ्गज इव प्रोन्मूलयत्यञ्जसा

मानो नीच इवोपकारनिकरं हन्ति त्रिवर्गं नृणाम् ५१

करिखा छन्द।

मान सब उचित आचार भंजन करै;
पवन संचार जिम घन विहंडहि।
मान आदर तनय विनय लोपै सकल;
भुजग विष भीर जिम मरन मंडहि॥
मानके उदित जगमाहिं विनसै सुयश;
कुपित मातंग जिम कुमुद खंडहि।
मानकी रीति विपरीति करतूति जिम;
अधमकी प्रीति नर नीत छंडहि॥ ५१॥

वसन्ततिलका।

मुष्णाति यः कृतसमस्तसमीहितार्थं
संजीवनं विनयजीवितमङ्गभाजाम्।
जात्यादिमानविषजं विषमं विकारं
तं मार्दवामृतरसेन नयस्व शान्तिम्॥ ५२॥

(मात्रा १५) चौपाई।

मान विषम विषतन संचरै। विनय विनाशै वाँछितहरै॥
कोमल गुन अम्रत संजोग। विनशै मान विषम विषरोग॥५२॥

मायाधिकार.

मालिनी।

कुशलजननवन्ध्यां सत्यसूर्यास्तसंध्यां
कुगतियुवतिमालां मोहमातङ्गशालाम्।

शमकमलहिमानीं दुर्यशोराजधानीं
व्यसनशतसहायां दूरतो मुञ्च मायाम् ॥ ५३ ॥

रोडक छन्द ।

कुशल जननकों बाँझ; सत्य रविहरन सांझथिति ।
कुगति युवति उरमाल; मोह कुंजर निवास छिति ॥
शम वारिज हिमराशि; पाप संताप सहायनि ।
अयश खानि जग जान; तजहु माया दुख दायनि ॥ ५३ ॥

उपेन्द्रवज्रा ।

विधाय मायां विविधैरुपायैः परस्य ये वञ्चनमाचरन्ति ।
ते वञ्चयन्ति त्रिदिवापवर्गसुखान्महामोहसखाः स्वमेव ५४

चेशरी छन्द ।

मोह मगन माया मति संचहि। कर उपाय ओरनको बंचहि ।
अपनी हानि लखैं नहिं सोय। सुगति हरैं दुर्गति दुख होय५४

वंशस्थविलम् ।

मायामविश्वासविलासमन्दिरं
दुराशयो यः कुरुते धनाशया ।
सोऽनर्थसार्थं न पतन्तमीक्षते
यथा विडालो लगुडं पयः पिबन् ॥ ५५ ॥

पद्धरिछन्द ।

माया अविश्वास विलास गेह। जो करहि मूढ जन धन सनेह।
सो कुगति बंध नहि लखै एम। तजमय बिलाव पय पियतजेम ५५

वसन्ततिलका ।

मुग्धप्रतारणपरायणमुज्जिहीते
यत्पाटवं कपटलम्पटचित्तवृत्तेः ।
जीर्यत्युपप्लवमवश्यमिहाप्यकृत्वा
नापथ्यभोजनमिवामयमायतौ तत् ॥ ५६ ॥

अभानक छन्द ।

ज्यों रोगी कर कुपथ; बढावै रोग तन ।
स्वादलंपटी भयो; कहै मुझ जनम धन ॥
त्यों कपटी कर कपट; मुगधको धन हरहि ।
करहि कुगतिको बंध; हरष मनमें धरहि ॥ ५६ ॥

लोभाधिकार.

शार्दूलविक्रीडित ।

यद्दुर्गामटवीमटन्ति विकटं क्रामन्ति देशान्तरं
गाहन्ते गहनं समुद्रमतनुक्लेशां कृषिं कुर्वते ।
सेवन्ते कृपणं पतिं गजघटासंघट्टदुःसंचरं
सर्पन्ति प्रधनं धनान्धितधियस्तल्लोभविस्फूर्जितम् ५७

मनहरण ।

सहै घोर संकट समुद्रकी तरंगनिमें;
कंपै चितभीत पंथ; गाहै बीच वनमें ।
ठानै कृषिकर्म जामें; शर्मको न लेश कहुं;
संकलेशरूप होय; जूझ मरै रनमें ॥

तजै निज धामको विराजि परदेश धावे;
सेवे प्रभु कृपणमलीन रहे मनमैं ।
डोलै वन कानन अनारज मनुज मूढ़,
ऐसी करतूति करे; लोभकी लगनमैं ॥ ५७ ॥

मूलं मोहविषद्रुमस्य सुकृताम्भोराशिकुम्भोद्भवः
क्रोधाग्नेररणिः प्रतापतरणिप्रच्छादने तोयदः ।
क्रीडासद्मकलेर्विवेकशशिनः स्वर्भानुरापन्नदी-
सिन्धुः कीर्तिलताकलापकलभो लोभः पराभूयताम् ५८

पूरन प्रताप रवि, रोकिवेको धाराधर;
सुकृति समुद्र सोखिवेको कुम्भनंद है ।
कोप दव पावक जननको अरणि दारु,
मोह विष मूलको; महा दृढ कंद है ॥
परम विवेक निशिमणि ग्रासिवेको राहु;
कीरति लता कलाप; दलन गयंद है ।
कलहको केलिभौन आपदा नदीको सिंधु;
ऐसो लोभ याहूको विपाक दुख दंद है ॥ ५८ ॥

वसन्ततिलका ।

निःशेषधर्मवनदाहविजृम्भमाणे
दुःखौघभस्मनि विसर्पदकीर्तिधूमे ।
बाढं धनेन्धनसमागमदीप्यमाने
लोभानले शलभतां लभते गुणौघः ॥ ५९ ॥

परम धरम वन दहै; दुरित अंवर गति धारहिं।
कुयश धूम उदगरै; भूरि भय भस्म विथारहिं॥
दुख फलंग फुंकरै; तरल तृष्णा कल काढहिं।
धन ईंधन आगम; सँजोग दिन दिन अति बाढहिं॥
लहलहै लोभ पावक प्रबल; पवन मोह उद्धत वहै।
दज्झहिं उदारता आदि बहु; गुण पतंग कँवरा कहै॥५९॥

शार्दूलविक्रीडित।

जातः कल्पतरुः पुरः सुरगवी तेषां प्रविष्टा गृहं
चिन्तारत्नमुपस्थितं करतले प्राप्तो निधिः संनिधिम्।
विश्वं वश्यमवश्यमेव सुलभाः स्वर्गापवर्गश्रियो
ये संतोषमशेषदोषदहनध्वंसाम्बुदं बिभ्रते॥ ६०॥

(३१ मात्रा) सवैया।

विलसै कामधेनु ताके घर; पूरै कल्पवृक्ष सुखपोष।
अखय भँडार भरै चिंतामणि; तिनको सुलभ सुरग औ मोष॥
ते नर स्ववश करैं त्रिभुवनको; तिनसों विमुख रहै दुख दोष।
सबै निधान सदा ताके ढिग; जिनके हृदय बसत संतोष॥६०॥

सज्जनाधिकार.

शिखरिणी।

वरं क्षिप्तः पाणिः कुपितफणिनो वक्रकुहरे
वरं झम्पापातो ज्वलदनलकुण्डे विरचितः।
वरं प्रासप्रान्तः सपदि जठरान्तर्विनिहितो
न जन्यं दौर्जन्यं तदपि विपदां सद्म विदुषा॥६१॥

(१६ मात्रा) चौपाई।

वरु अहिवदन हत्थ निज डारहिं। अगनि कुंडमैं तनपर जारहिं
दारहिं उदर करहिं विष भक्षन। पै दुष्टता न गहहिं विचक्षन ६१

वसन्ततिलका।

सौजन्यमेव विदधाति यशश्चयं च
स्वश्रेयसं च विभवं च भवक्षयं च।
दौर्जन्यमावहसि यत्कुमते तदर्थम्
धान्येऽनलं क्षिपसि तज्जलसेकसाध्ये ॥ ६२ ॥

मत्तगयन्द (सवैया)।

ज्यों कृषिकार भयो चितवातुल; सो कृषिकी करनी इम ठानें।
बीज बवै न करै जल सिंचन; पावकसों फलको थल मानें॥
त्यों कुमती निज स्वारथके हित; दुर्जनभाव हिये महिं आनें।
संपति कारन बंध विदारन; सज्जनता सुखमूल न जानें॥६२॥

पृथ्वी।

वरं विभववन्ध्यता सुजनभावभाजां नृणा-
मसाधुचरितार्जिता न पुनरूर्जिताः संपदः।
कृशत्वमपि शोभते सहजमायतौ सुन्दरं
विपाकविरसा न तु श्वयथुसंभवा स्थूलता॥६३॥

अभानक छन्द।

वर दरिद्रता होय; करत सज्जन कला।
दुराचारसों मिलै; राज सो नहिं भला॥

ज्यों शरीर कृश सहज; सुशोभा देत है ।
सूज थूलता वढै; मरनको हेत है ॥ ६३ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

न ब्रूते परदूपणं परगुणं वक्त्यल्पमप्यन्वहं
संतोपं वहते परर्द्धिपु पराबाधासु धत्ते शुचम् ।
स्वश्लाघां न करोति नोज्झति नयं नौचित्यमुल्लङ्घय-
त्युक्तोऽप्यप्रियमक्षमां न रचयत्येतच्चरित्रं सताम् ॥६४॥

पट्पद ।

नहिं जंपै पर दोष; अल्प परगुण वहु मानहि ।
हृदय धैरै संतोप; दीन लखि करुणा ठानहि ॥
उचित रीत आदरहि; विमल नय नीति न छंडहि ।
निज सलहन परिहरहि; राम रचि विपय विहंडहि ॥
मंडहि न कोप दुर वचन सुन; सहज मधुर धुनि उच्चरहि ।
कहि कवरपाल जग जाल वसि; ये चरित्र सज्जन करहि॥६४॥

गुणिसंगाधिकार.

धर्मं ध्वस्तदयो यशश्च्युतनयो वित्तं प्रमत्तः पुमा-
न्काव्यं निष्प्रतिभस्तपः शमदमैः शून्योऽल्पमेधः श्रुतम् ।
वस्त्वालोकमलोचनश्चलमना ध्यानं च वाञ्छत्यसौ
यः सङ्गं गुणिनां विमुच्य विमतिः कल्याणमाकाङ्क्षति ॥

मत्तगयन्द (सवैया) ।

सो करुणाविन धर्म विचारत; नैन विना लखिवेको उमाहै ।
सो दुरनीति धरै यश हेतु, सुधी विन आगमको अवगाहै ॥

सो हियशून्य कवित्त करै समता विन सो तपसों तन दाहै।
सो थिरता विन ध्यान धरै शठ; जो सत संग तजै हित चाहै ६५

हरिणी।

हरति कुमतिं भिन्ते मोहं करोति विवेकितां
वितरति रतिं सूते नीतिं तनोति विनीतताम्।
प्रथयति यशो धत्ते धर्मं व्यपोहति दुर्गतिं
जनयति नृणां किं नाभीष्टं गुणोत्तमसंगमः॥६६॥

घनाक्षरी।

कुमति निकंद होय महा मोह मंद होय;
जगमगै सुयश विवेक जगै हियेसों।
नीतको दिढाव होय विनैको बढाव होय;
उपजै उछाह ज्यों प्रधान पद लियेसों॥
धर्मको प्रकाश होय दुर्गतिको नाश होय;
वरतै समाधि ज्यों पियूष रस पियेसों।
तोष परि पूर होय; दोष दृष्टि दूर होय,
एते गुन होहिं सत; संगतके कियेसों॥ ६६॥

शार्दूलविक्रीडित।

लब्धुं बुद्धिकलापमापदमपाकर्तुं विहर्तुं पथि
प्राप्तुं कीर्तिमसाधुतां विधुवितुं धर्मं समासेवितुम्।
रोद्धुं पापविपाकमाकलयितुं स्वर्गापवर्गश्रियं
चेत्त्वं चित्त समीहसे गुणवतां सङ्गं तदङ्गीकुरु॥६७॥

कुंडलिया ।

'कौंरा' ते मारग गहैं, जे गुनिजनसेवंत ।
ज्ञानकला तिनके जगै, ते पावहिं भव अंत ॥
ते पावहिं भव अंत, शांत रस ते चित धारहिं ।
ते अघ आपद हरहिं, धरमकीरति विस्तारहिं ॥
होंहि सहज जे पुरुष, गुनी वारिजके भौंरा ।
ते सुर संपति लहैं, गहैं ते मारग 'कौंरा' ॥ ६७ ॥

हारिणी ।

हिमति महिमाम्भोजे चण्डानिलत्युदयाम्बुदे
द्विरदति दयारामे क्षेमक्षमाभृति वज्रति ।
समिधति कुमत्यग्नौ कन्दत्यनीतिलतासु यः
किमभिलषतां श्रेयः श्रेयान्स निर्गुणिसंगमः ॥ ६८॥

षट्पद ।

जो महिमा गुन हनहि, तुहिन जिम वारिज वारहि ।
जो प्रताप संहरहि, पवन जिम मेघ विडारहि ॥
जो सम दम दलमलहि, दुरद जिम उपवन खंडहि ।
जो सुछेम छय करहि, वज्र जिम शिखर विहंडहि ॥
जो कुमति अग्नि ईंधनसरिस, कुनयलता दृढ मूल जग ।
सो दुष्टसंग दुख पुष्ट कर, तजहिं विचक्षणता सुभग ॥ ६८॥

इन्द्रियाधिकार ।

शार्दूलविक्रीडित ।

आत्मानं कुपथेन निर्गमयितुं यः शूकलाश्वायते
कृत्याकृत्यविवेकजीवितहतौ यः कृष्णसर्पायते ।

यः पुण्यद्रुमखण्डखण्डनविधौ स्फूर्जत्कुठारायते
तं लुप्तव्रतमुद्रमिन्द्रियगणं जित्वा शुभंयुर्भव ॥ ६९ ॥

हरिगीतिका ।

जे जगत जनको कुपंथ डारहिं, वक्र शिक्षित तुरगसे ।
जे हरहिं परम विवेक जीवन, काल दारुण उरगसे ॥
जे पुण्यवृक्षकुठार तीखन, गुपति व्रत मुद्रा करैं ।
ते करनसुभट प्रहार भविजन, तब सुमारग पग धरैं ॥ ६९ ॥

शिखरिणी ।

प्रतिष्ठां यन्निष्ठां नयति नयनिष्ठां विघटय-
त्यकृत्येष्वाधत्ते मतिमतपसि प्रेम तनुते ।
विवेकस्योत्सेकं विदलयति दत्ते च विपदं
पदं तद्दोषाणां करणनिकुरम्बं कुरु वशे ॥ ७० ॥

घनाक्षरी ।

ये ही हैं कुगतिके निदानी दुख दोष दानी;
इनहीकी संगतसों संग भार बहिये ।
इनकी मगनतासों विभोको विनाश होय,
इनहीकी प्रीतसों अनीत पन्थ गहिये ॥
ये ही तपभावकों विडारैं दुराचार धारैं,
इनहीकी तपत विवेक भूमि दहिये ।
ये ही इन्द्री सुभट इनहिं जीतै सोई साधु,
इनको मिलापी सो तो महापापी कहिये ॥ ७० ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

यत्तां मौनमगारमुज्झतु विधिप्रागल्भ्यमभ्यस्यता-
मस्त्वन्तर्गणमागमश्रममुपादत्तां तपस्तप्यताम् ।
श्रेयःपुञ्जनिकुञ्जभञ्जनमहावातं न चेदिन्द्रिय-
व्रातं जेतुमवैति भस्मनि हुतं जानीतं सर्वं ततः ७१

मौनके धरैया गृह त्यागके करैया विधि,
रीतके सधैया पर निन्दासों अपूठे हैं ।
विद्याके अभ्यासी गिरिकंदराके वासी शुचि;
अंगके अचारी हितकारी वैन छूठे हैं ॥
आगमके पाठी मन लाय महा काठी भारी ;
कष्टके सहनहार रामाहुसों रूठे हैं ॥
इत्यादिक जीव सब कारज करत रीते;
इन्द्रिनके जीते विना सरवंग झूठे हैं ॥ ७१ ॥

धर्मध्वंसधुरीणमभ्रमरसावारीणमापत्प्रथा-
लङ्कर्मीणमशर्मनिर्मितिकलापारीणमेकान्ततः ।
सर्वान्नीनमनात्मनीनमनयात्यन्तीनमिष्टे यथा-
कामीनं कुपथाध्वनीनमजयन्नक्षौघमक्षेमभाक् ॥ ७२ ॥

धर्मतरुभंजनको महा मत्त कुंजरसे;
आपदा भंडारके भरनको करोरी हैं ।

---

१. कुमतेरपि पाठः.

सत्यशील रोकवेको पौढ़ परदार जैसे;
दुर्गतिके मारग चलायवेकों धोरी हैं ॥
कुमतिके अधिकारी कुनैपथके विहारी;
भद्रभाव ईंधन जरायवेकों होरी है ।
मृपाके सहाई दुरभावनाके भाई ऐसे;
विषयाभिलापी जीव अघके अघोरी हैं ॥ ७२ ॥

कमलाधिकार ।

निम्नं गच्छति निम्नगेव नितरां निद्रेव विष्कम्भते
चैतन्यं मदिरेव पुष्यति मदं धूम्येव धत्तेऽन्धताम् ।
चापल्यं चपलेव चुम्बति दवज्वालेव तृष्णां नय-
त्युल्लासं कुलटाङ्गनेव कमला स्वैरं परिभ्राम्यति ॥७३॥

मत्तगयन्द ।

नीचकी ओर ढरै सरिता जिम, धूम वढ़ावत नींदकी नाईं ।
चंचलता प्रवटै चपला जिम, अंध करै जिम धूमकी झाईं ॥
तेज करै तिसना दव ज्यों मद; ज्यों मद पोपित मूढके तांईं।
ये करतूति करै कमला जग; डोलत ज्यों कुलटा विन सांईं ॥

दायादाः स्पृहयन्ति तस्करगणा मुष्णन्ति भूमीभुजो
गृह्णन्ति च्छलमाकलय्य हुतभुग्भस्मीकरोति क्षणात् ।
अम्भः प्लावयते क्षितौ विनिहितं यक्षा हरन्ते हठा-
द्दुर्वृत्तास्तनया नयन्ति निधनं धिग्बह्वधीनं धनम् ७४

बंधु विरोध करै निशवासर; दंडनकों नरवै छल जोवै।
पावक दाहत नीर बहावत, ह्वै दृगओट निशाचर ढोवै॥
भूतल रक्षित जक्ष हरै करकै दुरव्रत्ति कुसंतति खोवै।
ये उतपात उठैं धनके ढिग; दामधनी कहु क्यों सुख सोवै७४

नीचस्यापि चिरं चटूनि रचयन्त्यायान्ति नीचैर्नतिं
शत्रोरप्यगुणात्मनोऽपि विदधत्युच्चैर्गुणोत्कीर्तनम्।
निर्वेदं न विदन्ति किंचिदकृतज्ञस्यापि सेवाक्रमे
कष्टं किं न मनस्विनोऽपि मनुजाः कुर्वन्ति वित्तार्थिनः॥

घनाक्षरी।

नीच धनवंत ताहि निरख असीस देय;
वह न विलोकै यह चरन गहत है।
वह अकृतज्ञ नर यह अज्ञताको घर;
वह मद लीन यह दीनता कहत है।
वह चित्त कोप ठानै यह वाको प्रभु मानै;
वाके कुवचन सब यह पै सहत है।
ऐसी गति धारै न विचारै कछु गुण दोष;
अरथाभिलाषी जीव अरथ चहत है॥ ७५॥

लक्ष्मीः सर्पति नीचमर्णवपयः सङ्गादिवाम्भोजिनी-
संसर्गादिव कण्टकाकुलपदा न क्वापि धत्ते पदम्।

---

१. राजा.

चैतन्यं विषसंनिधेरिव नृणामुज्झासयत्यञ्जसा
धर्मस्थाननियोजनेन गुणिभिर्ग्राह्यं तदस्याः फलम् ७६

नीचहीकी ओरकों उमंग चलै कमला सो;
पिता सिंधु सलिलस्वभाव याहि दियो है।
रहै न सुथिर है सकंटक चरन याको;
बसी कंजमाहिं कंजकैसो पद कियो है॥
जाको मिलै हितसों अचेत कर डारै ताहि;
विषकी बहन तातैं विषकैसो हियो है।
ऐसी ठगहारी जिन धरमके पंथडारी;
करकै सुकृति तिन याको फल लियो है॥ ७६॥

दानाधिकार.

चारित्रं चिनुते तनोति विनयं ज्ञानं नयत्युन्नतिं
पुष्णाति प्रशमं तपः प्रबलयत्युल्लासयत्यागमम्।
पुण्यं कन्दलयत्यघं दलयति स्वर्गं ददाति क्रमा-
न्निर्वाणश्रियमातनोति निहितं पात्रे पवित्रे धनम् ७७

३१ मात्रा सवैया छंद।

चरन अखंड ज्ञान अति उज्जल; विनय विवेक प्रशम अमलान।
अनघ सुभाव सुकृति गुन संचय; उच्च अमरपद बंध विधान॥
आगमगम्य रम्य तपकी रुचि; उद्धत मुकति पंथ सोपान।
ये गुण प्रघट होंय तिनके घट; जे नर देहिं सुपत्तहिं दान ७७

दारिद्र्यं न तमीक्षते न भजते दौर्भाग्यमालम्बते
नाकीर्तिर्न पराभवोऽभिलषते न व्याधिरास्कन्दति ।
दैन्यं नाद्रियते दुनोति न दरः क्लिश्नन्ति नैवापदः
पात्रे यो वितरत्यनर्थदलनं दानं निदानं श्रियाम् ॥७८॥

पद्पद ।

सो दरिद्र दल मलहिं; ताहि दुर्भाग न गंजहि ।
सो न लहै अपमान; सु तो विपदा भयभंजहि ॥
तिहिं न कोइ दुख देहि, तासु तन व्याधि न बड्ढ़इ ।
ताहि कुयश परहरहि, सुमुख दीनता न कड्ढ़इ ॥
सो लहहि उच्चपद जगत महँ, अघ अनरथ नासहि सरव ।
कहै कुँवरपाल सो धन्य नर, जो सुखेत बोवै दरव ॥७८॥

लक्ष्मीः कामयते मतिर्मृगयते कीर्तिस्तमालोकते
प्रीतिश्चुम्बति सेवते सुभगता नीरोगतालिङ्गति ।
श्रेयःसंहतिरभ्युपैति वृणुते स्वर्गोपभोगस्थिति-
र्मुक्तिर्वाञ्छति यः प्रयच्छति पुमान्पुण्यार्थमर्थं निजम् ॥

घनाक्षरी ।

ताहिको सुबुद्धि वरै रमा ताकी चाह करै,
चंदन सरूप हो सुयश ताहि चरचै ।
सहज सुहाग पावै सुरग समीप आवै,
बार बार मुकति रमनि ताहि अरचै ॥
ताहिके शरीरकों अलिंगति अरोगताई,
मंगल करै मिताई प्रीत करै परचै ।

जोई नर हो सुचेत चित्त समता समेत,
धरमके हेतको सुखेत धन खरचै ॥ ७९ ॥

मन्दाक्रान्ता।

तस्यासन्ना रतिरनुचरी कीर्तिरुत्कण्ठिता श्रीः
स्निग्धा बुद्धिः परिचयपरा चक्रवर्तित्वऋद्धिः।
पाणौ प्राप्ता त्रिदिवकमला कामुकी मुक्तिसंपत्
सप्तक्षेत्र्यां वपति विपुलं वित्तबीजं निजं यः ॥ ८० ॥

पद्मावती।

ताकी रति कीरति दासी सम, सहसा राजरिद्धि घर आवै।
सुमति सुता उपजै ताके घट, सो सुरलोक संपदा पावै ॥
ताकी दृष्टि लखै शिव मारग, सो निरबंध भावना भावै।
जो नर त्याग कपट कुंवरा कह, विधिसों सप्तखेत धन बावै॥८०

तपप्रभावाधिकार।

शार्दूलविक्रीडित।

यत्पूर्वार्जितकर्मशैलकुलिशं यत्कामदावानल-
ज्वालाजालजलं यदुग्रकरणग्रामाहिमन्त्राक्षरम्।
यत्प्रत्यूहतमःसमूहदिवसं यल्लब्धिलक्ष्मीलता-
मूलं तद्विविधं यथाविधि तपः कुर्वीत वीतस्पृहः ८१

षट्पद।

जो पूरव कृत कर्म, पिंड गिरदलन वज्रधर।
जो मनमथ दव ज्वाल, माल सँग हरन मेघझर ॥

जो प्रचंड इंद्रिय भुजँग, थंभन सुमंत्र वर।
जो विभाव संतम सुपुंज, खंडन प्रभात कर॥
जो लब्धि बेल उपजंत घट, तासु मूल दृढता सहित।
सो सुतप अंग बहुविधि दुविधि, करहि विबुधिवंछारहित ८१

यस्माद्विघ्नपरम्परा विघटते दास्यं सुराः कुर्वते
कामः शाम्यति दाम्यतीन्द्रियगणः कल्याणमुत्सर्पति।
उन्मीलन्ति महर्द्धयः कलयति ध्वंसं च यः कर्मणां
स्वाधीनं त्रिदिवं शिवं च भवति श्लाघ्यं तपस्तन्न किम्॥

घनाक्षरी।

जाके आदरत महा रिद्धिसों मिलाप होय,
मदन अव्याप होय कर्म वन दाहिये।
विघन विनास होय गीरवाण दास होय,
ज्ञानको प्रकाश होय भो समुद्र थाहिये॥
देवपद खेल होय मंगलसों मेल होय,
इन्द्रिनिकी जेल होय मोषपंथ गाहिये।
जाकी ऐसी महिमा प्रघट कहै कौंरपाल,
तिहुंलोक तिहुंकाल सो तप सराहिये॥८२॥

कान्तारं न यथेतरो ज्वलयितुं दक्षो दवाग्निं विना
दावाग्निं न यथापरः शमयितुं शक्तो विनाम्भोधरम्।
निष्णातः पवनं विना निरसितुं नान्यो यथाम्भोधरं
कर्मौघं तपसा विना किमपरो हन्तुं समर्थस्तथा॥८३॥

मत्तगयन्द ।

जो वर कानन दाहनकों दव; पावकसों नहिं दूसरो दीसै ।
जो दवआग बुझै न ततक्षण; जो न अखंडित मेघ वरीसै ॥
जो प्रघटै नहि जौलग मारुत; तौलग घोर घटा नहिं खीसै ॥
त्यों घटमें तपवज्रविना दृढ; कर्मकुलाचल और न पीसै ॥८३॥

स्रग्धरा ।

संतोषस्थूलमूलः प्रशमपरिकरस्कन्धबन्धप्रपञ्चः
पञ्चाक्षीरोधशाखः स्फुरदभयदलः शीलसंपत्प्रवालः ।
श्रद्धाम्भःपूरसेकाद्विपुलकुलबलैश्वर्यसौन्दर्यभोगः
स्वर्गादिप्राप्तिपुष्पः शिवपदफलदः स्यात्तपः[1]कल्पवृक्षः ॥

षट्पद ।

सुदृढ मूल संतोष; प्रशम गुन प्रबल पेड ध्रुव ।
पंचाचार सु शाख; शील संपति प्रवाल हुव ॥
अभय अंग दलपुंज; देवपद पहुप सुमंडित ।
सुकृतभाव विस्तार; भार शिव सुफल अखंडित ॥
परतीत धार जल सिंच किय; अति उतंग दिन दिन पुषित ।
जयवंत जगत यह सुतपतरु; मुनि विहंग सेवहिं सुखित ॥ ८४ ॥

भावनाधिकार ।

शार्दूलविक्रीडित ।

नीरागे तरुणीकटाक्षितमिव त्यागव्यपेत[2]प्रभोः
सेवाकष्टमिवोपरोपणमिवाम्भोजन्मनामश्मनि ।

---

१. तपः पादपोऽयमित्यपि पाठः. २. त्यागव्ययेन प्रभोः इत्यपि पाठः.

विष्वग्वर्षमिवोपरक्षितितले दानार्हदर्चातपः-
स्वाध्यायाध्ययनादि निष्फलमनुष्ठानं विना भावनाम्॥

पद्मावती छन्द।

ज्यों नीराग पुरुषके सनमुख; पुरकामिनि कटाक्ष कर ऊठी।
ज्यों धन त्यागरहित प्रभुसेवन; ऊसरमें वरषा जिम छूठी॥
ज्यों शिलमाहिं कमलको वोवन; पवन पकर जिम बांधिये मूठी।
ये करतूति होंय जिम निष्फल; त्यों विनभावक्रिया सब झूंठी ८५

सर्वं ज्ञीप्सति पुण्यमीप्सति दयां धित्सत्यघं भित्सति
क्रोधं दित्सति दानशीलतपसां साफल्यमादित्सति।
कल्याणोपचयं चिकीर्षति भवाम्भोधेस्तटं लिप्सते
मुक्तिस्त्रीं परिरिप्सते यदि जनस्तद्भावयेद्भावनाम् ८६

घनाक्षरी।

पूरब करम दहै; सरवज्ञ पद लहै;
गहै पुण्यपंथ फिर पापमें न आवना।
करुनाकी कला जागै कठिन कषाय भागै;
लागै दानशील तप सफल सुहावना॥
पावै भवसिंधु तट खोलै मोक्षद्वार पट;
शर्म साध धर्मकी धरामैं करै धावना।
एते सब काज करै अलखको अंगधरै;
चेरी चिदानंदकी अकेली एक भावना॥ ८६॥

पृथ्वी ।

विवेकवनसारिणीं प्रशमशर्मसंजीवनीं
भवार्णवमहातरीं मदनदावमेघावलीम् ।
चलाक्षमृगवागुरां गुरुकपायशैलाशनिं
विमुक्तिपथवेसरीं भजत भावनां किं परैः ॥ ८७ ॥

प्रशमके पोषवेको अम्रतकी धारासम;
ज्ञानवन सींचवेको नदी नीरभरी है ।
चंचल करण मृग बांधवेकों वागुरासी;
कामदावानल नासवेको मेघ झरी है ॥
प्रवल कपायगिरि भंजवेको वज्र गदा,
भो समुद्र तारवेको पौढी महा तरी है ।
मोक्षपन्थ गाहवेकों वेशरी[1] विलायतकी,
ऐसी शुद्ध भावना अखंड धार ढरी है ॥ ८७ ॥

शिखरिणी ।

धनं दत्तं वित्तं जिनवचनमभ्यस्तमखिलं
क्रियाकाण्डं चण्डं रचितमवनौ सुप्तमसकृत् ।
तपस्तीव्रं तप्तं चरणमपि चीर्णं चिरतरं
न चेच्चित्ते भावस्तुपवपनवत्सर्वमफलम् ॥ ८८ ॥

अभानक छन्द ।

गह पुनीत आचार, जिनागम जोवना ।
कर तप संजम दान, भूमि का सोवना ॥

---

१. अश्वतरी अर्थात् खचरी.

ए करनी सब निफल, होंय विन भावना ।
ज्यों तुप बोए हाथ, कछू नहिं आवना ॥ ८८ ॥

वैरागाधिकार ।

हारिणी ।

यदशुभरजःपाथो दृप्तेन्द्रियद्विरदाङ्कुशं
कुशलकुसुमोद्यानं माद्यन्मनःकपिश्रृङ्खला ।
विरतिरमणीलीलावेश्म स्मरज्वरभेषजं
शिवपथरथस्तद्वैराग्यं विमृश्य भवाभयः ॥ ८९ ॥

घनाक्षरी ।

अशुभता धूर हरवेकों नीर पूर सम,
विमल विरत कुलवधूको सुहाग है ।
उदित मदन जुर नाशवेकों जुरांकुश,
अक्षगज थंमनको अंकुशको दाग है ॥
चंचल कुमन कपि रोकवेको लोहफन्द,
कुशल कुसुम उपजायवेको बाग है ।
सूधा मोक्षमारग चलायवेको नामी रथ,
ऐसो हितकारी भयभंजन विराग है ॥ ८९ ॥

वसन्ततिलका ।

चण्डानिलः स्फुरितमब्दचयं दवार्चि-
र्वृक्षव्रजं तिमिरमण्डलमर्कबिम्बम् ।
वज्रं महीध्रनिवहं नयते यथान्तं
वैराग्यमेकमपि कर्म तथा समग्रम् ॥ ९० ॥

अभानक छन्द ।

ज्यों समीर गंभीर, घनाघन छय करै ।
वज्र विदारै शिखर, दिवाकर तम हरै ॥
ज्यों दव पावक पूर, दहै वनकुंजको ।
त्यों भंजै वैराग, करमके पुंजको ॥ ९० ॥

शिखरिणी ।

नमस्या देवानां चरणवरिवस्या शुभगुरो-
स्तपस्या निःसीमक्लमपदमुपास्या गुणवताम् ।
निषद्यारण्ये स्यात्करणदमविद्या च शिवदा
विरागः क्रूरागःक्षपणनिपुणोऽन्तः स्फुरति चेत् ॥

पद्मावती छन्द ।

कीनी तिन सुदेवकी पूजा, तिन गुरुचरणकमल चित लायो ।
सो वनवास वसो निशवासर, तिन गुनवंत पुरुष यश गायो ॥
तिन तप लियो कियो इन्द्री दम, सो पूरन विद्या पढ आयो ।
सब अपराध गए ताकों तज, जिन वैरागरूप धन पायो॥९१॥

शार्दूलविक्रीडित ।

भोगान्कृष्णभुजङ्गभोगविषमान्राज्यं रजःसंनिभं
बन्धून्बन्धनिबन्धनानि विषयग्रामं विषान्नोपमम् ।
भूतिं भूतिसहोदरां तृणतुलं स्त्रैणं विदित्वा त्यजं-
स्तेष्वासक्तिमनाविलो विलभते मुक्तिं विरक्तः पुमान्॥

घनाक्षरी छन्द ।

जाको भोग भाव दीसैं कारे नागकेसे फन,
राजको समाज दीखै जैसो रजकोप है ।
जाको परवारको वढाव घेरावंध सूझै,
विषै सुख सौंजकों विचारै विषपोष है ॥
लसै यों विभूति ज्यों भसमिको विभूति कहै,
वनता विलासमैं विलोकै दृढ दोष है ।
ऐसो जान त्यागै यह महिमा विरागताकी,
ताहीको वैराग सही ताके ढिग मोष है ॥ ९२ ॥

इति २२ अधिकार समाप्तम्

अथ उपदेश गाथा ।

उपेन्द्रवज्रा ।

जिनेन्द्रपूजा गुरुपर्युपास्तिः सत्त्वानुकम्पा शुभपात्रदानम् ।
गुणानुरागः श्रुतिरागमस्य नृजन्मवृक्षस्य फलान्यमूनि ९३

मत्तगयन्द ।

कै परमेश्वरकी अरचा विधि, सो गुरुकी उपसर्पन कीजे ।
दीन विलोक दया धरिये चित, प्रासुक दान सुपत्तहिं दीजे ॥
गाहक हो गुनको गहियै, रुचिसों जिन आगमको रस पीजे ।
ये करनी करिये ग्रहमैं वस, यों जगमें नरभोफल लीजे ॥९३॥

शिखरिणी ।

त्रिसंध्यं देवार्चा विरचय च यं प्रापय यशः
श्रियः पात्रे वापं जनय नयमार्गं नय मनः ।

सरक्रोधाद्यारीन्दलय कलय प्राणिषु दयां
जिनोक्तं सिद्धान्तं शृणु वृणु जवान्मुक्तिकमलाम् ॥

हरिगीता छन्द।

जो करै साध त्रिकाल सुमरण, जास जगयश विस्तरै।
जो सुनै परमागमहिं सुरुचिसों, नीत मारग पग धरै॥
जो निरख दीन दया प्रयुंजै, कामक्रोधादिक हरै।
जो सुधन सप्त सुखेत खरचै, ताहि शिवसंपति वरै॥ ९४॥

शार्दूलविक्रीडित।

कृत्वार्हत्पदपूजनं यतिजनं नत्वा विदित्वागमं
हित्वा सङ्गमधर्मकर्मठधियां पात्रेषु दत्वा धनम्।
गत्वा पद्धतिमुत्तमक्रमजुषां जित्वान्तरारिव्रजं
स्मृत्वा पञ्चनमस्क्रियां कुरु करक्रोडस्थमिष्टं सुखम्॥

वस्तु छन्द।

देव पुज्जहि देव पूज्जहि, रचहिं गुरु सेव।
परमागमरुचि धरहि, तजहि दुष्टसंगत ततक्षण।
गुणि संगति आदरहिं, करहिं त्याग दुर्भक्ष भक्षण॥
देहिं सुपात्रहिं दान नित, जपैं पंचनवकार।
ये करनी जे आचरहिं, ते पावैं भवपार॥ ९५॥

हारिणी।

प्रसरति यथा कीर्तिर्दिक्षु क्षपाकरसोदरा-
भ्युदयजननी याति स्फीतिं यथा गुणसन्ततिः।
कलयति यथा वृद्धिं धर्मः कुकर्महतिक्षमः
कुशलसुलभे न्याय्ये कार्यं तथा पथि वर्तनम्॥ ९६॥

दोहा छन्द ।

गुन अरु धर्म सुथिर रहै, यश प्रताप गंभीर ।
कुशल वृक्ष जिम लह लहै, तिहिं मारग चल वीर ! ॥९६॥

शिखरिणी ।

करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणमनं
मुखे सत्या वाणी श्रुतमधिगतं च श्रवणयोः ।
हृदि स्वच्छा वृत्तिर्विजयि भुजयोः पौरुषमहो
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम् ॥ ९७ ॥

कवित्त छन्द ।

वंदन विनय मुकट सिर ऊपर, सुगुरुवचन कुंडल जुगकान ।
अंतर शत्रुविजय भुजमंडन, मुकतमाल उर गुन अमलान ॥
त्याग सहज कर कटक विराजत, शोभित सत्य वचन मुख पान ।
भूषण तजहिं तऊ तन मंडित, यातैं सन्तपुरुष परधान ॥ ९७ ॥

भवारण्यं मुक्त्वा यदि जिगमिषुर्मुक्तिनगरीं
तदानीं मा कार्षीर्विषयविषवृक्षेषु वसतिम् ।
यतश्छायाप्येषां प्रथयति महामोहमचिरा-
दयं जन्तुर्यस्मात्पदमपि न गन्तुं प्रभवति ॥ ९८ ॥

नोट-नीचे लिखे तीन कवित्तोंके मूल श्लोक नहिं मिले.

घनाक्षरी ।

गहैं जे सुजन रीत गुणीसों निवाहैं प्रीत,
सेवा साधैं गुरुकी विनैसों कर जोरकैं ।

---

१ इस मूल श्लोकका भाषानुवाद किसीभी प्रतिमें नहीं है ।

विद्याको विसनधरैं परतिय संग हरैं,
दुर्जनकी संगतिसों बैठे मुख मोरकैं ॥
तजैं लोकनिन्द्य काज पूजैं देव जिनराज,
करैं ले करन थिर उमंग बहोरकैं।
तेई जीव सुखी होंय तेई मोख सुखी होंय,
तेई होंहि परम करम फन्द तोरकैं ॥ १ ॥
परनिन्दा त्याग कर मनमें वैराग धर,
क्रोध मान माया लोभ चारों परिहर रे ॥
हिरदेमैं तोष गहु समतासों सीरो रहु,
धरमको भेद लहु खेदमें न पर रे ॥
करमको वंश खोय मुकतिको पन्थ जोय,
सुकृतिको बीजबोय दुर्गतिसों डर रे।
अरे नर ऐसो होहि बार बार कहूं तोहि,
नहिं तो सिधार तूं निगोद तेरो घर रे ॥ २ ॥

३१ मात्रा सवैया छन्द।

आलश त्याग जाग नर चेतन, बल सँभार मत करहु विलंब।
इहां न सुख लवलेश जगतमहिं, निंब बिरषमैं लगै न अंब ॥
तातै तूं अंतर विपक्ष हर, कर विलक्ष निज अक्षकदंब।
गह गुन ज्ञान बैठ चारितरथ, देहु मोष मग सन्मुख बंब ॥३॥

मालिनी।

अभजदजितदेवाचार्यपट्टोदयाद्रि-
द्युमणिविजयसिंहाचार्यपादारविन्दे।

मधुकरसमतां यस्तेन सोमप्रभेण

व्यरचि मुनिपनेत्रा सूक्तिमुक्तावलीयम् ॥ ९९ ॥

कवित्त छन्द ।

जैन वंश सर हंस दिगम्बर; मुनिपति अजितदेव अति आरज ।
ताके पद वादीमदभंजन; प्रघटे विजयसेन आचारज ॥
ताके पट्ट भये सोमप्रभ; तिन ये ग्रन्थ कियो हित कारज ।
जाके पढत सुनत अवधारत, हैं सुपुरुष जे पुरुष अनारज॥९९॥

इन्द्रवज्रा ।

सोमप्रभाचार्यमभा च लोके वस्तु प्रकाशं कुरुते यथाशु ।
तथायमुच्चैरुपदेशलेशः शुभोत्सवज्ञानगुणांस्तनोति ॥१००॥

भाषाग्रन्थकर्त्ताकी ओरसे नामादि.

दोहा छंद ।

नाम सूक्तिमुक्तावली; द्वाविंशति अधिकार ।
शत श्लोक परमान सब; इति ग्रन्थविस्तार ॥ १ ॥
कुँवरपाल बानारसी; मित्र जुगल इकचित्त ।
तिनहिं ग्रन्थ भाषा कियो; बहुविधि छन्द कवित्त ॥ २ ॥
सोलहसै इक्यानवे; ऋतु ग्रीषम वैशाख ।
सोमवार एकादशी; करनछत्र सित पाख ॥ ३ ॥

इति श्रीसोमप्रभाचार्यविरचिता सिन्दूरप्रकरापरपर्याया सूक्तिमुक्तावली भाषाछन्दानुवादसहिता समाप्ता ।

---

१ इस श्लोकका भाषा छंद भी नहिं मिला.

श्रीः

अथ ज्ञानबावनी.

घनाक्षरी।

ओंकार शवद विशद याके उभयरूप,
एक आतमीक भाव एक पुदगलको ।
शुद्धता स्वभावलिये उठ्यो राय चिदानंद,
अशुद्ध विभाव लै प्रभाव जड़वलको ॥
त्रिगुण त्रिकाल तातैं व्यय ध्रुव उतपात,
ज्ञाताको सुहात वात नहीं लाग खलको ।
वानारसीदासजूके हृदय ओंकारवास,
जैसो परकाश शशि पक्षके शुकलको ॥ १ ॥
निरमल ज्ञानके प्रकार पंच नरलोक,
तामें श्रुतज्ञान परधान कर पायो है ।
ताके मूल दोय रूप अक्षर अनक्षरमें,
अनक्षर अग्र पिंड सैनमें वतायो है ॥
वावन वरण जाके असंख्यात सन्निपात,
तिनिमें नृप ओंकार सज्जनसुहायो है ।
वानारसी दास अंग द्वादश विचार यामें,
ऐसे ओंकार कंठ पाठ तोहि आयो है ॥ २ ॥
महामंत्र गायत्री के मुख ब्रह्मरूप मंड्यो,
आतम प्रदेश कोई परम प्रकाश है ।

तापर अशोक वृक्ष छत्रध्वज चामर सो,
पवन अगनि जल वसै एक वास है ॥
सारीके अकार तामें रुद्र रूप चितवत,
महातम महाव्रत तामें बहु भास है ।
ऐसो ओंकारको अमूल चूल मूलरस,
बानारसीदासजूके वदन विलास है ॥ ३ ॥
सिद्धरूप शिवरूप भेष अवसेषरूप,
नररूप न्यायरूप विधिरूप आतमा ।
गुणरूप ज्ञानरूप ज्ञायक गंभीररूप,
भोगरूप भोगीरूप सरस सुहातमा ॥
एकरूप आदिरूप अगम अनादिरूप,
असंख्य अनंतरूप जातिरूप जातमा ।
बानारसीदास द्रव्यपूजा व्यवहाररूप,
शुद्धता स्वभावरूप यहै शुद्ध आतमा ॥ ४ ॥
धुंधवाउ ह्वै भयो शुद्धता विसरि गयो,
परगुणरंग रच्यो पर ही को रुखिया ।
निजनिधि निकट विकट भई नैन विन,
क्षणकमें सुखी तामें क्षणकमें दुखिया ॥
समकित जल विना त्रषित अनादि काल,
विषय कषायवह्नि अरणमें धुखिया ।
बानारसीदास जिन रीति विपरीति जाके,
मेरे जानें ते तो नर मूढ़नमें मुखिया ॥ ५ ॥

अनुभवज्ञानतें निदान आनमान छूट्यो,
सरधानवान वानै छहों द्रव्यकरसैं।
करम उपाधि रोग लोग जोग भोग रातै,
भोगी त्रिया योगी करामातहूको तरसैं॥

दुर्गति विपाद न उछाह सुर भौनवास,
समता सुक्षिति आतमीक मेघ वरसैं।
वानारसीदासजूके वदन रसन रस,
ऐसे रसरसिया ते अरसको परसैं॥ ६॥

आवरण समल विमल भयो ताके तुलैं,
मोह आदि हने काहु काल गुनकसिया।
लीन भयो लवलागी मगन विभावत्यागी,
ज्योतिके उदोत होत निज गुण परसिया॥

वानारसीदास निज आतम प्रकाश भये,
आवैं ते न जाहिं एक ऐसे वासवसिया।
अरस परस दस आदि हीं अनन्त जन्तु,
सुरससवादराचे सोई साँचो रसिया॥ ७॥

इस ही सुरसके सवादी भये ते तो सुनौ,
तीर्थंकरचक्रवर्ति शैली अध्यातमकी।
वल वासुदेव प्रति वासुदेव विद्याधर,
चारणमुनिन्द्र इन्द्र छेदी बुद्धि भ्रमकी॥

---

१ स्वभाव. २ आकर्षण करै.

अट्ठावीस लवधिके विविध सधैया साधु,
सिद्धिगति भये कीन्हीं सुगम अगमकी ।
वानारसीदास ऐसो अमीकुंडपिंड पायो,
तहांलों पहुंच कालक्रमकी न जमकी ॥ ८ ॥

इतर निगोदमें विभाव ताके वहुरूप,
तामें हू स्वभाव ताको एक अंश आवै है ।
वहै अंश तेजपुंज वादर अगनि जैसें,
एकतें अनेक रस रसना वढ़ावै है ॥
आगें जोर वढ्यो घ्राण चक्षु श्रोत्र नरदेह,
देह देही भिन्न दीखे भिन्नता ही भावै है ।
वानारसीदास निजज्ञानको प्रकाश भयो,
शुद्धतामें वास किये सिद्धपद पावै है ॥ ९ ॥

उदै भयो भानु कोऊ पंथी उठ्यो पंथकाज,
कहै नैनतेज थोरो दीप कर चहिये ।
कोऊ कोटीध्वज नृप छत्रछांह पुरतज,
ताहि हौंस भई जाय ग्रामवास रहिये ॥
मंगल प्रचंड तज काहू ऐसी इच्छा भई,
एक खर निज असवारी काज चाहिये ।
वानारसीदास जिनवचन प्रकाश सुन,
और वैन सुन्यो चाहै तासों ऐसी कहिये ॥१०॥

ऊंचे वंशकी बड़ाई भीतपनों प्रीतिताँई,
गुण गरवाई पिहुलाई घनो फेर है।
वचन विलासको निवास वन सघनाई,
चतुर नागर नर सुरनको घेर है॥
कीरति सराहको प्रवाह बहै महानदी,
एतो देश उपमा है सबै जग जेर है।
हेरि हेरि देख्यो कोऊ और न अनेरो ऐसो,
बानारसीदास वसुधामें गिरि मेर है॥ ११॥

रीति विपरीति रंग राच्यो परगुण रस,
छायो झूठे भ्रम तातें छूटी निधि घरकी।
तेरे घर ऋद्धि है अनंत आपरंग आये,
नेकु जो गरूरी फेरे हाय होय हरकी॥
कायके उपायसेती एती हौंस पूरे भले,
निजक्रियारूठे सेती हौंस पूजे नरकी।
बानारसीदास कहै मूढ़को विचार यह,
कोटीध्वज भयो चाहै आस करै परकी॥ १२॥

ऋतु वरसात नदी नाले सर जोरचढे,
बढै नाहिं मरजाद सागरके फैलकी।
नीरके प्रवाह तृण काठवृन्द बहे जात,
चित्रावेल आइ चढ़ै नाहीं काहू गैलकी॥

बानारसीदास ऐसे पंचनके परपंच,
रंचक न संच आवै वीर बुद्धि छैलकी ।
कछु न अनीत न क्यों प्रीति परगुणसेती,
ऐसी रीति विपरीत अध्यातमशैलकी ॥ १३ ॥

स्वरूपातीत लागी पुण्यपाप भ्रांति भागी,
सहज स्वभाव मोहसेनाबल भेदकी ।
ज्ञानकी लवधि पाई आतमलवधि आई,
तेज पुंज कांति जागी उमग अनन्दकी ॥
राहुके विमान वढें कला प्रगटत पूर,
होत जगाजोत जैसें पूनमके चंदकी ।
बानारसीदास ऐसे आठ कर्म भ्रमभेद,
सकति संभाल देखी राजा चिदानंदकी ॥ १४ ॥

लिखतपढ़त ठाम ठाम लोक लक्षकोटि,
ऐसो पाठ पढ़े कछू ज्ञान हू न बढ़िये ।
मिथ्यामती पचि पचि शास्त्रके समूह पढ़े,
बंधीकलवाजे पशुचामढोल मढ़िये ॥
दीपक संजोय दीनो चक्षुहीन ताके कर,
विकट पहार वापैं कबहूं न चढ़िये ।
बानारसीदास सो तो ज्ञानके प्रकाश भये,
लिख्यो कहा पढ़ै कछू लख्यो है सो पढ़िये ॥१५॥

एक मृतपिण्ड जैसें जलके संयोग छते,
भाजन विशेष कोट क्षणकमें खेद है।
तैसें कर्मनीरचिदानन्दकी प्रणति दीखै,
नरनारी नपुंसक त्रिविध सुवेद है॥
वानारसीदास अब वाको धूप याको तप,
छूटंत संयोग ये उपाधिनको छेद है।
पुग्गलके परचै विशेष जीव भेद भये,
पुग्गल प्रसंग विना आतम अभेद है॥ १६॥
ये ही ज्ञान सवद सुनत सुर ताहि सुन,
षटरस स्वाद मानै तू तो ताहि मान रे।
पिंड विरह्मंडकी खवर खोजै ताहि खोज,
परगुण निज गुण जानै ताहि जान रे॥
विषय कषायके विलास मंडै ताहि छंड,
अमल अखंड ऋद्धि आनें ताहि आन रे।
वानारसीदास ज्ञाता होय सोई जानै यह,
मेरे मीत ऐसी रीत चित्त सुधि ठान रे॥ १७॥
उद्यम करत नर स्वारथके काज सब,
स्वारथके उद्यमको है रह्यो बहर सो।
स्वारथको भजै निरस्वारथको तज रह्यो,
शहरको वन जानै वनको शहर सो॥

१ 'छूटत' ऐसा भी पाठ है.

स्वारथ भलो है जो तू स्वारथको पहिचानै,
स्वारथ पिछाने विन स्वारथ जहर सो ।
वानारसीदास ऐसे स्वारथके रंगराचे,
लोकनके स्वारथको लागत कहर सो ॥ १८ ॥

उलट पलट नट खेलत मिलत लोक,
याके उलटत भव एक तान ह्वै रह्यो ।
अज हूं न ठाम आवै विकथा श्रवण भावै,
महामोह निद्रामें अनादि काल स्वैरह्यो ॥
वानारसीदास जागे जागै तासों बनि आवै,
जिनवर उकति अमृत रस च्वैरह्यो ।
उलटि जो खेलै तो तो ख्याल सो उठाय धरै,
उलटिके खेले विन खोटे ख्याल है रह्यो ॥ १९ ॥

कौन काज मुगध करत बध दीनपशु,
जागी ना अगमज्योति कैसो जज्ञ करि है ।
कौन काज सरिता समुद्र सरजल डोहै,
आतम अमल डोह्यो अजहूं न डरि है ॥
काहे परिणाम संकलेश रूप करै जीव !
पुण्यपाप भेद किये कहुं न उधरि है ।
वानारसीदास जिन उकति अमृत रस,
सोई ज्ञान सुनै तू अनंत भव तरि है ॥ २० ॥

खेलत अनन्तकाल भये पै न खेद पावै,
तीन सौ तेताल राजू मापकी तलकमें ।
केई स्वांग धर खेले वरष असंख्य कोटि
केई स्वांग फेर लावै पलक पलकमें ॥
खेलैं जेते जन्तु तातें खेलने अनन्त गुणें,
बानारसीदास जानै ज्योतिकी झलकमें ।
खेले तें बहुत ख्याल देखे तें अलप जन्तु,
देखे ते भी खेल बैठे ख्याल है खलकमें ॥२१॥

गुरुमुख तुवक सुवक भरे श्रुत सोर,
कालकी लबधि कलचंपी दरम्यानकी ।
जामकी अगमबुद्धि जोग उपजोग शुद्धि,
रंजकअरथ ज्वाला लागी शुभ ध्यानकी ॥
इत ज्ञातादल उत मोहसेना आई वन,
बानारसीदास जू कुमक लीजो न्यानकी ।
जीवै न अवश्य जाके बन्दूककी गोली लागै,
जागै न मिथ्यात जोपै गोली लागै ज्ञानकी ॥२२॥

घटमें विघट घाट उलट ऊरधवाट,
परगुण साधै ते अनन्त काल तंथको ।
सुषुमना आदि इला पिंगलाकी सोंज भई,
षटचक्रवेधी गण जीत्यो मनमंथको ॥

सुलट्यो है कमल बनारसी विशेष ताको,
सुविवेकी इच्छा भई जिनमत ग्रन्थको ।
ऐसे ही जुगति पाय जोगी जोग निधि साधै,
जोगनिधि साधै तो सिधावै सिद्धपंथको ॥ २३ ॥

नीच मतिहीन कहे सो तो न व्है केवलीपैं,
कहै कर्महीन सो तो सिद्ध परमितको ।
धियागारी धरें धिया सारसुत ऐसी धरी,
मेघाके मिलापसों मथन निज चितको ॥

मूरख कहैं ते साधें परम अवधिवार,
तहां न विचार कछु हित अनहितको ।
बानारसीदास तोसो निज ज्ञान गेह आये,
लोगनकी गारी सो सिंगार समकितको ॥ २४ ॥

चंचलता बाला वैस भौंरी दै दै भूमि फिरै,
घर तरु भूमि देखै घूमत भरमतें ।
यों ही पर योगपरणतिसेती परबंध,
औदयिक भाव मूढ़ पावे ना मरमतें ॥

निजकृत मानै तातें घटनि विशेष मानै,
बढ़ै परजाय याही कठिन करमतें ।
बानारसीदास ऐसे विकल विभाव छूटें,
बुद्धि विसराम पावै स्वभाव धरमतें ॥ २५ ॥

छत्रधार बैठो घने लोगनकी भीरभार,
दीखत स्वरूप सुसनेहिनीसी नारी है ।
सेना चारि साजिके विरानें देश दोही फेरी,
फेरसार करें मानो चौपर पसारी है ॥
कहत बनारसी बजाय धौंसा बारबार,
रागरस राच्यो दिन चारहीकी बारी है ।
खुल्यो ना खजानो न खजानचीको खोजपायो,
राज खसि जायगो खजाने विन ख्वारी है ॥ २६ ॥

जागो राय चेतन सहज दल जुरि आये,
मुरे कर्मरिपुभाव मनमें उमाहवी ।
सरहद भई याकी लोकालोक परिमाण,
इन्द्रचन्द्र चितवत चोपकर चाहवी ॥
वानारसीदासज्ञाता ज्ञान सेना बनि आई,
आदि छतं अन्त विन ऐसी ही निवाहवी ।
खजानची शुभध्यान ज्ञानको खजानो पूरो,
सूरो आप साहिव सुथिर ऐसी साहिवी ॥ २७ ॥

झाग उठें वामें यामें क्रोधफेन फैलि रहे,
त्रिवलतरंगरंग दुहूंनमें आवना ।
वामें तृणकाठ धनधान्यपरिग्रह यामें,
वामें मलपंक याहि बंधद्रोह भावना ॥

बानारसीदास वामें आकृति अनेक उठें,
यहां कुलकोड योनि जाति दोष लावना।
बह्यो जात जल तामें येते कविभाव उठें,
आतमा बहिर तामें कहाँते स्वभावना ॥ २८ ॥

निजकाज सबहीको अध्यातम शैली मांझ,
मूढ क्यों न खोज देखै खोज औरवानमें।
सदा यह लोकरीति सुनी है बनारसीजू,
वचनप्रशाद नैकु ज्ञानीनके कानमें ॥

चेरी जैसें मलिमलि धोवत विराने पांव,
परमनरंजिवेको सांझ ओ विहानमें।
निजपांव क्यो न धोवै? कोई सखी ऐसो कहै,
मो सी कोऊ आलसन और न जहानमें ॥ २९ ॥

टेककरि मूरखविरानें घर टिक रह्यो,
जानै मेरे यही घर मैं भी याही घरको।
घर परमारथ न जानै तातैं भ्रमघेरो,
ठौर विना और ठौर अधर पधरको ॥

पंचको भखायो कहै परपंच बंचद्रोह,
संग्रह समूह कियो सो तो पिंड परको।
बानारसीदास ज्ञातावृन्दमें विचार देख्यो,
परावर्त्तपूरणी जनम ऐसे नरको ॥ ३० ॥

टांव मृगमद मृग नाभि पुद्गलगुन,
  विसतर्‍यो पौनतैं विशेष ढूंढै वनमें।
साहिबके काज मूढ़ अटत अनेक ठौर,
  तनको जो भिन्न मानै तो तो तेरे तनमें ॥
कंठमाहिं मणि कोऊ मूरख विसरि गयो,
  सो तो उपखानों सांचो भयो दीन जनमें।
वानारसीदास जिहँ काजको जगत फिरै,
  सो तो काज सरै तेरे एक ही वचनमें ॥ ३१ ॥
झूल्यो तू निगोद कोऊ काल पाय डाँकि आयो,
  प्रत्येक शरीर पंच थावरमें तें धर्‍यो।
पुनि विकलिंदी इंदी पंच परकार चार,
  नरक तिर्यंच देव, पुनि पुनि संचर्‍यो ॥
वानारसीदास अब नरभव कर्म भूमि,
  गंठिभेद कीन्हों मोक्षमारगमें पै धर्‍यो।
चेतरे चतुर नर अज हूं तू क्यों न चेतै?
  इस अवतार आयो एते घाट उतर्‍यो ॥ ३२ ॥
ढूंढै लौण सागरमें नेक हू न ढील करै,
  क्षारजल बसै वाके क्षारजल पै नहीं।
सीतवदासीताहरिकान्तारक्ताश्रोतस्वाद,
  स्वादी होय सोई स्वादै कोई काहू दै नहीं ॥

सुभरि विभावसिंधु समता स्वभावस्रोत,
बानारसी लाभै ताको भ्रमणको भै नहीं।
संगी मच्छ सारिखो स्वभावज्ञाता गहि राख्यो,
राख्यो सोई जानै भैया कहवेको है नहीं ॥ ३३ ॥

नैननतैं अगम अगम याही वैननतें,
उलट पलट वहै कालकूट कहरी।
मूल बिन पाये मूढ कैसें जोग साधि आवै,
सहज समाधिकी अगम गति गहरी॥
अध्यातम सुन्यो तो पै सरधान है न आवै,
तौ तौ भैया तैं तो वडी राजनीति चहरी।
बानारसीदास ज्ञाता जापै सबै सोई जाने,
उदधि उधानतें अधिक मनलहरी ॥ ३४ ॥

तत्त्व निजकाज कह्यो सत्त्व परगुण गह्यो,
मनकी लहर मानों डसें नाग कारेसे।
छिनकमें तपी छिन जपी ह्वैके जापजपै,
छिनकमें भोगी छिन जोग परजारेसे॥
बानारसीदास एतो पूर्वकृत बंध ताके,
औदयिक भाव तेई आपो कर धारेसे।
जब लग मत्त तौलों तत्त्वकी पहुंच नाहीं,
तत्त्व पायें मूढमती लागें मतवारेसे ॥ ३५ ॥

थिर थंभ उपल विपुल ज्योति सरतीर,
सत्ता आये आपनी न कोऊ काके दलको।
भासै प्रतिबिम्ब अम्बु वायुसों अनेक फल,
धूलतो सो दीखै पै न धूजै थंभ थलको॥
जाकी दृष्टि पुग्गलसों चेतन न भिन्न चितै,
आचरण देखै सरधान न विमलको।
वानारसीदास ज्ञान आतम सुथिर गुण,
डोलै परजाय सो विकार कर्मजलको॥ ३६॥

द्रव्यथकी दोउनकी सरहद देहमात्र,
भावथकी लोकपरिमाण वाकी इथिना।
भाव सरहद याकी अलोकतैं अधिकाई,
ये तो शुभ काजकारी वातैं कछू सिधि ना॥
याके तो अभेद ऋद्धि अमल अखंड पूर,
वाके सेना परदल कछू निज रिधि ना।
वानारसीदास दोउ मांहि देखी दुनियामें,
एक दिसि तेरी विधि एक दिसि विधिना॥३७॥

धर्मदेव नरको वचन जैसो गिरिराज,
मिथ्याती वचन शुद्धारथको पटंतरो।
पारस पाषाण जैसें जाति एक जेतो भेद,
मूरख दरश जैसें दरश महंतरो॥

१ महन्तको.

वानारसीदास कंकसार अन्यसार जैसें,
जनमको द्यौस जैसो द्यौस मरणंतरो ।
अध्यातम शैली अन्य शैलीको विचार तैसो,
ज्ञाताकी सुदृष्टिमाहिं लागै एतो अंतरो ॥ ३८ ॥

नरभव पाय पाय बहु भूमि धाय धाय,
पर गुण गाय गाय बहु देह धारी है ।
नरभव पीछें देह नरक अनेक भव,
फिर नर देव नर असंख्यात बारी है ॥
एक देवभव पीछें तिर्यंच अनंत भव,
वानारसी संसारनिवास दुःखकारी है ।
क्षायक सुमतिपाय मोह सेना बिछुराय,
अब चिदानंदराय शकति सँभारी है ॥ ३९ ॥

पामर वरण शूद्र वास तब देह बुद्धि,
अशुभको काज ताहि तातैं बड़ी लाज है ।
वैश्यको विचार वाके कछू करतूति फेर,
वैश्य वास वसै तौलौं नाहिं जोगराज है ॥
क्षत्री शुद्ध परचंड जैतवार काज जाके,
वानारसीदास ब्रह्म अगम अगाज है ।
जैसे वास वसै लोय तामें तैसी बुद्धि होय,
जैसी बुद्धि तैसी क्रिया क्रिया तैसो काज है ४०

फटिक पाषाण ताहि मोतीकर मानैं कोऊ,
घुंघची रकत कहा रतन समान है।
हंस बक सेत इहां सेतको न हेत कछू,
रोरी पीरी भई कहा कंचनके वान हैं॥
भेष भगवानके समान कोऊ आन भयो,
मुद्राको मंडान कहा मोक्षको सुथान है।
बानारसीदास ज्ञाता ज्ञानमें विचार देखो,
काय जोग कैसो होउ गुण परधान है॥ ४१॥

वेदपाठवाले ब्रह्म कहैं पै विचार विना;
शिव कोई भिन्न जान शैव गुणगावहीं।
जैनी पर जतन जतन निजभिन्न जान,
बानारसी कहै चारवाक घुंघवावहीं॥
बौद्ध कहैं बुद्ध रूप काहू एक देशवसै,
न्यायके करनहार ऊरध बतावहीं।
छहों दरशनमाहिं छतो आहि छिपि रह्यो,
छूट्यो न मिथ्यात तातैं प्रगट न पावहीं॥ ४२॥

भेषधर कोटिक नच्यो है लखचौरासीमें,
विना गुरुज्ञान वरतै न विवसावमें।
गुरु भगवान तूही भगवानभ्रान्ति छूटै,
भ्रान्तिसे सुगुरुभापै जैसें खीर तावमें॥

वानारसीदास ज्ञाता भगवानभेद पायो,
भयो है उछाह तेरे वचन कहावमें ।
भेषधार कहै भैया भेषहीमें भगवान,
भेषमें न भगवान भगवान भावमें ॥ ४३ ॥
मोक्ष चलिवेको पंथ भूले पंथ पथिक ज्यों,
पंथबलहीन ताहि सुखरथ सारसी ।
सहजसमाधि जोग साधिवेको रंगभूमि,
परम अगम पद पढिवेको पारसी ॥
भवसिन्धु तारिवेको शवद धरै है पोत,
ज्ञानघाट पाये श्रुतलंगर लैझारसी ।
समकित नैननिको याके बैन अंजनसे,
आतमा निहारिवेको आरसी बनारसी ॥ ४४ ॥
जिनवाणी दुग्धमाहिं विजया सुमतिडार,
निजस्वाद कंदवृन्द चहलपहलमें ।
विवेक विचार उपचार ए कसूंभो कीन्हों,
मिथ्या[1]सोफी मिटि गये ज्ञानकी गहलमें ॥
सीरनी शुकलध्यान अनहद नाद तान,
गान गुणमान करै सुजस सहलमें ।
वानारसीदास मध्यनायक सभासमूह,
अध्यातमशैली चली मोक्षके महलमें ॥ ४५ ॥

[1] मिथ्यात्वरूपी नशे.

रसातल तलें पंच गोलक अनन्त जंतु;
तामें दोऊ राशि अन्तरहित सरूप है।
कटुक मधुर जौलों अगनित भिन्नताई;
चिक्कणताभाव एक जैसें तेलरूप है॥
जैसें कोऊ जात अंध चौइन्द्री न कहियत,
द्रव्यको विचार मूढभावको निरूप है।
वानारसीदास प्रभु वीर जिन ऐसो कह्यो,
आतम अभव्य भैया सोऊ सिद्धरूप है॥ ४६॥

लक्षकोट जोरिजोरि कंचन अंबार कियो,
करता मैं याको ये तो करै मेरी शोभ को।
धामधन भरो मेरे और तो न काम कछू,
सुख विसराम सो न पावें कहूं शोभको॥
ऐसो बलवंत देख मोह नृप खुशी भयो,
सैनापति थाप्यो जैसे अहंभार गोमको।
वानारसीदास ज्ञाता ज्ञानमें विचार देख्यो,
लोगनको लोभ लाग्यो लागे लोग लोभको४७

बावनवरण ये ही पढ़त वरण चारि,
काहू पढ़ें ज्ञान बढ़ै काहू दुख द्वंदजू।
वरण भंडार पंच वरण रतनसार,
और ही भंडार भाववरण सुछंदजू॥

वरणतें भिन्नता सुवरणमें भतिभासै,
सुगुण सुनत ताहि होत है अनंद जू ।
वानारसीदास जिनवाणी वरणन कियो,
तेरी वाणी वरणाव करै वड़े वृन्द जू ॥ ४८ ॥

शकवंधी सांचो शिरीमाल जिनदास सुन्यो;
ताके वंश मूलदास विरद वढ़ायो है ।
ताके वंश क्षितिमें प्रगट भयो खड्गसेन,
वानारसीदास ताके अवतार आयो है ॥
वीहोलिया गोत गर वतन उद्योत भयो,
आगरेनगर ताहि भेंटे सुखपायो है ।
'वानारसी' 'वानारसी' खलक वखान करै,
ताको वंश नाम ठाम गाम गुण गायो है ॥४९॥

खुशी हैके मन्दिर कपूरचन्द साहु वैठे,
वैठे कौंरपाल सभा जुरी मनभावनी ।
वानारसीदासजूके वचनकी बात चली,
याकी कथा ऐसी ज्ञाताज्ञानमनलावनी ॥
गुणवंत पुरुषके गुण कीरतन कीजे,
पीतांवर मीति करी सज्जन सुहावनी ।
वही अधिकार आयो ऊंघते विछोना पायो,
हुकम मसादतें भयी है ज्ञानवावनी ॥ ५० ॥

सोलह सो छियासीये संवत कुंवारमास,
पक्ष उजियारे चन्द्र चढ़वेको चाव है।
बिजैदशी दिन आयो शुद्ध परकाश पायो,
उत्तरा आषाढ़ उडुगन यहै दाव है॥
बानारसीदास गुणयोग है शुकलवाना,
पौरिषप्रधान गिरि करण कहाव है।
एक तो अरथ शुभ महूरत वरणाव,
दूसरे अरथ यामें दूजो वरणाव है॥ ५१॥
हेतवंत जेते ताको सहज उदारचित्त,
आगें कहों एतो वरदान मोहि दीजियो।
उत्तम पुरुष शिरीबानारसीदास यश,
पन्नगस्वभाव एक ध्यानसों सुनीजियो॥
पवनस्वभाव विसतार कीज्यो देशदेश,
भ्रमर स्वभाव निज स्वाद रस पीजियो।
बावन कवित्त ये तो मेरी मतिमान भये,
हंसके स्वभाव ज्ञाता गुण गहलीजियो॥ ५२॥

इति श्रीबानारसी नामाङ्कित ज्ञानबावनी।

---

१ नक्षत्र.

अथ वेदनिर्णयपंचासिका.

चूडामणि छन्द[1]।

जगतविलोचन जगतहित, जगतारण जग जाना।
वन्दहुं जगचूडामणी, जगनायक परधाना॥
नमहुं ऋपभस्वामीप्रमुख, जिनचौवीस महन्ता।
गुरूचरण चितराख मुख, कहूं वेदविरतन्ता॥ १॥

मनहरण। (खड़ीबोली)

केवलीकथितवेद अन्तर गुपत भये,
जिनके शवदमें अमृतरस चुवाहै।
अव ऋगुवेद यजुर्वेद शाम अथर्वण,
इनहींका परभाव जगतमें हुवा है॥
कहत वनारसी तथापि मैं कहूंगा कछु,
सही समझेंगे जिनका मिथ्यात मुवा है।
मतवारो मूरख न मानै उपदेश जैसे,
उलुवा न जाने किसिओर भानु उवा है॥ २॥

दोहा।

कहहुं वेदपंचासिका, जिनवानी परमान।
नर अजान जानैं नहीं, जो जाने सो जान॥ ३॥

---

१ अन्य कवियोंने इसे मुक्तामणि लिखा है, १३ और १२ के विश्राम से इसमें २५ मात्रा होती हैं. दोहाके अन्त लघुवर्णको गुरु करदेनेसे यह छन्द वन जाता है.

ब्रह्मानाम युगादिजिन, रूप चतुर्मुख धार ।
समवसरण मंडानमें, वेद वखानें चार ॥ ४ ॥

घनाक्षरी ।

प्रथम पुनीत प्रथमानुयोगवेद जामें,
त्रेसठशलाका महापुरुषोंकी कथा है ।
दूजो वेद करणानुयोग जाके गरभमें,
वरनी अनादि लोकालोक थिति जथा है ॥
चरणानुयोग वेद तीसरो प्रगट जामें,
मोखपंथकारण आचार सिंधु मथा है ।
चौथोवेद दरव्यानुयोग जामें दरवके,
षटभेद करम उछेद सरवथा है ॥ ५ ॥

प्रथमवेद यथाः—

षट्पद ।

तीर्थंकर चौवीस, काम चौवीस मनुजतन ।
जिनमाता जिनपिता, सकल ब्यालीसआठ गन ॥
चक्रवर्ति द्वादश प्रमान, एकादश शंकर ।
नव प्रतिहर नव वासुदेव, नव राम शुभंकर ॥
कुलकर महन्त चवदह पुरुष, नव नारद इत्यादि नर ।
इनको चरित्र अरु गुणकथन, प्रथमवेद यह भेद धर ॥६॥

द्वितीयवेद यथाः-

अगम अनंत अलोक, अकृत अनिमित अखंड सभ ।
असंख्यातपरदेश, पुरुषआकार लोक नभ ॥

ऊरध स्वर्ग अधो पताल, नरलोक मध्यमुव ।
दीप असंख्य उदधि, असंख मंडलाकार ध्रुव ॥
तिस मध्य अढ़ाई दीपलग, पंचमेरु सागर जुगम ।
यह मनुजक्षेत्र परिमाण छिति, सुरविद्याधरको सुगम ॥ ७ ॥

मनहरण ।

सोलह सुरग नवग्रीव नव नवोत्तर,
पंच पंचानुत्तर ऊपर सिद्धशिला है ।
ता ऊपर सिद्धक्षेत्र तहां हैं अनन्तसिद्ध,
एकमें अनेक कोऊ काहूसों न मिला है ॥
अधोलोक पातालकी रचना अनेकविधि,
नीचे सात नरकनिवास बहु बिला है ।
इत्यादि जगतथिति कही दूजेवेद माहिं,
सोई जीव मानें जिन मिथ्यात उगिला है ॥ ८ ॥

तृतीयवेद यथाः—

मिथ्याकरतूति नाखी सासादन रीति भाखी,
मिश्रगुणथानककी राखी मिश्र करनी ।
सम्यकवचन सार कह्यो नानापरकार,
श्रावकआचार गुन एकादश धरनी ॥
परमादीमुनिकी क्रिया कहीं अनेकरूप,
भारी मुनिराजकी क्रिया प्रमादहरनी ।
चारितकरण त्रिधा श्रेणिधारा दुविधा है,
एक दोषमुखी एक मोखमुखी वरनी ॥ १० ॥

चौपाई।

उपशम क्षिपक यथावत चारित।
परकृत अनुमोदनकृतकारित॥
द्विविधि त्रिविधि पनविधि आचारा।
तेरह विधि सत्रह परकारा॥ ११॥

दोहा।

वरनन संख्य असंख्यविधि, तिनके भेद अनंत।
सदाचार गुणकथन यह, तृतियवेद विरतंत॥ १२॥

चतुर्थवेद यथाः—रूपक घनाक्षरी.

जीव पुदगल धर्म, अधर्म्म आकाश काल,
येही छहों दरव, जगतके धरनहार।
एक एक दरवमें, अनंत अनंत गुन,
अनंत अनंत परजायके करनहार॥
एक एक दरवमें, शकति अनंत वसै,
कोऊ न जनम धरै कोऊ न मरनहार।
निह्चै निवेद कर्मभेद चौथेवेद माहिं,
वखानें सुगुरु मानै मोहको हरनहार॥ १३॥

चौपाई।

येही चारवेद जगमाहिं। सर्व ग्रन्थ इनकी परछाहिं॥
ज्यों ज्यों धरम भयो विच्छेद। त्यों त्यों गुप्त भये ये वेद १४

१ इस छन्दमें बत्तीसवर्ण लघु गुरुके नियमरहित होवे हैं, आठ, आठ आठ, आठ मिलाकर एक चरणमें ३२ वर्ण होते हैं अन्तमें नियमसे लघु होता है.

दोहा।

द्वादशांगवानी विमल, गर्भित चारों वेद।
ते किन कीन्हें कब भये, सो सब वरनों भेद॥ १५॥
युगलधर्म रचना कहों, कुलकर रीति बखान।
ऋषभदेव ब्रह्मा कथा, सुनहु भविक धर कान॥ १६॥

युगलधर्मयथा,—चौपाई।

प्रथमहिं जुगलधर्म है जैसा। गुरुपरसाद कहहुँ कछु तैसा॥
जन्महिं जुगलनारिनर दोऊ। भाई बहिन न मानै कोऊ॥१७॥

दोहा।

सुरसे सीरे सोमसे, बहुरागी बहुमित्र।
होहिं एकसे जुगल सब, कौतूहली विचित्र॥ १८॥

मनहरण।

सबहीके चित्त अतिसरलस्वभावी नित्त,
सबहीके थिरचित्त कोऊ न उतावलिया[1]।
हिये पुण्यरसपोष सहजसंतोष लिये,
गुननके कोष दुखदोषके उगलिया[2]॥
कोऊ नहिं लैरै कोऊ काहूको न धन हरै,
कोऊ कबहूं न करै काहूकी चुगलिया।
समतासहित संकलेशतारहित सब,
सुखिया सदीव ऐसे जीव हैं जुगलिया॥ १९॥

---

१ उतावल. २ उगलनेवाले. वमन करनेवाला.

भूपन नवीन वस्त्र मलहीन सबहीके,
घर घर निकट कलपतरुवाटिका।
नाहीं रागद्वेषभाव नाहीं बंधको बढ़ाव,
नाहीं रोग ताप न विलोकै कोऊ नाटिका॥
विविधपरिग्रह सबके घर देखिये पै,
काहूके न पोरि परद्वार न कपाटिका।
अलपअहारी सब मृदुतनधारी सब,
सुंदरअकारी सब ऐसी परिपाटिका॥ २०॥

दोहा।

घर घर नाटक होहिं नित, घर घर गीत सँगीत।
कबहूं कोउ न देखिये, बदनपीत भयभीत॥ २१॥

मनहरण।

जिनके अलप संकलप विकलप दोऊ,
थोरो सुखजलॅप अलपअहमेवता।
जिनके न कोऊ अरि दीरघ शरीर धरि,
त्रिपतिकी दशा धरै विपति न वेवता॥
जिनके विषै बढ़ाव पल्योपमतीनआव,
सबै नर राव कोऊ काहूको न सेवता।

१ मकानका आगेका भाग. २ किवाड़. ३ पीला. शोकान्छन्न मुख. ४ बोलना (मितभाषि). ५ अहंपना. ६ अनुनय करना. ७ तीन पल्यकी आयु.

ऐसे भद्रमानुप जुगलअवतारपाय,
करि करि भोग मरि मरि होंहिं देवता ॥ २२ ॥
जिनके जनम माँहिं मातपिता मर जाहिं,
व्यापै न वियोग दुख शोक नहिं धरना ।
अपने अँगूठाको अमृतरसपान कर,
जिनको अपनो तन वर्द्धमान करना ॥
अन्तकाल जिनको असातावेदनी न होय,
छींक आये अथवा जँभाई आये मरना ।
जिनको शरीर खिर जाय ज्यों कपूर उड़ै,
ऐसो जिनवानीमें जुगलधर्म वरना ॥ २३ ॥

चौपाई ।

जुगलधर्म जब लेय मरोरा । वाकी काल रहै कछु थोरा ॥
प्रगटहिं तहां चतुर्दशप्रानी । कुलकर नाम कहावैं ज्ञानी ॥२४॥
सब सुजान सबकी गति नीकी । सब शंका मेटहिं सबजीकी ।
होहिं विछिन्न कलपतरु ज्योंज्यों । कुलकर आगम भाषहिं त्योंत्यों ॥

दोहा ।

कह्यो सबनि भरि मरि जनम, हरि हरि भांति कहाव ।
धरि धरि तन मरि मरि गये, करि करि पूरण आव ॥२६॥
इहिविधि चवदह मनु भये, कछु कछु अन्तरकाल ।
तीन ज्ञान संयुक्त सब, मति श्रुति अवधि रसाल ॥२७॥

---

१ कुलकर. २ जीवोंकी.

चौपाई।

तेरह मनुके नाव जु आने। नाभिराय चौदहँ बखाने ॥
मरुदेवी तिनकी वरनारी। शीलवंत सुंदरि सुकुमारी॥ २८ ॥
ताके गर्भ भये अवतारी। ऋषभदेवजिन समकितधारी।
तीनज्ञान संयुक्त सुहाये। अगणित नाम जगतमें गाये ॥२९॥

ऋषभदेव कथनः—

दोहा।

ऋषभदेव जे जे दशा, धरीं किये जे काम।
ते ते पदगर्भित भये, प्रगट जगतमें नाम ॥ ३० ॥
जे ब्रह्माके नाम सब, जगतमाहिं विख्यात।
ते गुणसों करतूतिसों, ऋषभदेवकी बात ॥ ३१ ॥

चौपाई।

जनमत नाम भयो शुभवेला। आदिपुरुष अवतार अकेला ॥
मातापिता नाम जब राखा। ऋषभकुमार जगत सब भाखा ३२
नाभि नाम राजाके जाये। नाभिकमलउत्पन्न कहाये[1] ॥
इन्द्र नरेन्द्र करें जब सेवा। तब कहिये देवनको देवा ॥ ३३॥

---

[1] वैष्णव सम्प्रदायमें कल्पना की है कि श्रीकृष्णजीने जब पृथिवी चुराके पेटमें रखली, तब ब्रह्माजीने घबड़ाके इन्हें ढूंढा वटवृक्षके पत्तेपर सोतेहुये मिले, तब इनके पेटमें सन्देह किया. श्रीकृष्णजीने अपने पेटमें इन्हें घुस जाने दिया और फिर मुंह बंदकर निकलने नहीं दिया, तब ब्रह्माजी श्रीकृष्णकी नाभिमेंसे कमल उत्पन्न कर उसकी नालमें पृथिवीसहित निकले तबसे ब्रह्मा नाभिकमलउत्पन्न कहलाये.

जुगलरीति तज नीति उधरता । तातें कहैं सृष्टिके करता ॥
असिमसिकृपिवाणिजके दाता । ताकारण विधि नाम विधाता ॥
क्रियाविशेप रचीं जग जेती । जगत विरञ्चि कहैं प्रभु सेती ॥
जुगकी आदि प्रजा जब पालें । तब जग नाम प्रजापति आलें ३५

दोहा ।

कियो नृत्य काहू समय, नटी अप्सरा वाम ।
जगत कहै ब्रह्मा रचो, तिय तिलोत्तमा नाम ॥ ३६ ॥

चौपाई ।

गुरुविन भये महामुनि जब हीं । नाम स्वयंभू प्रगटो तबहीं ॥
ध्यानारूढ़ परमतप साधें । परमइष्ट कह जगत अराधें ॥३७॥
भरतखंडके प्राणी जेते । प्रजा भरतराजाके तेते ।
भरतनरेश ऋपभकी साखा । तातें लोक पितामह भाखा ३८
केवलज्ञानरूप जब होई । तब ब्रह्मा भाषै सब कोई ॥
कंचनगढ़गर्भित जग भासै । नाम हिरण्यगर्भ परकासै ॥३९॥

दोहा ।

कमलासनपर बैठिके । देहिं धर्म उपदेश ।
चमर छत्र लख जग कहै । कमलाशन लोकेश ॥ ४० ॥

चौपाई ।

आतमभूमि रूप दरसावै । तबहिं आतमभू नाम कहावै ॥
सकलजीवकी रक्षा भाखै । नाम सहस्रपातु जग राखै ॥४१॥

---

१ देते हैं. २ रचो अर्थात् मग्न हुआ.

समवसरनमहिं चौमुखि दीसै। चतुरानन कह जगत अधीसै ॥
अक्षरविना वेदधुनि भासै । रचना रच गणधर परगासै ४२
चारवेद कहिये तब सेती । द्वादशांगकी रचना एती ॥
जब धुनि धुनि अनंतता गहिये। तब प्रभु अनंतातमा कहिये ४३
आदिनाथआदीश्वर जोई । आदि अन्तविन कहिये सोई ॥
करै जगत इनहींकी पूजा । ये ही ब्रह्म और नहिं दूजा ४४
जबलों जीव मृगामग दौरै । तबलों जानै ब्रह्मा औरै ॥
जब समकित नैननसों सूझै । ब्रह्मा ऋषभदेव तब बूझै ४५

दोहा।

आदीश्वर ब्रह्मा भये, किये वेद जिन चार।
नामभेद मतभेदसों, बढी जगतमें रार ॥ ४६ ॥

ब्रह्मलोक कथनः—चौपाई।

और उक्ति मेरे मन आवै । सांचीबात सबनको भावै ॥
ब्रह्मा ब्रह्मलोकको वासी । सो वृत्तान्त कहों परकासी॥४७॥

कुंडलिया ।

ऊपर सब सुरलोकके, ब्रह्मलोक अभिराम ।
सो सरवारथसिद्धि तसु, पंचानुत्तर नाम ॥
पंचानुत्तर नाम, धाम एका अवतारी ।
तहां पूर्वभव बसे, ऋषभजिन समकितधारी ॥
ब्रह्मलोकसों चये, भये ब्रह्मा इहि भूपर ।
तातें लोक कहान, देव ब्रह्मा सब ऊपर ॥ ४८ ॥

चौपाई।

आदीश्वर युगादि शिवगामी। तीनलोकजनअंतरजामी॥
ऋषभदेव ब्रह्मा जगसाखी। जिन सब जैनधर्मविधि भाखी ४९
ऋषभदेवके अगनितनाऊं। कहौं कहां लौं पार न पाऊं॥
वे अगाध मेरी मति हीनी। तातैं कथा समापत कीनी॥ ५०॥

पट्पद।

इहिविधि ब्रह्मा भये, ऋषभदेवाधिदेव मुनि।
रूप चतुर्मुख धारि, करी जिन प्रगट वेदधुनि॥
तिनके नाम अनंत, ज्ञानगर्भित गुनगूझे।
मैं तेते वरणये, अरथ जिन जिनके बूझे॥
यह शब्दब्रह्मसागर अगम, परमब्रह्म गुणजलसहित।
किमि लहै बनारसि पार पद, नर विवेक भुजबलरहित॥५१॥

इति वेदनिर्णयपंचासिका.

अथ त्रेशठशलाकापुरुषोंकी नामावली.

वस्तुछन्द ।

नमो जिनवर नमो जिनवरदेव चौवीस ।
नरद्वादश चक्रधर, नव मुकुन्द नव प्रतिनारायण ।
नव हलधर सकल मिलि, प्रभु त्रेशट शिवपथपरायण ॥
ए महंत त्रिभुवनमुकुट, परमधरमधनधाम ।
ज्यों ज्यों अनुक्रम अवतरे, त्योंत्यों वरनौं नाम ॥ १ ॥

सोरठा ।

केई तद्भव सिद्ध, निकटभव्य केई पुरुष ।
मृपागंठि उरविद्ध, सुमति शलाकाधर सकल ॥ २ ॥

वस्तुछन्द ।

ऋषभजिनवर ऋषभजिनवर भरतचक्रीश ।
श्रीअजित जिनेश हुव, सगरचक्रि संभवतीर्थंकर ।
अभिनंदन सुमति जिन, पद्मप्रभ सुपास श्रीशंकर ॥
श्रीचन्द्रप्रभु सुविध जिन, शीतल जिन श्रेयांश ।
अश्वग्रीव प्रतिहर भयो, हलधर विजय सुवंश ॥ ३ ॥

सोरठा ।

हरि त्रिपृष्टि जिन राय, वासुपूज्य जिन द्वादशम ।
तारक प्रतिहरि वाय, हलधर अचल द्विपृष्टि हरि ॥ ४ ॥

वस्तुछन्द ।

विमल जिनवर विमल जिनवर मेरहं प्रतिविष्णु ।

---

१ मेरक.

वल धर्म[1] स्वयंभूहरि, जिन अनंत मधु[2] प्रतिदामोदर ।
वल सुप्रभ नाम हुव, पुरुषोत्तम हरि तासु सोदर[3] ॥
धर्म जिनेश निशुंभ प्रति, नारायण नरभेस ।
राम सुदर्शन नाम हुव, हरि नरसिंह नरेस ॥ ५ ॥

सोरठा ।

मघव[4]नाम चक्रेश, चक्री सनतकुमार हुव ।
चक्री शांति नरेश, भयहु शांति जित शांतिकर ॥ ६ ॥

वस्तुछन्द ।

कुंथु चक्री कुंथु चक्री, कुंथु सर्वज्ञ ।
अर सार्वभौम हुव, अर जिनेश प्रहलाद प्रतिहरि ।
वलभद्र सुनंदि हुव, पुंडरीक हरि बंधु तासु घर ॥
सार्वभौम सुभौम हुव, वलि प्रतिहरि अवतार ।
नन्दिमित्र वलदेव हित, केशव दत्त[5]कुमार ॥ ७ ॥

सोरठा ।

पदम चक्रि जिन मल्लि, विजयसेन पटखंडजित ।
मुनिसुव्रत हरि अल्लि, चक्रवर्ति हरिषेण हुव ॥ ८ ॥

वस्तुछन्द ।

भयहु रावण भयहु रावणनाम, प्रतिकृष्ण ।
रघुनन्दन राम हुव, वासुदेव लक्ष्मण गणिजै ।
नमि जिनवर नेमि जिन, जरासंध प्रतिहरि भणिजै ॥

---

१ धर्मप्रभ. २ मधुकैटभ. ३ सहोदर, भाई (हलधर) ४ मघवा. ५ देवदत्त. ६ जयसेन.

हलधर पदम मुरारि हरि, ब्रह्मदत्त चक्रीस ।
पास जिनेसुर वीर जिन, ये नर तीनंत्रिवीस ॥ ९ ॥

सोरठा ।

त्रिभुवनमाहिं उदार, त्रेशठ पद उत्कृष्ट जिय ।
भाविभूत उपचार, वन्दै चरण बनारसी ॥ १० ॥

तीर्थंकर नामावली—षट्पद ।

ऋषभ अजित संभव जिनंद, अभिनंद सुमति धर ।
श्रीपदमप्रभ श्रीसुपास, चन्द्रप्रभ जिनवर ॥
सुविधिनाथ शीतल श्रेयांसप्रभु वासुपूज्य वर ।
विमल अनन्त सुधर्म शांति जिन कुंथुनाथ अर ॥
प्रभु मल्लिनाथ त्रिभुवनतिलक, मुनिसुव्रत नमि नेमि नर ।
पारस जिनेश वीरेश पद, नमति बनारसी जोर कर ॥ ११ ॥

चक्रवर्तिनाम—दोहा ।

भरत सगर मघवा सनत,—कुँवर शांति कुंथेश ।
अर सुभौम पदमारुची, जय हर्षेण ब्रह्मेश ॥ १२ ॥

प्रतिनारायण नाम—दोहा ।

अश्वग्रीव तारक मधू, मेरु निशुंभ प्रहलाद ।
बलिराजा रावण जरा, सन्ध सुप्रतिहरिवाद ॥ १३ ॥

नारायणनाम—दोहा ।

त्रिपिष्ट द्विपिष्ट स्वयंभु पुरु,—षोत्तम नरसिंहेश ।
पुण्डरीक दत्ताधिपति, लछमण हरिमधुरेश ॥ १४ ॥

---

१ श्रीकृष्ण (२) ९०=२०+२०+६०+३=६३. ३ बलदेव. ४ श्रीकृष्ण.

वलभद्रनाम—दोहा।

विजय अचल वल धर्मधर, सुप्रभ सुदर्शन नाम।
सुनंदि नंदिमित्रेश रघु, नाथपदम नवराम ॥ १५ ॥

इति श्रीत्रेशठिशलाकापुरुषोंकी नामावली.

अथ मार्गणाविधान लिख्यते.

दोहा।

वन्दहुं देव जुगादिजिन, सुमरि सुगुरु मुखभाख।
चवदह मारगणा कहहुं, वरणहुं वासठ साख ॥ १ ॥

चौपाई।

संजम[1] भव्य[2] अहार[3] कषाय[4]। दरशन[5] ज्ञान[6] जोग[7] गति[8] काय[9] ॥
लेश्या[10] समकित[11] सैनी[12] वेद[13]। इन्द्रिय[14] सहितचतुदर्शभेद ॥ २ ॥
ए चौदह मारगणा सार। इनके वासठ भेद उदार ॥
वासठ संसारी जिय भाव। इनहिं उलंघि होय शिवराव ॥ ३ ॥
संजम सात भव्य द्वै भाय। द्विविधि अहारी चार कषाय ॥
दर्शन चार आठविधि ज्ञान। जोग तीन गति चारविधान ४
षट काया लेश्या षट होय। षट समकित सैनीविधि दोय ॥
वेद तीनविधि इन्द्रिय पंच। सकल ठीक गति वासठ संच ५
इनके नाम भेद विस्तार। वरणहुं जिनवानी अनुसार।
वासठरूप स्वांग धर जीव। करै नृत्य जगमाहिं सदीव ॥ ६ ॥

प्रथम असंजम रूप विशेष । देशसंजमी दूजो भेष ॥
तीजो सामायिक सुखधाम । चौथा छेदउथापन नाम ॥ ७ ॥
पंचम पद परिहारि विशुद्धि । सूक्षम सांपराय पट बुद्धि ॥
जथाख्यात चारित सातमा । सातों स्वांग धरै आतमा ॥ ८ ॥
भव्य अभव्य स्वांग धर दुधा । करै जीव जग नाटक मुधा ॥
अनहारक आहारी होय । नाचै जीव स्वांग धर दोय ॥ ९ ॥
कबहूं क्रोध अगनि लहलहै । कबहूं अष्ट महामद गहै ॥
कबहूं मायामयी सरूप । कबहूं मगन लोभ रसकूप ॥ १० ॥
चार कषाय चतुर्विध भेष । धर जिय नाटक करै विशेष ॥
कहूं चक्षुदर्शनसों लखै । कहुं अचक्षुदर्शनसों चखै ॥ ११ ॥
कहूं अवधि दर्शन सु प्रयुंज । कहूं सुकेवलदरशन पुंज ॥
धर दर्शन मारगणा चारि । नाटक नटै जीव संसारि ॥ १२ ॥
कुमतिज्ञान मिथ्यामति लीन । कुश्रुति कुआगममें परवीन ॥
धरै विभंगा अवधि अजान । सुमति ज्ञान समकित परवान १३
सुश्रुतिज्ञान परमागम सुणै । अवधि ज्ञान परमारथ मुणै ॥
मनपर्जय जानहि मनभेद । केवलज्ञान प्रगट सब वेद ॥१४॥
एही आठ ज्ञानके अंग । नचै जीव इनरूप रसंग ॥
मनोजोगमय होय कदाचि । बोलै वचन जोगसों राचि॥१५॥
कायजोगमय मगन स्वकीय । नाचै त्रिविधि जोग धर जीय॥
सुरगति पाय करै सुखभोग । समसुखदुख नरगति संजोग॥१६॥
बहुदुख अल्पसुखी तिरजंच । नरक महादुख है सुख रंच ॥
चहुंगति जन्मन मरण कलेस । नटै जीव नानारसभेस ॥१७॥

पृथिवी काय देह जिय धरै । अपकायिकमय है अवतरै ॥
अगनिकायमहिं तपत स्वभाय । वायुकायमहिं कहिये वाय॥१८॥

वनसपती रूपी दुखमूल । लहि त्रसकाय धरै तन थूल ॥
षटकाया षटविधि अवतार । धरि धरि मरै अनन्ती बार १९

धरै कृष्णलेश्या परिणाम । नीललेश्यमय आतमराम ॥
फिर धारै लेश्या कापोत । सहज पीतलेश्यामय होत ॥ २० ॥

चेतन पदमलेश्य परिवान । करै शुकललेश्या रसपान ॥
इहिविधि षट लेश्या पद पाय । जगवासी शुभ अशुभ कमाय २१

धर मिथ्यात्व झूठ सरदहै । वमि समकित सासादन गहै ॥
सत्य असत्य मिश्र समकाल । सीधे समकित क्षायक चाल २२

उपसम बोध धरै वहुवार । वेदै वेदकरूप विचार ॥
धर षट समकित स्वांग विधान । करै नृत्य जिय जान अजान २३

सैनीरूप असैनीरूप । दुविधिस्वांग जिय धरै अनूप ॥
पुरुषवेद तृण अगनि उछाह । त्रियवेदी कारीसादाह ॥ २४ ॥

वनदवदाह नपुंसकवेद । नटै जीव धर रूप त्रिभेद ॥
थावरमाहिं इकेन्द्री होय । त्रस संखादिक इन्द्रिय दोय॥२५॥

पिपीलिकादिक इन्द्री तीनि । चौरिन्द्रिय जिय भ्रमरादीनि ॥
पंचेन्द्री देवादिक देह । सब बासठि मारगणा एह ॥ २६ ॥

जावत जिय मारगणारूप । तावत्काल बसै भवकूप ॥
जब मारगणा मूल उछेद । तब शिव आपै आप अभेद॥२७॥

दोहा।

ये बासठ विधि जीवके, तनसम्बन्धी भाव।
तज तनबुद्धि बनारसी, कीजे मोक्ष उपाव ॥ २८ ॥

इति बासठ मार्गणा विधान.

अथ कर्मप्रकृतिविधान लिख्यते.

वस्तुछन्द।

परमशंकर परमशंकर, परमभगवान,
परब्रह्म अनादि शिव, अज अनंत गणपति विनायक।
परमेश्वर परमगुरु, परमपंथ उपदेशदायक ॥
इत्यादिक बहु नाम धर, जगतवंद्य जिनराज।
जिनके चरण बनारसी, वंदे निजहितकाज ॥ १ ॥

दोहा।

नमों केवलीके वचन, नमों आतमाराम।
कहों कर्मकी प्रकृति सब, भिन्न भिन्न पद नाम ॥ २ ॥

चौपाई. (१५ मात्रा)

एकहि करम आठविधि दीस। प्रकृति एकसौ अड़तालीस ॥
तिनके नाम भेद विस्तार। वरणहुं जिनवाणी अनुसार ॥ ३ ॥
प्रथमकर्म ज्ञानावरणीय। जिन सब जीव अज्ञानी कीय ॥
द्वितिय दर्शनावरण पहार। जाकी ओट अलख करतार॥४॥
तीजा कर्म वेदनी जान। तासों निराबाध गुणहान ॥
चौथा महामोह जिन भनै। जो समकित अरु चारित हनै॥५॥

पंचम आवकरम परधान। हनै शुद्ध अवगाहप्रमान ॥
छट्ठा नामकर्म विरतंत। करहि जीवको मूरतिवंत ॥ ६ ॥
गोत्र कर्म सातमों बखान। जासों ऊंच नीच कुल मान ॥
अष्टम अन्तराय विख्यात। करै अनन्तशकतिको घात ॥ ७ ॥

दोहा।

ए ही आठों करममल, इनमें गर्भित जीव।
इनहिं त्याग निर्म्मल भयो, सो शिवरूप सदीव ॥ ८ ॥

चौपाई।

कहो कर्मतरु डाल सरीस। प्रकृति एकसो अड़तालीस ॥
मतिज्ञानावरणी जो कर्म। सो आवरि राखै मतिधर्म ॥ ९ ॥
श्रुतिज्ञानावरणी बल जहां। शुभश्रुतज्ञान फुरै नहिं तहां ॥
अवधिज्ञानआवरण उदोत। जियको अवधिज्ञान नहिं होत १०
मनपरजयआवरण प्रमान। नहिं उपजै मनपर्जय ज्ञान ॥
केवलज्ञानावरणी कूप। तामहिं गर्भित केवलरूप ॥ ११ ॥

वरणी ज्ञानावरणकी, प्रकृति पंचपरकार।
अब दर्शन आवरण तरु, कहहुं तासु नव डार ॥ १२ ॥

चक्षुदर्शनावरणी बंध। जो जिय करै होहि सो अंध।
अचखुदर्शनावरण बंधेव। शबद फरस रस गंध न वेव॥१३॥
अवधिदर्शनावरण उदोत। विमल अवधिदर्शन नहिं होत ॥
केवलदर्शआवरण जहां। केवलदर्शन होय न तहां ॥१४॥
त्यानगृद्धि निद्रावश परै। सो प्राणी विशेप बलधरै ॥
उठि उठि चलै कहै कछु बात। करै प्रचंड कर्मउतपात॥१५॥

निद्रानिद्रा उदय स्वकीव । पलक उघार सकै नहिं जीव ॥
प्रचलाप्रचला जावतकाल । चंचल अंग वहै मुख लाल १६
निद्रा उदय जीव दुख भरै । उठ चालै बैठै गिरि परै ॥
रहै आंख प्रचलासों घुली । आधी मुद्रित आधी खुली १७
सोवतमाहिं सुरति कछु रहै । वारवार लघु निद्रा गहै ॥
इति दर्शनावरणि नवधार । कहों वेदनी द्वयपरकार ॥ १८ ॥

दोहा ।

साता करम उदोतसों, जीव विषयसुख वेद ।
करम असाताके उदय, जिय वेदै दुख खेद ॥ १९ ॥

चौपाई ।

अव मोहिनी दुविधिगुरुभनै । इक दरशन इक चारित हनै ॥
दर्शनमोह तीन विधि दीस । चारितमोह विधान पचीस २०
प्रथम मिथ्यातमोहकी दौर । जिय सरदहै औरकी और ॥
दूजी मिश्रमोहकी चाल । सत्य असत्य गहै समकाल ॥२१॥
समकितमोह तीसरी दशा । करै मलिन समकितकी रसा ॥
अव कषाय सोलहविधि कहों । नोकषाय नवविधि सरदहों २२
प्रथमकषाय कहावे कोप । जाके उदय छिमागुण लोप ।
द्वितियकषाय मान परचंड । विनय विनाश करै शतखंड ॥२३॥
तीजी मायारूप कषाय । जाके उदय सरलता जाय ॥
लोभकषाय चतुर्थमभेद । जासु उदय संतोष उछेद ॥ २४ ॥

दोहा।

ये ही चारकषाय मल, अनुक्रम सूक्षम थूल।
चारों कीजे चौगुने, चन्द्रकला समतूल[1] ॥ २५ ॥

अनन्तानुवंधीय कषाय। जाके उदय न समकित थाय॥
अप्रत्याख्यानिया उदोत। पंचमगुणथानक नहिं होत॥२६॥
प्रत्याख्यान कहावै सोय। जहां सर्वसंयम नहिं होय॥
सो संज्वलन नाम गुरु भनै। यथाख्यातचारित जो हनै २७
क्रोध मान माया अरु लोभ। चारों चारचारविधि शोभ॥
ए कषाय सोलह दुखधाम। अव नव नोकषायके नाम॥२८॥
रागद्वेषकी हांसी जोय। हास्यकषाय कहावै सोय॥
सुखमें मगन होय जिय जहां। रतिकषाय रस वरसै तहां२९
जहां जीवको कछु न सुहाय। तहां मानिये अरति कषाय॥
थरहर कंपै आतमराम। जामहिं सो कषाय भय नाम॥३०॥

रुदन विलाप वियोग दुख, जहां होय सो सोग।
जहां ग्लानि मन ऊपजै, सो दुर्गंछा रोग॥ ३१ ॥

नगर दाह सम परगट दीस। गुप्त पँजावा[2] अग्नि सरीस॥
महा कलुषता धरैं सदीव। वेद नपुंसकधारी जीव॥ ३२ ॥

अब वरनों तियवेदकी, रचना सुनि गुरु भाष।
कारीसाकीसी[3] अगनि, गर्भित छल अभिलाष॥ ३३ ॥

१ समतुल्य=बराबर. २ होय 'गुर्जर'. ३ अवा ईंट व खपरोंका.

ज्यों कारीसाकी अगनि, धुआँ न परगट होय ।
सुलग सुलग अन्तर दहै, रहै निरन्तर सोय ॥ ३४ ॥

त्यों वनितावेदी पुरुष, बोले मीठे बोल ।
बाहिर सब जग वश करै, भीतर कपटकलोल ॥ ३५ ॥

कपट लटपसों आपको, करै कुगतिके बंध ।
पाप पंथ उपदेश दे, करै औरको अंध ॥ ३६ ॥

आपा हत औरन हतै, वनितावेदी सोय ।
अब लक्षण ताके कहो, पुरुष वेद जो होय ॥ ३७ ॥

ज्यों तृण पूलाकी अगनि, दीखै शिखा उतंग ।
अल्परूप आलाप धर, अल्पकालमें भंग ॥ ३८ ॥

तैसैं पुरुषवेद धर जीव । धर्म कर्ममें रहै सदीव ॥
महामगन तप संजम माहिं । तन तावे तनको दुख नाहिं ॥ ३९ ॥
चित उदार उद्धत परिणाम । पुरुषवेद धर आतमराम ॥
तीन मिथ्यात पचीस कषाय । अट्ठाइस प्रकृति समुदाय ॥ ४० ॥
अब सुन आयु चार परकार । नर पशु देव नरक थिति धार ॥
मानुष आयु उदय नर भोग । लह तिरजंच आयु पशु जोग ॥ ४१ ॥
देव आयु सुरवर विख्यात । नरक आयुसों नरक निपात ॥
वरनी आयुकर्मकी बात । नामकर्म अब कहौं बखान ॥ ४२ ॥
पिंड प्रकृति चौदह परकार । अट्ठाइस अपिंड विस्तार ॥
पिंडभेद पैंसट परशन्न । मिलि तिराणवै होहिं समन्न ॥ ४३ ॥

ते तिराणवै कहूं वखान। पिंड अपिंड वियालिस जान ॥
प्रथमपिंड प्रकृती गतिनाम। सुर नर पशु नारक दुखधाम ॥ ४४

सोरठा।

सुरगतिसों सुर गेह, नरशरीर नरगति उदय।
पशुगतिसों पशुदेह, नरकवसावै नरक गति ॥ ४५ ॥

चौपाई।

चहुंगति आनुपूरवी चार। द्वितिय पिंड प्रकृती अवधार ॥
मरण समय तज देह सकीय। परभव गमन करै जब जीव ॥४६
आनुपूरवी प्रकृति पिरेरि। भावीगतिमें आनें घेरि ॥
आनपूरवी होय सहाय। गहै जीव नूतन परजाय ॥ ४७ ॥
तृतिय प्रकृति इन्द्रिय अधिकार। इग दुग तिग चदु पंच विचार॥
फरसरसन नासा दृग कान। जथाजोग जिय नाम वखान॥४८॥
तन इन्द्रिय धारै जो कोय। मुख नासा दृग कान न होय ॥
सो एकेन्द्रिय थावर काय। भू जल अगनि वनस्पति वाय॥४९॥
जाके तन रसना द्वय थोक। संख गिडोला जलचर जोक ॥
इत्यादिक जो जंगम जन्त। ते द्वै इंद्री कहै सिद्धन्त ॥ ५० ॥
जाके तन मुख नाक हजूर। घुन पिपीलिका कानखजूर ॥
इत्यादिक तेइन्द्रिय जीव। आंख कानसों रहत सदीव ॥ ५१ ॥
जाके तन रसना नाशा आंखि। विच्छु सलभ टीड अलि माखि॥
इत्यादिक जे आतमराम। ते जगमें चौइंद्री नाम ॥ ५२ ॥
देह रसन नासा दृग कान। जिनके ते पंचेद्री जान ॥
नर नारकी देव तिरजंच। इन चारहुके इन्द्री पंच ॥ ५३ ॥

चौथी प्रकृति शरीर विचार । औदारिक वैक्रियक अहार ॥
तैजस कार्माण मिल पंच । औदारिक मानुष तिरजंच ॥ ५४ ॥
वैक्रिय देव नारकी धरै । मुनि तपबल आहारक करै ॥
तैजस कार्माण तन दोय । इनको सदा धरै सबकोय ॥ ५५ ॥
जैसी उदय तथा तिन गही । चौथी पिंड प्रकृति यह कही ॥
अब बंधन संघातन दोय । प्रकृति पंचमी छठवीं सोय ॥५६॥
बंधन उदय काय बंधान । संघातनसों दिढ़ संधान ॥
दुहूँकी दश शाखा द्वय खंध । जथाजोग काया संबंध ॥ ५७ ॥
अब सातमी प्रकृति परसंग । कहों तीन तन अंग उपंग ॥
औदारिक वैक्रियक अहार । अंग उपंग तीन तनधार ॥ ५८ ॥

दोहा ।

सिर नितंब उर पीठ करि, जुगल जुगल पद टेक ।
आठ अंग ये तनविषै, और उपंग अनेक ॥ ५९ ॥

तैजस कार्माण तन दोय । इनके अंग उपंग न होय ॥
कहहुं आठमी प्रकृति विचार । षट् संस्थान रूप आकार ६०
जो सर्वंग चारु परधान । सो है समचतुरस्र संठान ॥
ऊपर थूल अधोगत छाम । सो निगोधपरिमंडल नाम ॥६१॥
हेट थूल ऊपर कृश होय । सातिक नाम कहावै सोय ॥
कूबर सहित वक्र वपु जासु । कुबज अकार नाम है तासु॥६२॥
लघुरूपी लघु अंग विधान । सो कहिये वामन संठान ॥
जो सर्वंग असुंदर मुंड । सो संठान कहावै हुंड ॥ ६३ ॥

कही आठमीप्रकृति छभेद । अब नौमी संहनन निवेद ॥
है संहनन हाड़को नाम । सो षट्विधि थंभे तन धाम ॥६४॥
वज्र कील कीलित संधान । ऊपरि वज्रपट्ट बंधान ॥
अंतर हाड वज्रमय वाच । सो है वज्रवृषभनाराच ॥ ६५ ॥
जहँ सब हाड़ वज्रमय जोय । वज्रमेख सो अविचल होय ॥
ऊपर वेढरूप सामान । नाम वज्रनाराच बखान ॥ ६६ ॥
वज्र समान होहिं जहँ हाड । ऊपर वज्ररहित पट आड ॥
वज्ररहित कीलीसों विद्ध । सो नाराच नाम परसिद्ध ॥ ६७ ॥
जाके हाड़ वज्रमय नाहिं । अर्द्धवेध कीली नसमाहिं ॥
ऊपर वेठबँधन नहिं होय । अर्द्धनराच कहावै सोय ॥ ६८ ॥
जहां न होय वज्रमय हाड । नहिं पटबंधन कीली गाड ॥
कीली विन दिढ बंधन होय । नाम कीलिका कहिये सोय६९
जहां हाड़सों हाड़ न बंधै । अमिल परस्पर संधि न संधै ॥
ऊपर नसाजाल अरु चाम । सो सेवट संहनन नाम ॥ ७० ॥
ये संहनन छविधि वरणई । नवमी प्रकृति समापति भई ॥
दशमी प्रकृति गमन आकाश । ताके दोय भेद परकाश ७१

दोहा ।

शुभविहाय गतिके उदय, भली चाल जिय धार ।
अशुभविहाय उदोतसों, ठानै अशुभ विहार ॥ ७२ ॥

पद्धरिछन्द ।

अब कहूं ग्यारमी प्रकृतिसंच । जो वरणभेद परकार पंच ॥
सित अरुण पीत दुति हरित श्याम । ये वर्ण प्रकृतिके पंच नाम ७३

जो वर्ण प्रकृति जाके उदोत। ताको शरीर तिह वर्ण होत ॥
रस नाम प्रकृति बारमी जान। सो पंचभेद विवरण बखान ७४

कटु मधुर तिक्त आमल कषाय। रसउदय रसीली होय काय।
जाको जो रस प्रकृती उदोत। ताके तन तैसो स्वाद होत ७५

तेरहीं प्रकृति गँधमयी होय। दुर्गंध सुगन्ध प्रकार दोय ॥
जो जीव जो प्रकृति करे बंध। तिह उदय तासु तन सोइ गंध७६

अब फरस नाम चौदवीं वानि। तिस कहीं आठ शाखा बखानि॥
चीकनी रुक्ष कोमल कठोर। लघु भारी शीतल तप्त जोर॥७७॥

दोहा।

प्रकृति चीकनीके उदय, गहै चीकनी देह।
रूखी प्रकृति उदोतसों, रूखीकाया गेह ॥ ७८ ॥

कठिन उदयसों कठिन तन, मृदु उदोत मृदु अंग।
तपतउदयसों तपततन, शीतउदय शीतंग ॥ ७९ ॥

पद्धरि छंद।

जहँ भारी नाम परकृति उदोत। तहँ भारी तनधर जीव होत ॥
लघुप्रकृति उदयधर जीव जोय। अति हल्ई काया धरे सोय८०

ए पिंडप्रकृति दशचार भाखि। इनहींकी पैंसठ कही साखि ॥
अब अठ्ठावीस अपिण्ड ठानि। तिनके गुणरूप कहों बखानि८१

जब प्रकृति अगुरुलघु उदय देय। तब जीव अगुरुलघु तन धरेय
उपघात उदय सो अंग व्याप। जासों दुख पावै जीव आप॥८२॥

परघात उदयसों होय अंग। जो करै औरको प्राण भंग ॥
उस्सासप्रकृति जब उदय देय। तब प्राणी सास उसास लेय८३
आतप उदोत तन जथा भान। उद्योत उदय तन शशि समान
त्रस प्रकृति उदय धर जीव जोय। जंगम शरीरधर चलैसोय८४
थावर उदोतधर प्राणधार। लहि थिर शरीर न करै विहार ॥
सूक्षम उदोत लघु देह जास। सो मारै मरै न और पास ८५
बादर उदोत तन थूल होय। सबहीके मारे मरै सोय ॥
परजापति प्रकृति उदय करंत। जिय पूरी परजापति धरंत८६
जो प्रकृति अपर्जापत धरेय। सो पूरी परजापत न लेय ॥
प्रत्येक प्रकृति जाके उदोत। सो जीव वनस्पति काय होत॥ ८७॥
जब तुचा काठ फल फूल पात। जहँ बीज सहित जियराशिसात॥
जो एक देहमें जीव एक। सो जीवराशिकहिये प्रत्येक॥ ८८ ॥
प्रत्येक वनसपति द्विविधिजान। सुप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित बखान॥
जो धारै राशि अनन्तकाय। सो सुप्रतिष्ठित कहिये सुभाय ॥८९॥
जामें नहिं होय निगोदधाम। सो अप्रतिष्ठित प्रत्येकनाम ॥
अब साधारणवनसपति काय। सो सूच्छम बादर द्विविधि थाय९०
सूच्छम निगोद जगमें अमेय। बादर यह दूजा नामधेय ॥
धरि भिन्न भिन्न कार्माण काय। मिलि जीव अनन्त इकत्र आय९१
संग्रहहि एक नो कर्म देह। तिस कारण नाम निगोद एह ॥
सो पिण्ड निगोद अनन्तरास। जियरूप अनंतानंत भास॥९२॥

भर रहे लोकनभमें सदीव । ज्यों घड़ामाहिं भर रहे घीव ॥
सूक्षम अरु बादर दोय साख । पुनि नित्य अनित्य दुभेद भाख ९३
जो गोलकरूपी पंचधाम । अंडर खंडर इत्यादि नाम ॥
ते सातनरकके हेट जान । पुनि सकललोकनभमें बखान ॥९४॥

दोहा ।

एक निगोद शरीरमें, जीव अनंत अपार ।
धरें जन्म सब एकठे, मरहिं एक ही वार ॥ ९५ ॥
मरण अठारह वार कर, जनम अठारह भेव ।
एक स्वास उस्वासमें, यह निगोदकी टेव ॥ ९६ ॥
एक निगोदशरीरमें, एते जीव बखान ।
तीन कालके सिद्ध सब, एक अंश परिमान ॥ ९७ ॥
बढ़ै न सिद्ध अनंतता, घटै न राशि निगोद ।
जैसेके तैसे रहैं, यह जिनवचनविनोद ॥ ९८ ॥
तातें बात निगोदकी, कहे कहांलौं कोय ।
साधारण प्रकृतीउदय, जिय निगोदिया होय ॥ ९९ ॥
यह साधारण प्रकृतिलों, बरणी चौदह साख ।
बाकी चौदह जे रहें, ते बरणों मुख भाख ॥ १०० ॥

पद्धरिछन्द ।

थिरप्रकृति उदयथिरता अभंग । अथिर उदोतसों अथिर अंग ॥
शुभप्रकृतिउदय शुभरीति सर्व । जहँ अशुभउदय तहँ अशुभपर्व १
सुभागप्रकृति जाके उदोत । सो प्राणी सबको इष्ट होत ।
दुर्भागप्रकृतिके उदय जीव । सबको अनिष्ट लागे सदीव ॥२॥

जहँ सुस्वरप्रकृति उदय बखान। तहँ कंठ कोकिला मधुरवान ॥
जो दुस्वरप्रकृति उदोत धार। ताकी ध्वनि ज्यों गर्दभपुकार ॥३॥

आदेयप्रकृति जाके उदोत। ताको बहु आदर मान होत ॥
जब अनादेयको उदय होय। तब आदर मान करै न कोय ॥४॥

जसनामउदय जिस जीव पाहिं। ताकी जस कीरति जगतमाहिं ॥
जहँ प्रगट भालमहँ अजसरेख। तहँ अपजस अपकीरति विशेख ५

निर्म्माणचितेरा उदय आय। सब अंगउपंग रचै बनाय ॥
तीर्थंकरनामप्रकृति उदोत। लहि जीव तीर्थंकरदेव होत ॥ ६ ॥

दोहा।

ये तिरानवे और दश, तनसंवन्धी आन।
मिलहिं एकसोतीन सब, होहिं नामकी वान ॥ ७ ॥

चौपाई।

नामप्रकृति संपूरण भई। पिंड अपिंड कही जो जुई ॥
पिण्डप्रकृति चौदह बनि रही। तिनकी पैंसठ शाखा कही ॥८॥

अट्ठाइस अपिंड बरनई। ते सब मिलि तिरानवे भई ॥
बरनों गोतकरम सातमा। जासों ऊंच नीच आतमा ॥ ९ ॥

ऊंचगोत उद्योत प्रवान। होवै जीव उच्चकुलथान ॥
नीचगोत फलसंगति पाय। जीव नीचकुल उपजै आय ॥१०॥

गोत्रकर्मकी द्वयप्रकृति, तेहू कहीं बखानि।
अंतराय अब पंचविधि, तिनकी कहों कहानि ॥ ११ ॥

अंतराय अष्टम बटमार । सो है भेद पंच परकार ॥
अन्तराय तरुकी द्रु डार । निहचै एक एक विवहार ॥ १२ ॥

कहौं प्रथम निहचैकी बात । जासु उदय आतमगुण घात ॥
परगुन त्याग होहि नहिं जहां । दान अन्तराय कहि तहां १३

आतमतत्त्वलाभकी हान । लाभअन्तराई सो जान ॥
जबलों आतमभोग न होय । भोगअन्तराई है सोय ॥ १४ ॥

बारबार न जगै उपयोग । सो है अन्तराय उपभोग ॥
अष्टकर्मको करै न जुदा । वीरज अन्तरायका उदा ॥ १५ ॥

निहचै कही पंच परकार । अब सुन अन्तराय विवहार ॥
छतीवस्तु कछु देय न सकै । दान अन्तराई बल ढकै ॥ १६ ॥

उद्यम करै न संपति होय । लाभ अन्तराई है सोय ॥
विषयभोग सामग्री छती । जीव न भोग कर सकै रती ॥ १७ ॥

रोग होय कै भोग न जुरै । भोगअन्तरायबल फुरै ॥
एक भोगसामग्री सार । ताकौ भोग जु बारंबार ॥ १८ ॥

कीजे सो कहिये उपभोग । ताहू को न जुरै संजोग ॥
यह उपभोगघातकी कथा । वीरजअन्तराय सुन जथा ॥ १९ ॥

शक्ति अनंत जीवकी कही । सो जगडमाहिं दब रही ॥
जगमें शक्ति कर्मआधीन । कबहूं सबल कबहु बलहीन ॥ २० ॥

तनइन्द्रियबल फुरै न जहां । वीरजअन्तराय है तहां ॥
तातैं जगतदशा परवान । नय राखी भाखी भगवान ॥ २१ ॥

दोहा ।

ये वरणी व्यवहार की, अन्तराय विधि पंच ॥
अन्तर वहिर विचारतैं, । संशय रहै न रंच ॥ २२ ॥
स्यादवाद जिनके वचन, । जो मानै परमान ।
सो जानै सब नयदशा, । और न कोऊ जान ॥ २३ ॥
सर्वघातियाकी प्रकृति, । देशघातियावान ॥
वाकी और अघातिया, । ते सब कहों वखान ॥ २४ ॥

केवलज्ञानावरणी वान । केवलदरशआवरण जान ॥
निद्रा पंच चौकरी तीन । प्रकृती द्वादश लीजे चीन ॥ २५ ॥
अनंतबंध अप्रत्याख्यान । प्रत्याखान चौक त्रिक जान ॥
सब मिथ्या मिश्रित मिथ्यात। ए इकवीस प्रकृति सब घात २६

दोहा ।

सर्वघातियाकी कही । विंशति एक वखान ।
अव वरणों छवीसविधि । देशघातिया वान ॥ २७ ॥

चौपाई ।

केवलज्ञानावरणी विना । वाकी चार आवरण गिना ॥
केवलदरशआवरण छोड़ । वाकी तीनों लीजे जोड़ ॥ २८ ॥
चारभेद संज्वलनकषाय । नवविधि नोकषाय समुदाय ॥
समयप्रकृति मिथ्यात वखान । अन्तरायकी पांचों वान॥२९॥
ए छव्वीस प्रकृति सब भई । देशघातियाकी वरनई ॥
वाकी रही एकसौ एक । ते सब कही घाति अतिरेक ॥३०॥

दोहा।

द्विविधिगोत्र द्वय वेदनी। आयु चारविधिजानि॥
मिल तिरानवे नाम की एकोचरशत थानि॥ ३१॥

चौपाई।

जे घातहिं सब आतमदर्व। ते ही कही घातिया सर्व॥
जे कछु घात करहिं कछु नाहिं। देशघातिया ते इन माहिं॥३२॥
जे न करहिं आतमबल घात। ते अघातिया कहीं विख्यात॥
अब सुन पुण्यपापके भेद। भिन्न भिन्न सब कहौं निवेद ३३
इक सातावेदनी स्वभाव। नरकआयु विन तीनों आव॥
ऊंचगोत्र मानुपगति भली। मानुपआनुपूरवी रली॥ ३४॥
सुरगति सुरानुपूरवि जान। जात पँचेन्द्री एक वखान॥
पंच शरीर पंच संघात। बंधनसहित पंचसंगात॥ ३५॥
अंग उपंग तीनविधि भास। विंशति वर्ण गंध रस फास॥
पहिला समचतुरस्र सँठान। वज्रवृषभनाराच वखान॥ ३६॥
भली चाल आतप उद्योत। पर परघात अगुरुलघु होत॥
सास उसास प्रतेक प्रवान। त्रस वादर पर्यापत्त जान॥ ३७॥
थिर शुभ शुभग सुस्वर आदेय। जसनिर्म्माण तीर्थंकर येय॥
पुण्यप्रकृतिकी अडसठ थान। पापप्रकृति अब कहौं बखान३८
सर्वघातियाकी इकवीस। देशघातियाकी छब्बीस॥
ये सैतालिस प्रकृती कहीं। बाकी और कहूं जो रहीं॥३९॥

प्रकृति असाता नीचकुल, नरकआयु गति दोय ।
पशु नारकि इन दुहुनकी, आनुपूरवी जोय ॥ ४० ॥

चार जाति पंचेन्द्री विना । पंचसंहनन प्रथम न गिना ॥
समचतुरसविन पंचअकार । वर्णादिक विंशति परकार ॥४१॥

बुरी चाल थावर उपघात । सूक्षम साधारण विख्यात ॥
अनादेय अपर्यापत दशा । दुर्भग दुस्वर अशुभ अपजशा ४२

अथिरसमेत एकसो वान । ए सब पापप्रकृति परवान ॥
केती बंध उदय केतीक । तिनकी बात कहों अब ठीक॥४३॥

दोहा ।

चारबंध बरणादिमें, बाकी सोलह नाहिं ।
एक बंधमिथ्यातमें, द्वै गर्भित इसमाहिं ॥ ४४ ॥

तनबंधन संघातकी, प्रकृति पंचदश जान ।
पंच बंध दश बंध विन, ये अठाइस वान ॥ ४५ ॥

अट्ठाइसको बंध नहिं, बंध एकसोवीस ॥
इनमें दोय बढाइये, होहिं उदयबावीस ॥ ४६ ॥

चौपाई ।

बंध उदय विशेष यह बात । एक मिथ्यात तीन मिथ्यात ॥
एई दोय अधिक परनई । प्रकृति एकसौबाविस भई ॥ ४७॥

अब विपाक बरनों विधि चार । पुद्गल जीव क्षेत्र भव धार ॥
जे पुद्गलविपाककी वान । ते बासठविधि कहों बखान ॥४८॥

पंच शरीर बंधसंघात । अंग उपंग अठारह बात ॥
छह संहनन छहों संठान । वर्णादिक गुन वीस बखान ॥४९॥
थिर उदोत आतप निरमान । अथिर अगुरुलघु अशुभ विधान॥
साधारण प्रतेक उपघात । शुभ परघात सुवासठ बात ॥५०॥
जीव विपाक अठत्तर गनी । द्विविधि गोत्र द्वयविधि वेदनी ॥
सर्वघात अरु देशविघात । सैंतालीस प्रकृति विख्यात ॥५१॥
तीर्थंकर बादर उस्वास । सूक्षम परजापत परकास ॥
अपरजापति सुस्वर गेय । दुस्वर अनादेय आदेय ॥ ५२ ॥
जस अपजस त्रस थावर बान । दुर्भग शुभग चाल द्वयजान ॥
इन्द्री जाति पंचविधि गही । गति चारों एती सब कही॥५३॥

दोहा ।

जीवविपाकीकी कही, प्रकृति अठत्तर ठौर ॥
क्षेत्रविपाकी अब कहों, भवविपाकिनी और ॥ ५४ ॥
आनुपूरवी चार विधि, क्षेत्रविपाकी जान ।
चार आयुबलकी प्रकृति, भवविपाकिया बान ॥ ५५ ॥
घाति अघाती त्रिविधि कहे, पुण्य पाप द्वय चारु ।
बंध उदय दोऊ कहे, बरनें चार विपाक ॥ ५६ ॥
अब इन आठों करमकी, थिति जघन्य उतकृष्ट ।
कहों बात संक्षेपसों, सुनों कान दे इष्ट ॥ ५७ ॥

चौपाई ।

ज्ञानावरणीकी थिति तीस । कोडाकोडीसागरतीस ॥
यह उत्कृष्टदशा परवान । एकमुहूर्त जघन्य बखान ॥ ५८ ॥

द्वितिय दर्शनावरणीकर्म । थिति उत्कृष्ट कहीं सुन मर्म ॥
कोडाकोडी तीस समुद्र । एकमुहूरतकी थिति क्षुद्र ॥ ५९ ॥
तीजा कर्म वेदनी जान । कोडाकोडीतीस बखान ॥
यह उत्कृष्ट महाथिति जोय । जघन मुहूरतबारह होय ॥६०॥
चौथा महामोह परधान । थिति उत्कृष्ट कही भगवान ॥
सागरसत्तरकोडाकोडि । लघुथिति एकमुहूरत जोडि ॥ ६१ ॥
पंचम आयु कही जगदीस । उत्कृष्टी सागर तेतीस ॥
थिति जघन्य सुमुहूरतएक। यों गुरु कही विचार विवेक॥६२॥
छट्टा नामकर्मथिति कहीं । कोडाकोडि बीस सरदहीं ॥
सागर यह उत्कृष्टविधान । आठमुहूर्त जघन्य बखान ॥ ६३ ॥
गोत्रकर्म सातवां सरीस । उत्कृष्टी थिति सागरवीस ॥
कोडाकोडिकाल परमान । लघुथिति आठ मुहूरतमान ॥ ६४॥
अष्टम अंतराय दुखदानि । उत्कृष्टी थिति कहीं बखानि ॥
सागरकोडाकोडी तीस । लघुथिति एकमुहूरत दीस ॥ ६५ ॥

बरनी आठों कर्मकी, । थिति उत्कृष्ट जघन्य ॥
बाकी मध्यम और थिति, । ते असंख्यधा अन्य ॥६६ ॥

अब बरनों पल्योपमकाल । तथा सागरोपमकी चाल ॥
कूपभरे जे रोम अपार । ते बरनें नाना परकार ॥ ६७ ॥
पल्योपमके भेद अनेक । तातें यहां न बरना एक ॥
जोजन कूप रोमकी बात । कही जैनमतमें विख्यात ॥ ६८॥

कूपकथा जैसी कछु कही । सो पल्योपम कहिये नहीं ॥
पल्योपम दश कोड़ाकोड़ि । सब एकत्र कीजिये जोड़ि ॥६९॥

एक सागरोपम सो काल । यह प्रमान जिनमतकी चाल ॥
यहै सागरोपमकी कथा । यथा सुनी मैं वरणी तथा ॥ ७० ॥

आठकर्म अठतालसों, प्रकृतिभेद विस्तार ।
कै जानैं जिन केवली, कै जानैं गनधार ॥ ७१ ॥

अल्पबुद्धि जैसी मुझ पाहि । तैसी मैं वरनी इसमाहिं ॥
पंडित गुनी हँसो मत कोय । अल्पमती भाषाकवि होय ॥७२॥

कर्मकांड आगम अगम, यथाशक्ति मन आन ।
भाषा मैं रचना कही, बालबोधमैं जान ॥ ७३ ॥

कलसा—गीताछन्द.

यह कर्मप्रकृतिविधान अविचल, नाम ग्रन्थ सुहावना ।
इसमाहिं गर्भित सुगुप्तचेतन, गुपत बारह भावना ॥
जो जान भेद बखान सरदहिं, शब्द अर्थ विचारसी ।
सो होय कर्मविनाश निर्मल, शिवस्वरूप बनारसी ॥ ७४ ॥

दोहा ।

संवत् सत्रहसौ समय, फाल्गुणमास वसन्त ।
ऋतु शशिवासर सप्तमी, तब यह भयो सिद्धंत ॥ ७५ ॥

इति श्रीकर्मप्रकृतिविधान.

अथ कल्याणमन्दिरस्तोत्र भाषानुवाद.

दोहा

परमज्योति परमातमा, परमज्ञान परवीन ।
वंदों परमानंदमय, घट घट अंतरलीन ॥ १ ॥

चौपाई । (१५ मात्रा.)

निर्भयकरन परम परधान । भवसमुद्र जलतारण जान ॥
शिवमन्दिर अघहरण अनिन्द । वन्दहुं पासचरणअरविन्द ॥२॥
कमठमानभंजन वरवीर । गरिमासागर गुणगंभीर ॥
सुरगुरु पार लहैं नाहिं जासु । मैं अजान जंपों जस तासु॥३॥
प्रभुस्वरूप अति अगम अथाह । क्यों हमसे इह होय निवाह॥
ज्यों दिनअंध उलूको पोतै । कहि न सकै रविकिरनउदोत ४
मोहहीन जानै मनमाहिं । तोउ न तुमगुण वरणें जाहिं ॥
प्रलयपयोधि करै जल वौनं । प्रगटहिं रतन गिनै तिहि कौन५
तुम असंख्य निर्म्मलगुणखानि । मैं मतिहीन कहों निजवानि॥
ज्यों बालक निज बांह पसार । सागरपरिमित कहै विचार ६
जो जोगीन्द्र करहिं तप खेद । तउ न जानहिं तुमगुणभेद ॥
भगतिभाव मुझ मन अभिलाख । ज्यों पंखी बोलहिं निज भाख७
तुम जसमहिमा अगम अपार । नाम एक त्रिभुवन आधार ॥
आवै पवन पद्मसर होय । ग्रीषमतपत निवारै सोय ॥ ८ ॥

१ बच्चा. २ वमन. ३ पद्मसरोवरको स्पर्श करके.

तुम आवत भविजन मनमाहिं। कर्मनिबंध शिथिल हो जांहिं॥
ज्यों चंदनतरु बोलहिं मोर। डरहिं भुजङ्ग लगे चहुंओर॥९॥

तुम निरखतजन दीनदयाल। संकटतैं छूटहिं ततकाल॥
ज्यों पशुघेर लेहिं निशिचोर। ते तज भागहिं देखत भोर१०

तू भविजन तारक किम होह। ते चित धार तिरहिं ले तोह॥
यह ऐसैं करि जान स्वभाउ। तिरै मसक ज्यों गर्भितबाउ ११

जिन सब देव किये बश वाम। तैं छिननैं जीत्यो सो काम॥
ज्यों जल करै अग्निकुलहानि। बड़वानल पीवै सो पानि॥१२॥

तुम अनन्त गरुवा गुण लिये। क्योंकरभक्ति धरूं निजहिये॥
ह्वै लघुरूप तिरहि संसार। यह प्रभुमहिमा अकथ अपार १३

क्रोध निवार कियो मनशांति। कर्म सुभटजीते किहिं भांति॥
यह पटतर देखहु संसार। नीलवृक्ष ज्यों दहै तुसार॥१४॥

मुनिजनहिये कमल निज टोहि। सिद्धरूप समध्यावहिं तोहि॥
कमलकर्णिका बिन नहिं और। कमलबीज उपजनकी ठौर१५

जब तुह ध्यानधरै मुनि कोय। तब विदेह परमातम होय॥
जैसें धातु शिलातन त्याग। कनकस्वरूप धवै जब आग १६

जाके मन तुम करहु निवास। विनस जाय क्यों विग्रह तास॥
ज्यों महन्त विच आवै कोय। विग्रह मूल निवारै सोय॥१७॥

करहिं विबुध जे आतम ध्यान। तुम प्रभावतैं होय निदान॥
जैसैं नीर सुधा अनुमान। पीवत विष विकारकी हान॥१८॥

तुम भगवंत विमल गुणलीन । समलरूप मानहिं मतिहीन ॥
ज्यों नीलिया रोग दृग गहै । वर्ण विवर्ण संखसों कहै ॥१९॥

दोहा।

निकट रहत उपदेश सुनि, तरुवर भये अशोक ।
ज्यों रवि ऊगत जीव सब, प्रगट होत भुविलोक ॥ २०॥
सुमनवृष्टि जो सुरकरहिं, हेठ बीटमुख सोहिं ।
त्यों तुम सेवत सुमनजन, बंध अधोमुख होहिं ॥ २१ ॥
उपजी तुम हिय उदधितैं, वाणी सुधा समान ।
जिहिं पीवत भविजन लहहिं, अजर अमर पदथान॥२२॥
कहहिं सार तिहुंलोकको, ये सुरचामर दोय ।
भावसहित जो जिन नमैं, तसु गति ऊरध होय ॥ २३ ॥
सिंहासन गिरि मेरु सम, प्रभुधुनि गरजित घोर।
श्याम सुतन घनरूप लख, नाचत भविजन मोर ॥ २४॥
छवि हत होंहिं अशोकदल, तुमभामंडल देख ।
वीतरागके निकट रह, रहत न राग विशेख ॥ २५ ॥
शीखि कहै तिहुंलोकको, यह सुरदुंदुभि नाद ।
शिवपथ सारथिवाह जिन, भजहु तजहु परमाद ॥ २६॥
तीन छत्र त्रिभुवन उदित, मुक्तागण छविदेत ।
त्रिविधिरूप धर मनहुं शशि, सेवत नखतसमेत ॥ २७ ॥

पद्धरिछन्द।

प्रभु तुम शरीर दुति रतन जेम । परताप पुंज जिम शुद्ध हेम॥
अति धवलसुजस रूपा समान। तिनके गढ़ तीन विराजमान२८

सेवहिं सुरेन्द्र कर नमित भाल। तिन शीसमुकुट तजदेहिं माल॥
तुव चरण लगत लहलहैं प्रीति।नहिं रमहि और जन सुमनरीति २९
प्रभुभोग विमुख तन कर्म दाह। जन पार करत भवजल निवाह॥
ज्यों माटीकलश सुपक होय। ले भार अधोमुख तिरहि तोय ३०
तुम महाराज निर्द्धन निराश। तज विभव विभव सब जगविकाश
अक्षर स्वभावसैंलिखै न कोय। महिमा अनन्त भगवंत सोय ३१
कोप्यो सु कमठ निज वैर देख। तिन करी धूल वर्षा विशेख॥
प्रभु तुम छाया नहिं भई हीन। सो भयो पापि लंपट मलीन ३२
गरजंत घोर घन अंधकार। चमकंत विज्जु जलमुसलधार॥
वरषंत कमठ धरध्यान रुद्र। दुस्तर करंत निजभवसमुद्र ३३

वस्तु छन्द।

मेघमाली मेघमाली आप बल फोरि।
भेजे तुरत पिशाचगण, नाथ पास उपसर्ग कारण।
अग्नि जाल झलकंत मुख, धुनि करंत जिमि मत्तवारण॥
कालरूप विकराल तन, मुंडमाल तिह कंठ।
है निशंक वह रंकनिज, करै कर्मदृढगंठ॥ ३४॥

चौपाई।

जे तुम चरणकमल तिहुंकाल। सेवहिं तज मायाजंजाल॥
भाव भगतिमन हरष अपार। धन्य २ जग तिन अवतार॥३५॥
भवसागरमहं फिरत अजान। मैं तुह सुजस सुन्यो नहिं कान॥
जो प्रभुनाम मंत्र मन धरै। तासों विपति भुजंगम डरै॥ ३६॥

मनवांछित फल जिनपदमाहिं। मैं पूरव भव पूजे नाहिं ॥
माया मगन फिरयो अज्ञान। करहिं रंकजन मुझ अपमान ३७
मोहतिमर छायो दृग मोहि। जन्मान्तर देख्यो नहिं तोहि ॥
तौ दुर्जन मुझ संगति गहैं। मरमछेदके कुवचन कहैं ॥ ३८॥
सुन्यो कान जस पूजे पाय। नैनन देख्यो रूप अघाय ॥
भक्ति हेतु न भयो चित चाव। दुखदायक किरियाविन भाव ३९
महाराज शरणागत पाल। पतितउधारण दीनदयाल ॥
सुमिरण करहुं नाय निज शीस। मुझ दुख दूर करहु जगदीश ॥४०
कर्मनिकन्दनमहिमा सार। अशरणशरण सुजश विसतार ॥
नहिं सेये प्रभु तुमरे पाय। तो मुझ जन्म अकारथ जाय ॥४१॥
सुरगण वन्दित दया निधान। जगतारण जगपति जगजान ॥
दुखसागरतैं मोहि निकासि। निर्भयथान देहु सुखराशि ॥ ४२ ॥
मैं तुम चरणकमल गुन गाय। बहुविधि भक्ति करी मनलाय ॥
जन्मजन्म प्रभु पावहुं तोहि। यह सेवा फल दीजे मोहि ॥ ४३ ॥

दोधकान्त वेसरीछन्द। षट्पद.

इहिविधि श्रीभगवंत, सुजश जे भविजन भाषहिं।
ते निज पुण्य भंडार, संच चिरपाप प्रणासहिं ॥
रोमरोम हुलसंति अंग, प्रभु गुणमनध्यावहिं।
स्वर्गसंपदा भुंज, वेग पंचम गति पावहिं ॥
यह कल्याणमन्दिर कियो, कुमुदचन्द्रकी बुद्धि।
भाषा कहत बनारसी, कारण समकितशुद्धि ॥ ४४ ॥

इति श्रीकल्याणमन्दिरस्तोत्रं.

अथ साधुवन्दना लिख्यते.

दोहा।

श्रीजिनभाषित भारती, सुमरि आन मुखपाठ।
कहौं मूल गुण साधुके, परमित विंशतिआठ ॥ १ ॥
पंचमहाव्रत आदरन, समति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, पट अवशिक आचार ॥ २ ॥
भूमिशयन मंजनतजन, वसनत्याग कचलोच।
एकवार लघुअसन थिति-असन दंतवन मोच ॥ ३ ॥

चौपाई।

थावर जन्तु पंच परकार। चार भेद जंगम तन धार।
जो सब जीवनको रखपाल। सो सुसाधु वन्दहुं तिरकाल ॥४॥
संतत सत्य वचन मुख कहै। अथवा मौनविरत धर रहै।
मृषावाद नहिं बोलै रती। सो जिन मारग सांचा जती ॥५॥
कौड़ी आदि रतन परजंत। घटित अघट धनभेद अनंत ॥
दत्त अदत्त न फरसै जोय। तारण तरण मुनीश्वर सोय ॥६॥
पशु पंखी नर दानव देव। इत्यादिक रमणी रति सेव ॥
तजहिं निरन्तर मदन विकार। सो मुनि नमहुं जगत हितकार ७
द्विविधि परिग्रह दशविधि जान। संख असंख अनन्त बखान ॥
सकल संगतज होय निराश। सो मुनि लहै मोक्ष पदवास ॥ ८ ॥

---

१ खड़ेभोजन करना.

अधोदृष्टि मारग अनुसरै । प्राशुक भूमि निरख पग धरै ॥
सदय हृदय साधै शिव पंथ । सो तपीश निरभय निर्ग्रन्थ ॥ ९ ॥

निरभिमान निरवद्य अदीन । कोमल मधुर दोष दुख हीन ॥
ऐसे सुवचन कहै सभाव । सो ऋषिराज नमहुं धरि भाव १०

उत्तम कुल श्रावक संचार । तासु गेह प्राशुक आहार ॥
भुंजै दोष छियालिस टाल । सो मुनि वंदौं सुरति संभाल ॥ ११ ॥

उचितवस्तु निजहित परहेत । तथा धर्म उपकरण अचेत ॥
निरख जतनसों गहै जु कोय । सो मुनि नमहुं जोर कर दोय १२

रोगविकृति पूरव आदान । नवदुवार मल अंग उठान ॥
डारै प्राशुक भूमि निहार । सो मुनि नमहुं भगति उरधार १३

कोमल कर्कश हरुव सभार । रुक्ष सचिक्कण तपत तुसार ॥
इनको परसन दुख सुखलहैं । सो मुनिराज जिनेश्वर कहैं ॥ १४ ॥

आमल कटुक कषायल मिष्ट । तिक्त क्षार रस इष्ट अनिष्ट ॥
इनहिं स्वाद रति अरति न वेव । सो ऋषिराज नमहिं तिहँ देव १५

शुभ सुगंध नाना परकार । दुखदायक दुर्गंध अपार ॥
नासा विषय गनहिं समतूल । सो मुनि जिनशासनतरुमूल १६

श्यामहरित सित लोहित पीत । वरण विवरण मनोहर भीत ॥
ए निरखै तज राग विरोध । सो मुनि करै कर्ममल शोध १७

शब्द कुशब्दहिं समरस साद । श्रवण सुनत नहिं हरष विषाद ॥
थुति निंदा दोऊ सम सुणै । सो मुनिराज परम पद मुणै ॥ १८ ॥

सामाइक साधै तिहुं काल। मुकति पंथकी करै सँभाल ॥
शत्रुमित्रदोऊ सम गणै। सो मुनिराज करमरिपु हणै ॥ १९॥
अर्हत सिद्ध सूरि उवझाय। साधु पंच पद परम सहाय ॥
इनके चरणनमें मन लाय। तिन मुनिवरके वन्दों पाय ॥ २०॥
पावन पंचपरम पद इष्ट। जगतमाहिं जानै उतकिष्ट ॥
ठानै गुणश्रुति वारंवार। सो मुनिराज लहै भवपार ॥ २१ ॥
ज्ञान क्रिया गुणधारै चित्त। दोष विलोक करै प्राछित्त ॥
नित प्रतिक्रमणक्रियारसलीन। सो मुसाधु संजम परवीन ॥ २२॥
श्रीजिनवचन रचन विसतार। द्वादशांग परमागम सार ॥
निजमति मान करै सज्झाउ। सो मुनिवर वंदहु धर भाउ २३
काउसगमुद्रा धर नित्त। शुद्धस्वरूप विचारै चित्त ॥
त्यागै त्रिविधिजोग ममकार। सो मुनिराज नमो निरधार २४
प्रासुक शिला उचित भूखेत। अचल अंग समभाव सचेत ॥
पश्चिमरैन अलप निद्राल। सो योगीश्वर वंचै काल ॥ २५ ॥
धर्मध्यान[1] जुत परम विचित्र। अन्तर बाहिज सहज पवित्र ॥
न्हान विलेपन तजै त्रिकाल। वन्दों सो मुनि दीनदयाल ॥ २६॥
लोकलाजविगलित भयहीन। विषयवासनारहित अदीन ॥
नगन दिगम्बर मुद्राधार। सो मुनिराज जगत सुखकार ॥ २७॥
सघन केश गर्भित मलकीच। त्रस असंख्य उतपति तसुबीच ॥
कच लुंचै यह कारण जान। सो मुनि नमहुं जोरजुगपान २८

---

१ समीचीन ध्यान.

छुधा वेदनी उपशम हेत । रस अनरस समभाव समेत ॥
एकवार लघु भोजन करै । सो मुनि मुकति पंथ पगधरै २९

देह सहारौ साधन मोप । तवलों उचित कायवल पोप ॥
यह विचार थिति लेहिं अहार । सो मुनि परम धरम धनधार३०

जहँ जहँ नवदुवारमलपात । तहँ तहँ अमित जीव उतपात ॥
यह लख तजहिं दंतवन काज । सो शिवपथसाधक ऋपिराज३१

ये अट्ठाविस मूल गुण, जो पालहिं निरदोप ।
सो मुनि कहत वनारसी, पावै अविचल मोप ॥ ३२ ॥

इति साधुवन्दना.

अथ मोक्षपैडी लिख्यते.

दोहा ।

इक समय रुचिवंतनो, गुरु अक्खै सुनमल्ल ।
जो तुझ अंदरचेतना, वहै तुसाडी अल्ल ॥ १ ॥

ए जिनवचन सुहावने, सुन चतुर छयल्ला ।
अक्खै रोचकशिक्खनो, गुरु दीनदयल्ला ॥
इस बुझै वुध लहलहै, नहिं रहै मयल्ला ।
इसदा मरम न जानई, सो द्विपद वयल्ला ॥ २ ॥
जिसदौ गिरदा पेचसों, हिरदा कलमल्ला ।
जिसना संसै तिमिरसों, सूझै झलमल्ला ॥

खनै जिन्हादी भूमिनों, कुज्ञान कुदल्ला ।
सहज तिन्हादा वहजसों, चित रहै दुदल्ला ॥ ३ ॥

जिन्हा इक करमदा, दुविधा पद मल्ला ।
इक अनिष्ट असोहणा, इक शाक श्रमल्ला ॥

तिन्हां इक न सूझई, उपदेश अहल्ला ।
वंककटाछे लोपना, ज्यों चंद गहल्ला ॥ ४ ॥

जिन्हां चित इतवारसों, गुरुवचन न झल्ला ।
जिन्हां आगें कथन यो, ज्यों कोदों दल्ला ॥

वरसे पाहन भुम्मिमें, नहिं होय चहल्ला ।
बोये बीज न ऊप्पजै, जल जाय वहल्ला ॥ ५ ॥

चेतन इस संसारमें, तू सदा इकल्ला ।
आपै रूप पिशाच, है तैं अप्पा छल्ला ॥

आपै घुम्यां गिरि पया, किणिदित्ता टल्ला ।
जिन्हसों मिलन विजोग है, तिनसों क्या तल्ला ॥ ६ ॥

इस दुनियांदी मोजसों, तू गरवगहल्ला ।
भया भार खम पुरुष, ज्यों छप्पर विच बल्ला ॥

सुपनैदा सुख मान तैं, अपना घर घल्ला ।
फिरा भरमकी भौंरमें, तू सहज विलल्ला ॥ ७ ॥

जोग अडंबर तैं किया, कर अंबर मल्ला ।
अंग विभूति लगायके, लीनी मृग छल्ला ॥

है वनवासी तैं तजा, घरवार महल्ला।
अप्पापर न पिछाणियां, सब झूंठी गल्ला ॥ ८ ॥

माया मिथ्या अग्रसोच, ये तीनों सल्ला।
तिहुं वादी करतूतसों, जियदा उरझल्ला॥

ज्यों रुधिरादी पुट्टसों, पट दीसै लल्ला।
रुधिरानलहि पखालिये, नहिं होय उजल्ला ॥ ९ ॥

जब लग तेरी समझमें, होंदी हल चल्ला।
सुजश बढ़ाई लाभनो, करदा छल बल्ला ॥

तबलग तू स्याणा नहीं, क्या मारइ कल्ला।
सोर करंदा पालणै, ज्यों झूलै लल्ला ॥ १० ॥

किण तूं जकरा सांकला, किण पकरा पल्ला।
मिदमकरा जौं उरझिया, उर जाल उगल्ला ॥

चेतन जड़ संजोगमैं, तैं टांका झल्ला।
तुहीं छुड़ावहि आपको, लख रूप इकल्ला ॥ ११ ॥

जो तैं दारिद मानिया, है ठलमठल्ला।
जो तू मानहि संपदा, भरि दामहु गल्ला॥

जो तू हुवा करंकसा, अरु मोगर मल्ला।
सो सब नाना रूप है, नाचै पुद्गल्ला ॥ १२ ॥

जो कुरूप दुरलच्छणा, जो रूप रसल्ला।
वे संघा भरि जोवना, बूढा अरु बल्ला ॥

लंब मझोला ठींगना, गोरा अरु कल्ला।
सो सब नानारूप है, निहचै पुद्गल्ला ॥ १३ ॥

जो जीरण है झरपड़ै, जो होय नवल्ला।
जो मुरझावै सुककै, फुल्ला अरु फल्ला ॥

जो पानीमें वह चलै, पावकमें जल्ला।
सो सब नानारूप है, निहचै पुद्गल्ला ॥ १४ ॥

एक कर्म दीसै दुवा, ज्यों तुल्दा पल्ला।
हल्वै तन गुरुवैतसों, अघ ऊरघ चल्ला ॥

अशुभरूप शुभरूप है, दुहु दिशिनो चल्ला।
धरै दुविधि विस्तार जों, वट विरख जटल्ला॥ १५ ॥

पवन परे रे जो उडै, माटी विच गल्ला।
जो अकाशमें देखिये, चल रूप अचल्ला ॥

पापी पावक पौन भू, चहुंधामें रल्ला।
सो सब नाना रूप है, निहचै पुद्गल्ला ॥ १६ ॥

खिणरोवे खिणमें हँसे, ज्यों मदमतवल्ला।
त्यों दुहुंवादी मौजसों, वेहोश सँभल्ला ॥

ईकसवीच विनोद है, इकमें खलफल्ला।
समदृष्टी सज्जन करै, दुहुंसो हल्भल्ला ॥ १७ ॥

जाति दुहूंकी एक ज्यों, मणि पत्थर डल्ला।
जल विथार सँकोच सों, कहिए नदि नल्ला ॥

उद्धत जलपरवाहमें, जौं मौर बुलल्ला ।
त्यों इस कर्म विपाकदे, विच ऊंचा खल्ला ॥ १८ ॥
दुहुंदा अथिर स्वभाव है, नहिं कोई अटल्ला ।
ऊंच नीच इक सम करै, कलिकाल पटल्ला ॥
अध ऊरध ऊरध अधो, थिति उथल पुथल्ला ।
अरहट हार विहारमें, क्या ऊपर तल्ला ॥ १९ ॥
पाया देवशरीरज्यों, नलनीर उछल्ला ।
भव पूरण कर दहि पया, फिर जल ज्यों ढल्ला ॥
पुण्य पाप विच खेद है, यह भेद न भल्ला ।
ज्ञान क्रिया निरदोष है, जहँ मोख महल्ला ॥ २० ॥
वतनु तु साडा मोहमैं, जौं रोह रुहल्ला ।
थिति प्रवाण तुझ नो भया, गुरुज्ञान दुहल्ला ॥
अब घट अंतर घटगई, भव भीर चुहल्ला ।
परम चाह परगट भई, शिव राह सहल्ला ॥ २१ ॥
ज्ञान दिवाकर ऊगियो, मति किरण प्रवल्ला ।
है शत खंड विहंडिया, भ्रम तिमर पटल्ला ॥
सत्य प्रतापै भंजिया, दुर्गती दुहल्ला ।
अंगि अंगोरे दज्झिया, जौं तूल पहल्ला॥ २२ ॥

दोहा ।

यह सतगुरुदी देशना, कर आसव दीवाड़ि ।
लद्धी पैड़ि मोखदी, करम कपाट उघाड़ि ॥ २३ ॥

भव थिति जिनकी घटगई, तिनको यह उपदेश ।
कहत बनारसिदास यों, मूढ़ न समुझै लेश ॥ २१ ॥

इति श्रीमोक्षपैंडी.

अथ कर्मछत्तीसी लिख्यते.

दोहा ।

परम निरंजन परमगुरु, परमपुरुष परधान ।
वन्दहुं परमसमाधिगत, भवभंजन भगवान ॥ १ ॥

जिनवाणी परमाण कर, सुगुरु सीख मन आन ।
कछुक जीव अरु कर्मको, निर्णय कहों बखान ॥ २ ॥

अगम अनंत अलोकनभ, तामें लोक अकाश ।
सदाकाल ताके उदर, जीव अजीव निवास ॥ ३ ॥

जीव द्रव्यकी द्वै दशा, संसारी अरु सिद्ध ।
पंच विकल्पअजीव के, अखय अनादि असिद्ध ॥ ४ ॥

गगन, काल, पुद्गल, धरम, अरु अधर्म अभिधान ।
अब कछु पुद्गल द्रव्यको, कहों विशेष विधान ॥ ५ ॥

चरमदृष्टिसों प्रगट है, पुद्गल द्रव्य अनंत ।
जड़ लक्षण निर्जीव दल, रूपी मूरतिवंत ॥ ६ ॥

जो त्रिभुवन थिति देखिये, थिर जंगम आकार ।
सो पुद्गल परवानको, है अनादि विस्तार ॥ ७ ॥

अब पुद्गलके बीसगुण, कहों प्रगट समुझाय ।
गर्भित और अनन्तगुण, अरु अनन्त परजाय ॥ ८ ॥

श्याम पीत उज्ज्वल अरुण, हरित मिश्र बहु भांति ।
विविधवर्ण जो देखिये, सो पुद्गलकी कांति ॥ ९ ॥

आमल तिक्त कषाय कटु, क्षार मधुर रसभोग ।
ए पुद्गलके पांचगुण, घट मानहिं सबलोग ॥ १० ॥

तातो सीरो चीकनो, रुखो नरम कठोर ।
हलको अरु भारीसहज, आठ फरस गुणजोर ॥ ११ ॥

जो सुगंध दुर्गंधगुण, सो पुद्गलको रूप ।
अब पुद्गल परजायकी, महिमा कहों अनूप ॥ १२ ॥

शब्द, गंध, सूक्षम, सरल, लम्ब, वक्र, लघु थूल ।
बिछुरन, भिदन, उदोत, तम, इनको पुद्गल मूल ॥ १३ ॥

छाया, आकृति, तेज, दुति, इत्यादिक बहु भेद ।
ए पुद्गलपरजाय सब, प्रगटहिं होय उछेद ॥ १४ ॥

केई शुभ केई अशुभ, रुचिर, भयानक भेष ।
सहज सभाव विभाव गति, अरु सामान्य विशेष ॥ १५ ॥

गर्भित पुद्गलपिंडमें, अलख अमूरति देव ।
फिरै सहज भवचक्रमें, यह अनादिकी टेव ॥ १६ ॥

पुद्गलकी संगति करै, पुद्गलहीसों प्रीति ।
पुद्गलको आपा गणै, यहै भरमकी रीति ॥ १७ ॥

जे जे पुद्गलकी दशा, ते निज मानै हंस।
याही भरम विभावसों, बढै करमको वंश ॥ १८ ॥

ज्यों ज्यों कर्म विपाकवश, ठानै भ्रमकी मौज।
त्यों त्यों निज संपति दुरै, जुरै परिग्रह फौज ॥ १९ ॥

ज्यों वानर मदिरा पिये, विच्छू डंकित गात।
भूत लगै कौतुक करै, त्यों भ्रमको उत्पात ॥ २० ॥

भ्रम संशयकी भूलसों, लहै न सहज स्वकीय।
करम रोग समुझै नहीं, यह संसारी जीय ॥ २१ ॥

कर्म रोगके द्वै चरण, विषम दुहूंकी चाल।
एक कंप प्रकृती लिये, एक ऐंठि असराल ॥ २२ ॥

कंपरोग है पाप पद, अकर रोग है पुण्य।
ज्ञान रूप है आतमा, दुहूं रोगसों शून्य ॥ २३ ॥

मूरख मिथ्यादृष्टिसों, निरखै जगकी रीस।
डरहिं जीव सब पापसों, करहिं पुण्यकी हौंस ॥ २४ ॥

उपजै पापविकारसों, भय तापादिक रोग।
चिन्ता खेद विथा बढ़ै, दुखमानै सबलोग ॥ २५ ॥

उपजै पुण्यविकारसों, विषयरोग विस्तार।
आरत रुद्र विथा बढै, सुख मानै संसार ॥ २६ ॥

दोऊ रोग समान है, मूढ न जानै रीति।
कंपरोगसों भय करै, अकररोगसों प्रीति ॥ २७ ॥

भिन्न २ लक्षण लखे, प्रगट दुहूंकी भांति ।
एक लिये उद्वेगता, एक लिये उपशांति ॥ २८ ॥
कच्छपकीसी सकुच है, वक्र तुरगकी चाल ।
अंधकारकोसो समय, कंपरोगके भाल ॥ २९ ॥
बकरकूंदसी उमँग है, जकरबन्दकी चाल ।
मकरचांदनीसी दिपै, अकररोगके माल ॥ ३० ॥
तमउदोत दोऊ प्रकृति, पुद्गलकी परजाय ।
भेदज्ञान बिन मूढ़ मन, भटक भटक भरमाय ॥ ३१ ॥
दुहूं रोगको एक पद, दुहुंसों मोक्ष न होय ।
बिनाशीक दुहुंकी दशा, विरला बूझै कोय ॥ ३२ ॥
कोऊ गिरै पहाड़ चढ़, कोऊ बूढ़ै कूप ।
मरण दुहूको एक सो, कहिवेको द्वै रूप ॥ ३३ ॥
भववासी दुविधा धरै, तातैं लखै न एक ।
रूप न जानै जलधिको, कूप कोपको भेक ॥ ३४ ॥
माता दुहुंकी वेदनी, पिता दुहूंको मोह ।
दुहु वेड़ींसो बंधि रहे, कहवत कंचन लोह ॥ ३५ ॥
जाति दुहूंकी एक है, दोय कहै जो कोय ।
गहै आचरै सरदहै, सुरवलभ है सोय ॥ ३६ ॥
जाके चित जैसी दशा, ताकी तैसी दृष्टि ।
पंडित भव खंडित करै, मूढ वढावै सृष्टि ॥ ३७ ॥

इति कर्म छत्तीसी.

अथ ध्यानबत्तीसी लिख्यते.

दोहा।

ज्ञान सरूप अनन्त गुण, निराबाध निरुपाधि।
अविनाशी आनन्दमय, वन्दहुं ब्रह्मसमाधि ॥ १ ॥

भानु उदय दिनके समय, चन्द्र उदय निशि होत।
दोऊ जाके नाम मैं, सो गुरु सदा उदोत ॥ २ ॥

चौपाई। (सोळा मात्रा)

चेतहु प्राणी सुन गुरुवाणी। अमृतरूप सिद्धांत बखानी।
परगट दोऊं नय समुझावैं। मरमी होय मरम सो पावैं॥ ३॥
चेतन जड अनादि संजोगी। आपहि करता आपहि भोगी।
सहज सभाव शकति जब जागै। तब निहचैके मारग लागै ४
फिरकै देहबुद्धि जब होई। नयव्यवहार कहावै सोई।
भेदभाव गुन पंडित बूझै। जाको अगम अगोचर सूझै॥ ५॥
प्रथमहि दान शील तप भावै। नय निहचै विवहार लखावै।
परगुणत्यागबुद्धि जब होई। निहचै दान कहावै सोई॥ ६॥
चेतन निज सभावमहं आवै। तब सो निश्चयशील कहावै।
कर्मनिर्जरा होय विशेषै। निश्चय तप कहिये इह लेषै॥ ७॥
विमलरूप चेतन अभ्यासै। निश्चयभाव तहां परगासै।
अब सदगुरु व्यवहार बखानै। जाकी महिमा सब जगजानै ८
मनवचकाय शकति कछु दीजे। सो व्यवहारी दान कहीजे।
मनवचकाय तजै जब नारी। कहिये सोइ शील विवहारी॥९॥

मनवचकाय कष्ट जब सहिये। तासों विवहारी तप कहिये।
मनवचकाय लगनि ठहरावै। सो विवहारी भाव कहावै॥१०॥

दोहा।

दान शील तप भावना, चारों सुख दातार।
निहचै सो निहचै मिलै, विवहारी विवहार॥ ११॥

चौपाई।

अब सुन चार ध्यान हितकारी। साधहिं मुक्तिपंथ व्यापारी॥
मुद्रा मूरति छवि चतुराई। कलाभेष बलवेस बढाई॥ १२॥
फरस बरण रस गंध सुभाखा। इह रूपस्थध्यानकी शाखा॥
इनकी संगति मनसा साधै। लगन सीख निज गुण आराधै१३
रहै मगन सो मूढ कहावै। अलख लखाव विचच्छण पावै॥
अर्हंत आदि पंच पदलीजे। तिनके गुणको सुमरण कीजे १४
गुणको खोज करत गुण लहिये। परमपदस्थध्यान सो कहिये॥
चंचलता तज चित्त निरोधै। ज्ञानदृष्टि घटअन्तर शोधै॥१५॥
भिन्न भिन्न जड़ चेतन जोवै। गुण विलेच्छ गुणमाहिं समोवै।
यह पिंडस्थध्यान सुखदाई। कर्मनिरजरा हेत उपाई॥ १६॥
आप संभार आपसों जोरै। परगुणसों सब नाता तोरै॥
लगै समाधि ब्रह्ममय होई। रूपातीत कहावै सोई॥ १७॥

दोहा।

यह रूपस्थपदस्थविधि, अरु पिंडस्थविचार।
रूपातीत वितीत मल, ध्यान चार परकार॥ १८॥

चौपाई।

ज्ञानी ज्ञान भेद परकाशै। ध्यानी होय सो ध्यान अभ्यासै॥
आर्त रौद्र कुध्यानहिं त्यागै। धर्मशुक्लके मारग लागै॥१९॥
आरत ध्यान चिंतवन कहिये। जाकी संगति दुरगतिलहिये॥
इष्टविजोग विकलता भारी। अरि अनिष्ट संजोग दुखारी॥२०॥
तनकी व्यथा मगन मन झूरै। अग्र शोचकर वांछित पूरै॥
ए आरतके चारों पाये। महा मोहरससों लपटाये॥ २१॥
अब सुन रौद्र ध्यानकी सैली। जहां पापसों मतिगति मैली॥
मनउछाहसों जीव विराधै। हिये हर्षधर चोरी साधै॥ २२॥
विकसित झूटवचन मुखभाखै। आनंदितचितविषया राखै॥
चारों रौद्र ध्यानके पाये। कर्मबन्धके हेतु बनाये॥ २३॥

दोहा।

आरतरौद्र विचारतें, दुखचिन्ता अधिकाय।
जैसें चढ़ै तरंगिनी, महामेघ जलपाय॥ २४॥

चौपाई।

आर्त रौद्र कुध्यान बखानै। धर्मध्यान अब सुनहु सयाने॥
केवल भाषित वाणी मानै। कर्मनाशको उद्यम ठानै॥ २५॥
पूरवकर्म उदय पहिचानै। पुरुषाकार लोकथिति जानै॥
चारों धर्म ध्यानके पाये। जे समुझे ते मारग आये॥ २६॥
अब सुन शुक्ल ध्यानकी बातैं। मिटै मोहकी सत्ता जातैं।
जोग साध सिद्धांत विचारै। आतम गुण परगुण निरवारै २७

उपशम क्षपक श्रेणि आरोहै। पृथक्त वितर्क आदि पद सो है॥
उपशम पंथ चढ़ै नहिं कोई। क्षपकपंथ निर्मल मन होई॥२८॥
तब मुनि लोकालोकविकासी। रहहिं कर्मकी प्रकृति पचासी॥
केवल ज्ञान लहै जग पूजा। एक वितर्क नाम पद दूजा॥२९॥
जिनवर आयु निकट जब आवै। तहां बहत्तर प्रकृति खपावै॥
सूक्षम चित्त मनोबल छीजा। सूक्षम क्रिया नाम पद तीजा३०
शक्ति अनंत तहां परकाशै। ततखिन तेरह प्रकृति विनाशै॥
पंच लघूक्षर परमित बेरा। अष्ट कर्मको होय निवेरा॥ ३१॥
चरण चतुर्थ साध शिव पावै। विपरीत क्रिया निर्वृत्ति कहावै॥
शुक्ल ध्यानके चारों पाये। मुक्तिपंथकारण समुझाये॥ ३२॥

शुक्ल ध्यान औषधि लगे, मिटै करमको रोग।
कोइला छांड़ै कालिमा, होत अग्निसंजोग॥ ३३॥

*यह परमारथ पंथ गुन, अगम अनन्त बखान।
कहत बनारसि अल्पमति, जथासकति परवान॥ ३४॥

इति ध्यानबत्तीसी.

अथ अध्यातमबत्तीसी लिख्यते.

शुद्ध वचन सदगुरु कहै, केवल भाषित अंग।
लोक पुरुषपरिमाण सब, चौदह रज्जु उतंग॥ १॥

---

* यह दोहा "ख,, "ग,, प्रतिमें नहीं है.

घृतघटपूरित लोकमें, धर्म अधर्म अकास ।
काल जीव पुद्गल सहित, छहों दर्वको वास ॥ २ ॥

छहों दरब न्यारे सदा, मिलै न काहू कोय ।
छीर नीर ज्यों मिल रहे, चेतन पुद्गल दोय ॥ ३ ॥

चेतन पुद्गल यों मिलें, ज्यों तिलमें खलि तेल ।
प्रगट एकसे देखिये, यह अनादिको खेल ॥ ४ ॥

वह वाके रससों रमै, वह वासों लपटाय ।
चुम्बक करषै लोहको, लोह लगै तिहँ धाय ॥ ५ ॥

जड़ परगट चेतन गुपत, द्विविधा लखै न कोय ।
यह दुविधा सोई लखै, जो सुविचक्षण होय ॥ ६ ॥

ज्यों सुवास फल फूलमें, दही दूधमें घीव ।
पावक काठ पषाणमें, त्यों शरीरमें जीव ॥ ७ ॥

कर्मस्वरूपी कर्ममें, घटाकार घटमाहिं ।
गुणप्रदेश प्रच्छन्न सब, यातें परगट नाहिं ॥ ८ ॥

सहज शुद्ध चेतन वसै, भावकर्मकी ओट ।
द्रव्यकर्म नोकर्मसों, बँधी पिंडकी पोट ॥ ९ ॥

ज्ञानरूप भगवान शिव, भावकर्म चित भर्म ।
द्रव्यकर्म तनकारमन, यह शरीर नोकर्म ॥ १० ॥

ज्यों कोठीमें धान थो, चमी मांहि कनजान ।
चमी धोय कन राखिये, कोठी धोए कीच ॥ ११ ॥

कोठी सम नोकर्म मल, द्रव्य कर्म ज्यों धान ।
भावकर्ममल ज्यों चमी, कन समान भगवान ॥१२॥
द्रव्यकर्म नोकर्ममल, दोऊ पुद्गल जाल ।
भावकर्म गति ज्ञान मति, द्विविधि ब्रह्मकी चाल ॥१३
द्विविधि ब्रह्मकी चालसों, द्विविधि चक्रको फेर ।
एक ज्ञानको परिणमन, एक कर्मको घेर ॥ १४ ॥
ज्ञानचक्र अन्तर गुपत, कर्मचक्र प्रत्यक्ष ।
दोऊ चेतनभाव ज्यों, शुक्लपक्ष, तमपक्ष ॥ १५ ॥
निज गुण निज परजायमें, ज्ञानचक्रकी भूमि ।
परगुण पर परजायसों, कर्मचक्रकी घूमि ॥ १६ ॥
ज्ञानचक्रकी ढरनिमें, सजेग[1] भांति सब ठौर ।
कर्मचक्रकी नींदसों, मृषा स्वमकी दौर ॥ १७ ॥
ज्ञानचक्र ज्यों दरशनी, कर्मचक्र ज्यों अंध ।
ज्ञानचक्रमें निर्जरा, कर्मचक्रमें बंध ॥ १८ ॥
ज्ञानचक्र अनुसरणको, देव धर्म गुरु द्वार ।
देव धर्म गुरु जो लखें, ते पावें भवपार ॥ १९ ॥
भववासी जानै नहीं, देवधरमगुरुभेद ।
परचो मोहके फन्दमें, करै मोक्षको खेद ॥ २० ॥
उदय सुकर्म कुकर्मके, रुलै चतुर्गति माहिं ।
निरखै वाहिजदृष्टिसों, तहँ शिवमारग नाहिं ॥ २१ ॥

---

१ जागते हुए.

देवधर्म गुरु हैं निकट, मूढ़ न जानै ठौर।
बँधी दृष्टि मिथ्यातसों, लखै औरकी ओर ॥ २२ ॥

भेषधारिको गुरु कहै, पुण्यवन्तको देव।
धर्म कहै कुल रीतिको, यह कुकर्मकी टेव ॥ २३ ॥

देव निरंजनको कहै, धर्म वचन परवान।
साधु पुरुषको गुरु कहै, यह सुकर्मको ज्ञान ॥ २४ ॥

जानै मानै अनुभवै, करै भक्ति मन लाय।
परसंगति आस्रव सधै, कर्मबन्ध अधिकाय ॥ २५ ॥

कर्मबंधतें भ्रम बढ़ै, भ्रमतें लखै न बाट।
अंधरूप चेतन रहै, विना सुमति उद्घाट ॥ २६ ॥

सहजमोह जब उपशमैं, रुचै सुगुरु उपदेश।
तब विभाव भवथिति घटै, जगै ज्ञान गुण लेश॥२७॥

ज्ञानलेश सो है सुमति, लखै मुकतिकी लीक।
निरखै अन्तरदृष्टिसों, देव धर्म गुरु ठीक ॥ २८ ॥

ज्यों सुपरीक्षित जौंहरी, काच डाल मणि लेय।
त्यों सुबुद्धि मारग गहै, देव धर्म गुरु सेय ॥ २९ ॥

दर्शन चारित ज्ञान गुण, देव धर्म गुरु शुद्ध।
परखै आतम संपदा, तजै सनेह विरुद्ध ॥ ३० ॥

अरचै दर्शन देवता, चरचै चारित धर्म।
दिढ़ परचै गुरुज्ञानसों, यह सुमतिको कर्म ॥ ३१ ॥

सुमतिकर्मतें शिव सधै, और उपाय न कोय।
शिवस्वरूप परकाशसों, आवागमन न होय ॥ ३२ ॥
सुमतिकर्म सम्यक्तसों, देव धर्म गुरु द्वार।
कहत बनारसि तत्त्व यह, लहि पावें भवपार ॥३३॥

इति श्रीअध्यातमबत्तीसी.

अथ श्री ज्ञानपच्चीसी लिख्यते.

सुरनर तिर्यग योनिमें, नरक निगोद भवंत।
महा मोहकी नींदसों, सोये काल अनंत ॥ १ ॥
जैसें ज्वरके जोरसों, भोजनकी रुचि जाइ।
तैसें कुकरमके उदय, धर्मवचन न सुहाइ ॥ २ ॥
लगै भूख ज्वरके गये, रुचिसों लेय अहार।
अशुभ गये शुभके जगे, जानै धर्मविचार ॥ ३ ॥
जैसें पवन झकोरतें, जलमें उठै तरंग।
त्यों मनसा चंचल भई, परिगहके परसंग ॥ ४ ॥
जहां पवन नहिं संचरै, तहां न जल कल्लोल।
त्यों सब परिगृह त्यागसों, मनसा होय अडोल ॥५॥
ज्यों काहू विषधर डसै, रुचिसों नीम चबाय।
त्यों तुम ममतासों मढे, मगन विषयसुख पाय ॥ ६ ॥

१ यह दोहा ख, ग, प्रतिमें नहीं है.

नीम रसन परसै नहीं, निर्विष तन जब होय।
मोह घटे ममता मिटै, विषय न वांछै कोय ॥ ७ ॥

ज्यों सछिद्र नौका चढ़े, बूडइ अंध अदेख।
त्यों तुम भवजलमें परे, विन विवेक घर भेख ॥ ८ ॥

जहां अखंडित गुण लगे, खेवट शुद्धविचार।
आतम रुचि नौका चढे, पावहु भव जल पार ॥ ९ ॥

ज्यों अंकुश मानै नहीं, महामत्त गजराज।
त्यों मन तृष्णामें फिरै, गणै न काज अकाज ॥१०॥

ज्यों नर दाव उपावकैं, गहि आनै गज साधि।
त्यों या मनवश करनको, निर्मल ध्यान समाधि ॥११॥

तिमिररोगसों नैन ज्यों, लखै औरकी और।
त्यों तुम संशयमें परे, मिथ्या मतिकी दौर ॥ १२ ॥

ज्यों औषध अंजन किये, तिमिररोग मिट जाय।
त्यों सतगुरुउपदेशतैं, संशय वेग विलाय ॥ १३ ॥

जैसें सब जादव जरे, द्वारावतिकी आग।
त्यों मायामें तुम परे, कहां जाहुगे भाग ॥ १४ ॥

दीपायनसों ते वचे, जे तपसी निर्ग्रन्थ।
तज माया समता गहो, यहै मुकतिको पंथ ॥ १५ ॥

ज्यों कुधातुके फेटसों, घटवढ़ कंचनकांति।
पापपुण्य कर त्यों भये, मूढ़ातम वहु भांति ॥ १६ ॥

कंचन निज गुण नाहिं तजै, वानहीनके होत ।
घटघट अंतर आतमा, सहजस्वभाव उदोत ॥ १७ ॥
पन्ना पीट पकाइये, शुद्ध कनक ज्यों होय ।
त्यों प्रगटै परमातमा, पुण्यपापमलखोय ॥ १८ ॥
पर्व राहुके ग्रहणसों, सूर सोम छविछीन ।
संगति पाय कुसाधुकी, सज्जन होंहि मलीन ॥ १९ ॥
निंबादिक चन्दन करै, मलयाचलकी बास ।
दुर्ज्जनतैं सज्जन भये, रहत साधुके पास ॥ २० ॥
जैसैं ताल सदा भरै, जल आवै चहुं ओर ।
तैसैं आस्रवद्वारसों, कर्मबंधको जोर ॥ २१ ॥
ज्यों जल आवत मूंदिये, सूखै सरवर पानि ।
तैसैं संवरके किये, कर्म्म निर्ज्जरा जानि ॥ २२ ॥
ज्यों बूटी संजोगतैं, पारा मूर्छित होय ।
त्यों पुद्गलसों तुम मिले, आतमशक्ति समोय ॥ २३ ॥
मेल खटाई मांजिये, पारा परगट रूप ।
शुक्लध्यान अभ्यासतैं, दर्शनज्ञान अनूप ॥ २४ ॥
कहि उपदेश बनारसी, चेतन अब कछु चेतु ।
आप बुझावत आपको, उदय करनके हेतु ॥ २५ ॥

इति श्रीज्ञानपच्चीसी.

---

१ अन्यधातुकी खादसहित होनेसे.

अथ शिवपचीसी लिख्यते.

दोहा ।

ब्रह्मविलास विकाशधर, चिदानन्द गुणठान ।
बन्दों सिद्धसमाधिमय, शिवस्वरूप भगवान ॥ १ ॥
मोह महातम नाशिनी, ज्ञान उदधिकी सींव ।
बन्दों जगतविकाशनी, शिवमहिमा शिवनींव ॥ २ ॥

चौपाई ।

शिवस्वरूप भगवान अवाची । शिवमहिमाअनुभवमति सांची॥
शिवमहिमा जाके घट भासी । सो शिवरूप हुवा अविनासी ३
जीव और शिव और न होई । सोई जीववस्तु शिव सोई ॥
जीव नाम कहिये व्यवहारी । शिवस्वरूप निहचै गुणधारी ४
करै जीव जब शिवकी पूजा । नामभेदतैं होय न दूजा ॥
विधि विधानसों पूजा ठानै । तब शिव आप आपको जानै ५
तन मंडप मनसा जहँ वेदी । शुभलेश्या गह सहज सफेदी ॥
आतमरुचि कुंडली बखानी । तहां जलहरी गुरुकी बानी ६
भावलिंग सो मूरति थापी । जो उपाधि सो सदा अव्यापी ॥
निर्गुणरूप निरंजन देवा । सगुणस्वरूप करै विधिसेवा ॥ ७ ॥
समरस जल अभिषेक करावै । उपशम रसचन्दन घसि लावै ॥
सहजानन्द पुष्प उपजावै । गुणगर्भित जयमाल चढावै ॥८॥
ज्ञानदीपकी शिखा संवारै । स्याद्वाद घंटा झुनकारै ॥
अगम अध्यातम चौंर ढुलावै । क्षायक धूप स्वरूप जगावै ॥९॥

निहचै दान अर्घविधि होवै । सहजशील गुण अक्षत ढोवै ॥
तप नेवज काढै रस पागै । विमलभाव फल राखइ आगै १०

जो ऐसी पूजा करै, ध्यानमगन शिवलीन ।
शिवस्वरूप जगमें रहै, सो साधक परवीन ॥ ११ ॥

सो परवीन मुनीश्वर सोई । शिवमुद्रा मंडित जो होई ॥
सुरसरिता करुणारसवाणी । सुमति गौरि अर्द्धङ्ग वखानी॥१२॥
त्रिगुणभेद जहँ नयन विशेखा । विमलभावसमकित शशिलेखा ॥
सुगुरु शीख सिंगी उर बांधै । नयविवहार बाघम्बर कांधै ॥१३॥
कबहूं तन कैलाश कलोलै । कबहुं विवेकबैल चढ़ डोलै ॥
रुंडमाल परिणाम त्रिभंगी । मनसा चक्र फिरै सरवंगी ॥ १४ ॥
शक्ति विभूति अंगछवि छाजै । तीन गुपति तिरशूल विराजै ।
कंठ विभाव विषम विष सोहै । महामोह विषहर नहिं पोहै १५
संजम जटा सहज सुख भोगी । निहचैरूप दिगम्बर जोगी ॥
ब्रह्म समाधिध्यान गृह साजै । तहां अनाहत डमरू बाजै॥१६॥

पंच भेद शुभज्ञान गुण, पंच वदन परधान ।
ग्यारह प्रतिमा साधतैं, ग्यारह रुद्र समान ॥ १७ ॥

मंगल करन मोखपद ज्ञाता । यातैं शंकर नाम विख्याता ॥
जब मिथ्यामत तिमर विनाशै । अंधकहरण नाम परकाशै १८
ईश महेश अखयनिधिस्वामी । सर्व नाम जग अंतरजामी ॥
त्रिभुवन त्याग रमै शिवठामा । कहिये त्रिपुरहरण तब नामा १९

अष्टकर्मसों मिड़ै अकेला । महारुद्र कहिये तिहिं वेला ॥
मनकामना रहै नहिं कोई । कामदहन कहिये तब सोई ॥२०॥
भववासी भवनाम धरावै । महादेव यह उपमा पावै ॥
आदि अन्त कोई नहिं जानै । शंभुनाम सब जगत बखानै २१
मोहहरण हर नाम कहीजे । शिवस्वरूप शिवसाधन कीजे ॥
तज करनी निश्चयमें आवै । तब जगभंजन विरद कहावै २२
विश्वनाथ जगपति जग जानै । मृत्युंजय तम मृत्यु न मानै ॥
शुक्ल ध्यान गुण जब आरोहै । नाम कपूरगौर तब सोहै ॥२३॥

इहिविधि जे गुण आदरै, रहै राचि जिहँ ठाँव ।
जिहँ जिहँ मारग अनुसरै, ते सब शिवके नाँव ॥२४॥
नांव जथामति कल्पना, कहूं प्रगट कहुं गूढ़ ।
गुणी विचारै वस्तु गुण, नाँव विचारै मूढ़ ॥ २५ ॥
मूढ़ मरम जानै नहीं, करै न शिवसों प्रीति ।
पंडित लखै बनारसी, शिवमहिमा शिवरीति ॥ २६ ॥

इति शिवपचीसी.

अथ भवसिन्धुचतुर्दशी लिख्यते.

जैसें काहू पुरुषको, पार पहुंचवे काज ।
मारगमाहि समुद्र तहां, कारणरूप जहाज ॥ १ ॥
तैसें सम्यकवंतको, और न कछू इलाज ।
भवसमुद्रके तरणको, मन जहाजसों काज ॥ २ ॥

मनजहाज घटमें प्रगट, भवसमुद्र घटमाहिं ।
मूरख मर्म न जानहीं, बाहिर खोजन जाहिं ॥ ३ ॥
मूरखहूके घटविषै, जलजहाज अरु पौन ।
दृगमुद्रित मा¹लीम तहँ, लखै सँभारै कौन? ॥ ४ ॥
कर्मसमुद्र विभाव जल, विषयकषाय तरंग ।
बडवागनि तृष्णा प्रबल, ममता धुनि सरवंग ॥ ५ ॥
भरमभँवर तामें फिरै, मनजहाज चहुं ओर ।
गिरै खिरै बूड़ै तिरै, उदय पवनके जोर ॥ ६ ॥
जब चेतन मालिम जगै, लखै विपाक नजूम ।
डारै समता शृंखला, थकै भँवरकी घूम ॥ ७ ॥
मालिम सहज समुद्रको, जानै सब विरतंत ।
शुभोपयोग तहँ रत्न सम, अशुभ भाव जलजंत ॥८॥
जन्तु देख नहिं भय करै, रत्न देख उच्छाह ।
करै गमन शिवदीपको, यह मालिमकी चाह ॥ ९ ॥
दिशि परखै गुणजंत्रसों, फेरै शकति सुखान ।
धरै साथ शिवदीपमुख, बादवान शुभध्यान ॥ १० ॥
चहै शुद्ध उद्धत पवन, गहै क्षिपक दिशिलीक ।
लहै खबर शिवदीपकी, रहै दृष्टिगति ठीक ॥ ११ ॥
मनजहाज इहिविधि चलै, गेहै सिंधुजलवाट ।
आवै निज संपतिनिकट, पावै केवल घाट ॥ १२ ॥

१ कहै ऐसाभी पाठ है.

मालिम उतर जहाजसों, करै दीप को दौर।
तहां न जल न जहाज गति, नहिं करनी कछु और॥१३॥
मालिमकी कालिममिटी, मालिम दीप न दोय।
यह भवसिन्धुचतुर्दशीं, मुनिचतुर्दशी होय॥ १४॥

इति सिन्धुचतुर्दशी.

अथ अध्यातम फाग लिख्यते.

अध्यातम विन क्यों पाइये हो, परमपुरुषको रूप।
अघट अंग घट मिल रह्यो हो, महिमा अगम अनूप॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १ ॥

विषम विरप पूरो भयो हो, आयो सहज वसंत।
प्रगटी सुरुचि सुगंधिता हो, मन मधुकर मयमंत॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ २ ॥

सुमति कोकिला गह गही हो, वही अपूरव वाउ।
भरम कुहर बादरफटे हो, घट जाडो जड़ ताउ॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ ३ ॥

मायारजनी लघु भई हो, समरस दिवशशिजीत।
मोहपंककी थिति घटी हो, संशय शिशिर व्यतीत॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ ४ ॥

शुभ दल पल्लव लहलहे हो, होहिं अशुभ पतझार।
मलिन विषय रति मालती हो, विरति वेलिविस्तार॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ ५ ॥

शशिविवेक निर्मल भयो हो, थिरता अमिय झकोर ।
फैली शक्ति सुचन्द्रिका हो, प्रमुदित नैन चकोर ॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ ६ ॥

सुरति अग्निज्वाला जगी हो, समकित भानु अमन्द ।
हृदयकमल विकसित भयो हो, प्रगट सुजश मकरन्द ॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ ७ ॥

दिढ कषाय हिमगिर गले हो, नदी निर्ज्जरा जोर ।
धार धारणा बहचली हो, शिवसागर मुख ओर ॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ ८ ॥

वितथवात प्रभुता मिटी हो, जग्यो जथारथ काज ।
जंगलभूमि सुहावनी हो, नृप वसन्तके राज ॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ ९ ॥

भवपरणति चार्चरि भई हो, अष्टकर्म वनजाल ॥
अलख अमूरति आतमा हो, खेलै धर्म धमाल ॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १० ॥

नयपंकति चाचरि मिलि हो, ज्ञानध्यान डफताल ।
पिचकारी पद साधना हो, संवर भाव गुलाल ॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ ११ ॥

राग विराम अलापिये हो, भावभगति शुभ तान ।
रीझ परम रसलीनता हो, दीजे दश विधिदान ॥
भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १२ ॥

---

१ पृथिवी ऐसाभी पाठ है.

दया मिठाई रसभरी हो, तप मेवा परधान।
शील सलिल अति सीयलो हो, संजम नागर पान॥
भला अध्यातमबिन क्यों पाइये॥ १३॥
गुपति अंग परगासिये हो, यह निलज्जता रीति।
अकथ कथा मुखभाखिये हो, यह गारी निरनीति॥
भला अध्यातमबिन क्यों पाइये॥ १४॥
उद्धत गुण रशिया मिले हो, अमल विमल रसप्रेम।
सुरत तरंगमँह छकि रहे हो, मनसा वाचा नेम॥
भला अध्यातमबिन क्यों पाइये॥ १५॥
परम ज्योति परगट भई हो, लगी होलिका आग।
आठ काठ सब जरि बुझे हो, गई तताई भाग॥
भला अध्यातमबिन क्यों पाइये॥ १६॥
प्रकृति पचासी लगि रही हो, भस्म लेख है सोय।
न्हाय धोय उज्ज्वल भये हो, फिर तहँ खेल न कोय॥
भला अध्यातमबिन क्यों पाइये॥ १७॥
सहज शक्ति गुण खेलिये हो, चेत बनारसिदास।
सगे सखा ऐसें कहै हो, मिटै मोहदधि फास॥
भला अध्यातमबिन क्यों पाइये॥ १८॥

इति अध्यातमधमार.

अथ सोलह तिथि लिख्यते.

चौपाई।

परिवा प्रथम कला घट जागी। परम प्रतीतिरीति रसपागी॥
प्रतिपद परम प्रीति उपजावै। वहै प्रतिपदा नाम कहावै॥१॥
दूज दुहूंधी दृष्टि पसारै। स्वपरविवेकधारणा धारै॥
दर्वित भावित दीसै दोई। द्वय नय मानत द्वितीया होई॥२॥
तीज त्रिकाल त्रिगुण परकासै। त्रिविधिरूप त्रिभुवन आभासै॥
तीनों शल्य उपाधि उछेदै। त्रिधा कर्मकी परिणति भेदै॥३॥
चौथ चतुर्गतिको निरवारै। कर चकचूर चौकरी चारै॥
चारों वेद समुझि घर आवै। तव सुअनंत चतुष्टय पावै॥४॥
पांचै पंच सुचारित पालै। पंचज्ञानकी सुरति संभालै॥
पांचों इन्द्रिय करै निरासा। तव पावै पंचमगति वासा॥५॥
छठ छहकाय स्वांग धर सोवै॥ छह रस मगन छ आकृति होवै॥
जव छहदरशनमें न अरूझै। तव छ दर्वसों न्यारो सूझै॥६॥
सातैं सातों प्रकृति खिपावै। सप्तभंग नयसों मन लावै॥
त्यागै सात व्यसनविधि जेती। निर्भय रहै सात भयसेती ७
आठैं आठ महामद भंजै। अष्टसिद्धिरतिसों नहिं रंजै॥
अष्टकर्ममलमूल बहावै। अष्टगुणातम सिद्ध कहावै॥८॥
नौमी नवरसमें रस बेवै। तौ समकित धर नवपद सेवै॥
करै भक्तिविधि नव परकारा। निरखै नवतत्त्वनसों न्यारा॥९॥

दशमी दशदिशिसों मन मोरै। दश प्राणनसों नाता तोरै ॥
दशविधि-दान अभ्यंतर साधै। दशलच्छण मुनिधर्म अराधै १०
ग्यारस ग्यारह प्रकृति विनाशै। ग्यारह प्रतिमापद परकाशै ॥
ग्यारह रुद्र कुलिंग वखानै। ग्यारह विथा जोग जिन मानै ११
वारस वारह विरति वढ़ावै। वारह विधि तपसों तन तावै ॥
वारहभेद भावना भावै। वारह अंग जिनागम गावै ॥ १२ ॥
तेरस तेरह क्रिया संभालै। तेरह विघन काठिया टालै ॥
तेरहविधि संजम अवधारै। तेरह थानक जीव विचारै ॥१३॥
चौदश चौदह विद्या मानै। चौदह गुणथानक पहिचानै ॥
चौदह मारगना मन आनै। चौदहरज्जु लोक परवानै ॥१४॥
पन्द्रस पन्द्रह तिथि गनिलीजे। पन्द्रह पात्र परखि धन दीजे॥
पन्द्रह जोगरहित जो धरणी। सो घट शून्य अमावस वरणी १५
पूनों पूरण ब्रह्मविलासी। पूर गुण पूरण परगासी ॥
पूरण प्रभुता पूरणमासी। कहै साधु तुलसी वनवासी ॥१६॥

इति षोड़सतिथिका.

अथ तेरह काठिया लिख्यते.

जे वटपारै[1] वाटमें, करहिं उपद्रव जोर।
तिन्हें देश गुजरातमें, कहहिं काठियाचोर ॥ १ ॥

1 लुटेरे.

ज्यों यह तेरह काठिया, करहिं धर्मकी हानि।
तातैं कछु इनकी कथा, कहहुं विशेष वखानि ॥ २ ॥
जूआ आलस शोक भय, कुकथा कौतुक कोह।
कृपणबुद्धि अज्ञानता, भ्रम निद्रा मद मोह ॥ ३ ॥

प्रथम काठिया जूआ जान। जामें पंच वस्तुकी हान।
प्रभुता हटै घटै शुभ कर्म। मिटै सुजश विनशै धनवर्म ॥ ४ ॥
द्वितिय काठिया आलसभाव। जासु उदय नाशै विवसाव ॥
बाहिर शिथिल होहिं सब अंग। अंतर धर्मवासना भंग ॥५॥
ठग तीसरो शोक संताप। जासु उदय जिय करै विलाप ॥
सूतक पातक जिहि पर होय। धर्मक्रिया तहँ रहै न कोय॥६॥
भय चतुर्थ काठिया बखान। जाके उदय होय बलहान ॥
उर कंपै नहिं फुरै उपाय। तब सुधर्मउद्यम मिट जाय ॥७॥
ठग पंचम कुकथा बकवाद। मिथ्यापाठ तथा ध्वनिनाद ॥
जबलों जीव मगन इसमाहिं। तबलों धर्म वासना नाहिं॥८॥
कौतूहल छट्ठम काठिया। भ्रमविलाससों हरषै हिया ॥
मृषा वस्तु निरखै धर ध्यान। विनशि जाय सत्यारथ ज्ञान॥९॥
कोप काठिया है सातमा। अग्नि समान जहां आतमा ॥
आप न दाह औरको दहै। तहां धर्मरुचि रंच न रहै ॥१०॥
कृपणबुद्धि अष्टम बटपार। जामें प्रगट लोभ अधिकार ॥
लोभ माहिं ममता परकाश। ममतां करै धर्मको नाश॥११॥

नवमा ठग आज्ञान अगाध । जासु उदय उपजै अपराध ॥
जो अपराध पाप है सोय । जहां पाप तहां धर्म न होय १२
दशम काठिया भ्रम विच्छेप । भ्रमसों अशुभ करमको लेप ॥
अशुभ कर्म दुरमतिकी खानि । दुरमति करै धर्मकी हानि १३
एकादशम काठिया नींद । जासु उदय जिय वस्तु न वींद ॥
मन वच काय होय जड़रूप । बूडै धर्म कर्मघनकूप ॥१४॥
ठग द्वादशम अप्रमद भार । जामें अकररोग अधिकार ॥
अकररोग अरु विनयविरोध । जहँ अविनय तहँ धर्मनिरोध १५
तेरम चरम काठिया मोह । जो विवेकसों करै विछोह ॥
अविवेकी मानुष तिरजंच । धर्मधारणा धरै न रंच ॥ १६ ॥
येही तेरह करम ठग । लेहिं रतन त्रय छीन ॥
यातें संसारी दशा । कहिये तेरह तीन ॥ १७ ॥

इति त्रयोदश काठिया.

अथ अध्यातम गीत लिख्यते.

राग गौरी.

मेरा मनका प्यारा जो मिलै । मेरा सहज सनेही जो मिलै ॥टेक॥
अवधि अजोध्या आतम राम । सीता सुमति करै परणांम ॥
मेरा मनका प्यारा जो मिलै, मेरा सहज० ॥ १ ॥
उपज्यो कंत मिलनको चाव । समता सखीसों कहै इसभाव ॥
मेरा मनका प्यारा जो मिलै, मेरा० ॥ २ ॥

मै विरहिन पियके आधीन। यों तलफों ज्यों जल बिन मीन।
मेरा मनका प्यारा जो मिलै, मेरा० ॥ ३ ॥

बाहिर देखूं तो पिय दूर। घट देखे घटमें भर पूर॥
मेरा० .... ॥ ४ ॥

घटमहि गुप्त रहै निरधार। वचनअगोचर मनके पार॥
मेरा० .... ॥ ५ ॥

अलख अमूरति वर्णन कोय। कवधों पियको दर्शन होय ॥
मेरा० .... ॥ ६ ॥

सुगम सुपंथ निकट है ठौर। अंतर आड विरहकी दौर
मेरा० .... ॥ ७ ॥

जउ देखों पियकी उनहार। तन मन सर्वस डारों वार॥
मेरा० .... ॥ ८ ॥

होहुं मगन मैं दरशन पाय। ज्यों दरियामें बूंद समाय॥
मेरा० .... ॥ ९ ॥

पियको मिलों अपनपो खोय। ओला गल पाणी ज्यों होय॥
मेरा० .... ॥ १० ॥

मैं जग ढूंढ फिरी सव ठोर। पियके पटतर रूप न ओर॥
मेरा० .... ॥ ११ ॥

पिय जगनायक पिय जगसार। पियकी महिमा अगम अपार॥
मेरा० .... ॥ १२ ॥

पिय सुमिरत सब दुख मिट जाहिं। भोरनिरख ज्यों चोर पलाहिं
मेरा० .... ॥ १३ ॥

भयभंजन पियको गुनवाद। गजगंजन ज्यों केहरिनाद॥
मेरा० .... ॥ १४ ॥

भागइ भरम करत पियध्यान। फटइ तिमिर ज्यों ऊगत भान
मेरा० .... ॥ १५ ॥

दोष दुरइ देखत पिय ओर। नाग डरइ ज्यों बोलत मोर॥
मेरा० .... ॥ १६ ॥

बसों सदा मैं पियके गाँउ। पियतज और कहां मैं जाँउ॥
मेरा० .... ॥ १७ ॥

जो पिय जाति जाति मम सोइ। जातहिं जात मिलै सब कोइ
मेरा० .... ॥ १८ ॥

पिय मोरे घट, मैं पियमाहिं। जलतरंग ज्यों द्विविधा नाहिं॥
मेरा० .... ॥ १९ ॥

पिय मो करता मैं करतूति। पिय ज्ञानी मैं ज्ञानविभूति॥
मेरा० .... ॥ २० ॥

पिय सुखसागर मैं सुखसींव। पिय शिवमन्दिर मैं शिवनीव॥
मेरा० .... ॥ २१ ॥

पिय ब्रह्मा मैं सरस्वति नाम। पिय माधव मो कमला नाम॥
मेरा० .... ॥ २२ ॥

पिय शंकर मैं देवि भवानि । पिय जिनवर मैं केवलवानि ॥
मेरा० .... ॥ २३ ॥

पिय भोगी मैं भुक्तिविशेष । पिय जोगी मैं मुद्रा भेष ॥
मेरा० .... ॥ २४ ॥

पिय मो रसिया मैं रसरीति । पिय व्योहारिया मैं परतीति ॥
मेरा० .... ॥ २५ ॥

जहां पिय साधक तहाँ मैं सिद्ध । जहां पिय ठाकुर तहाँ मैं रिद्ध॥
मेरा० .... ॥ २६ ॥

जहां पिय राजा तहाँ मैं नीति । जहँ पिय जोद्धा तहाँ मैं जीति
मेरा० .... ॥ २७ ॥

पिय गुणग्राहक मैं गुणपांति । पिय बहुनायक मैं बहुभांति ॥
मेरा० .... ॥ २८ ॥

जहँ पिय तहँ मैं पियके संग । ज्यों शशि हरिमैं ज्योति अभंग
मेरा० .... ॥ २९ ॥

पिय सुमिरन पियको गुणगान । यह परमारथपंथ निदान ॥
मेरा० .... ॥ ३० ॥

कहइ व्यवहार बनारसिनाव, चेतन सुमति सटी इकठाँव ॥
मेरा० .... ॥ ३१ ॥

इति चेतनसुमतिगीत.

अथ पंचपदविधान लिख्यते.

दोहा.

नमो ध्यानधर पंचपद, पंचसु ज्ञान अराधि ।
पंचसुचरण चितारचित, पंचकरनरिपुसाधि ॥ १ ॥

चौपाई (१५.)

वन्दों श्रीअरहंत अधीश । वन्दों स्वयंसिद्ध जगदीश ॥
वन्दों आचारज उवझाय । वन्दों साधुपुरुषके पाय ॥ २ ॥
एई पंच इष्ट आधार । इनमें देव एक गुरु चार ॥
सिद्ध देव परसिद्ध उदार । गुरु अरहंतादिक अनगार ॥ ३ ॥
सिद्ध सोई जस करै न कोइ । भयो कदाच न कबहूं होइ ॥
अखय अखंडित अविचलधाम । निर्मल निराकार निरनाम ४
अब गुरु कहों चार परकार । परम निधान धरमधनधार ॥
धरमवंत शुभ कर्म सुजान । त्रिभुवनमाहिं पुरुष परधान ॥५॥
प्रथम परमगुरु श्रीअरहंत । द्वितिय परमगुरु सूरि महंत ॥
तृतिय परमगुरु श्रीउवझाय । चौथे परम सुगुरु मुनिराय ॥६॥
परम ज्ञान दर्शनभंडार । वाणी खिरै परम सुखकार ॥
परम उदारिक तनधारंत । परम सुगुरु कहिये अरहंत ॥ ७ ॥
धर्मध्यान धारैं उतकिष्ट । भाषैं धर्मदेशना मिष्ट ॥
धर्मनिधान धर्मसों प्रेम । धर्म सुगुरु आचारज एम ॥ ८ ॥
चौदह पूरब ग्यारह अंग । पढैं मरम जानै सरवंग ॥
परको मर्म कहैं समुझाय । यातैं परम सुगुरु उवझाय ॥ ९ ॥

षट आवश्यक कर्म नित करैं। त्रिविधि कर्ममता परिहरैं ॥
विपुल करम साधैं समकिती। परम सुगुरु सामानिक जती १०
पंच सुपद कीजइ चितौन। दुरित हरन दुख दारिद दौन ॥
यह जप मुख्य और जप गौन। इस गुण महिमा बरणै कौन ११

दोहा।

महामंत्र ये पंचपद, आराधै जो कोय।
कहत बनारसिदास पद, उलट सदाशिव होय॥ १२ ॥

इति श्रीपंचपद विधान.

अथ सुमतिके देव्यष्टोत्तरशतनाम.

नमौ सिद्धिसाधक पुरुष, नमौ आतमाराम।
बरणों देवी सुमतिके, अष्टोत्तरशत नाम ॥ १ ॥

रोड़क छन्द।

सुमति सबुद्धि सुधी सुबोधनिधिसुता पुनीता।
शशिवदनी सेमुषी शिवमती धिषणा सीता ॥
सिद्धा संजमवती स्यादवादिनी विनीता।
निरदोषा नीरजा निर्मला जगत अतीता ॥
शीलवती शोभावती, शुचिधर्मा रुचिरीति।
शिवा सुभद्रा शंकरी, मेधा दृढ़परतीति ॥ २ ॥
ब्रह्माणी ब्रह्मजा ब्रह्मरति, ब्रह्मअधीता।
पदमा पदमावती वीतरागा गुणगीता ॥

शिवदायिनि शीतला राधिका, रमा अजीता।
समता सिद्धेश्वरी सत्यभामा निरनीता॥
कल्याणी कमला कुशलि, भवभंजनी भवानि।
लीलावती मनोरमा, आनन्दी सुखखानि॥ ३॥

परमा परमेश्वरी परम पंडिता अनन्ता।
असहाया आमोदवती अभया अघहंता॥
ज्ञानपंती गुणवती गौमती गौरी गंगा।
लक्ष्मी विद्याधरी आदि सुंदरी असंगा॥
चन्द्राभा चिन्ताहरणि, चिद्विद्या चिद्वेलि।
चेतनवती निराकुला, शिवमुद्रा शिवकेलि॥ ४॥

चिद्वदनी चिद्रूप कला वसुमती विचित्रा।
अर्धंगी अक्षरा जगतजननी जगमित्रा॥
अविकारा चेतना चमत्कारिणी चिदंका।
दुर्गा दर्शनवती दुरितहरणी निकलंका॥
धर्मधरा धीरज धरनि, मोहनाशिनी वाम।
जगत विकाशिनि भगवती, भरमभेदनी नाम॥ ५॥

घत्तानन्द.

निपुणानवनीता, वितथवितीता, सुजसा भवसागरतरणी।
निगमा निरवानी, दयानिधानी, यह सुबुद्धिदेवी वरणी॥ ६॥

इति श्रीसुमतिदेविशतक.

अथ शारदाष्टकं लिख्यते.

वस्तु छन्द.

नमो केवल नमो केवल रूप भगवान ।
मुख ओंकारधुनि सुनि अर्थ गणधर विचारै ॥
रचि आगम उपदिशै भविक जीव संशय निवारै ॥
सो सत्यारथ शारदा तासु, भक्ति उर आन ।
छन्द भुजंगप्रयातमें, अष्टक कहौं बखान ॥ १ ॥

भुजंगप्रयात.

जिनादेशजाता जिनेन्द्रा विख्याता ।
विशुद्धप्रबुद्धा नमों लोकमाता ॥
दुराचार दुर्नैहरा शंकरानी ।
नमो देविवागेश्वरी जैनवानी ॥ २ ॥

सुधाधर्मसंसाधनी धर्मशाला ।
सुधातापनिर्नाशनी मेघमाला ॥
महामोहविध्वंसनी मोक्षदानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ३ ॥

अखैवृक्षशाखा व्यतीताभिलाषा ।
कथा संस्कृता प्राकृता देशभाषा ॥
चिदानन्द-भूपालकी राजधानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ४ ॥

समाधानरूपा अनूपा अक्षुद्रा ।
अनेकान्तधा स्याद्वादाङ्कमुद्रा ॥
त्रिधा सप्तधा द्वादशाङ्गी वखानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ५ ॥

अकोपा अमाना अदंभा अलोभा ।
श्रुतज्ञानरूपी मतिज्ञानशोभा ॥
महापावनी भावना भव्यमानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ६ ॥

अतीता अजीता सदा निर्विकारा ।
विषैवाटिकाखंडिनी खड्गधारा ॥
पुरापापविक्षेपकर्तृ कृपाणी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ७ ॥

अगाधा अवाधा निरंध्रा निराशा ।
अनन्ता अनादीश्वरी कर्मनाशा ॥
निशंका निरंका चिदंका भवानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ८ ॥

अशोका मुदेका विवेका विधानी ।
जगज्जन्तुमित्रा विचित्रावसानी ॥
समस्तावलोका निरस्तानिदानी ।
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ९ ॥

वस्तुच्छंद.

जैनवाणी जैनवाणी सुनहिं जे जीव ।
जे आगम रुचिधरें जे प्रतीति मन माहिं आनहि ।
अवधारहिं जे पुरुष समर्थ पद अर्थ जानहि ॥
जे हितहेतु बनारसी, देहिं धर्म उपदेश ।
ते सब पावहिं परम सुख, तज संसार कलेश ॥ १० ॥

इति शारदाष्टक.

अथ नवदुर्गाविधान लिख्यते.

कवित्त.

प्रथमहिं समकितवंत लखि आपापर,
परको सरूप त्यागी आप गहलेतु है ।
बहुरि विलोक साध्यसाधक अवस्था भेद,
साधक ह्वै सिद्धिपदको सुदृष्टि देतु है ॥
अविरतगुणथान आदि छीनमोहअन्त,
नवगुणथान निति साधकको खेतु है ॥
संजम चिह्न विना साधक गुपतरूप,
त्यों त्यों परगट ज्यों ज्यों संजम सुचेतु है ॥ १ ॥
जैसें काहू पुरुषको कारण ऊरध पंथ,
कारज सरूपी गढ़ भूमिगिरशृंग है ।
तैसें साध्यपद देव केवल पुरुष लिंग,
साधक सुमति देवीरूप तियलिंग है ॥

ज्ञानकी अवस्था दोऊ निश्चय न भेद कोऊ,
व्यवहार भेद देव देवी यह व्यंग है।
ऐसो साध्य साधक सरूप सूझे मोखपंथ,
संतनको सत्यारथ मूढ़नको ढिंग है॥ २॥

जाको मौनमवकूप मुकुट विवेकरूप,
अनाचार रासभ आरूढदुति गूझी है।
जाके एक हाथ परमारथ कलश दूजे,
हाथ त्याग शकति बोहारी विधि बूझी है।
जाके गुणश्रवण विचार यहै वासी भोग,
औपन भगतिरसरागसों अरूझी है॥
सो है देवी शीतला सुमति सूझै संतनको,
दुरबुद्धि लोगनको रोगरूप सूझी है॥ ३॥

कूपसों निकस जबभूपर उदोत भई,
तब और ज्योति मुख ऊपर विराजी है।
भुजा भई चौगुणी शकति भई सौगुणी,
लजाय गए औगुणी रजायछिति छाजी है॥
कुंभसों प्रगट्यो नूर, रासभसों भयो सूर,
सूप भयो छत्रसों बुहारी शस्त्र राजी है।
ऐपन को रंगसो तो कंचनको अंग भयो,
छत्रपति नामभयो वासी रीति ताजी है॥ ४॥

दोहा ।

जाके परसत परमसुख, दरसत दुख मिट जाहिं ।
यहै सुमति देवी प्रगट, नगर कोट घटमाहिं ॥ ५ ॥

कवित्त ।

यहै बंधबंधकस्वरूप मानबंदी भई,
यह है अनंदी चिदानंद अनुसरणी ।
यह ध्यान अगनि प्रगट भये ज्वालामुखी,
यहै चंडी मोह महिषासुर निदरणी ॥
यहै अष्टभुजी अष्टकर्मकी शकति भंजै,
यहै कालवंचनी उलंघै कालकरणी ।
यहै अवला बली विराजै त्रिभुवन राणी,
यहै देवी सुमति अनेकभांति वरणी ॥ ६ ॥
यहै कामनाशिनी कामिक्षा कलिमें कहावै,
यहै ब्रह्मचारिणी कुमारी है अपरनी ।
यह है भगौति यहै दुर्गा दुर्गति जाकी,
यहै छत्रपती पुण्यपापतापहरनी ॥
यहै रामरमणी सहजरूप सीता सती,
यहै आदि सुंदरी विवेकसिंहचरनी ।
यहै जगमाता अनुकंपारूप देखियत,
यहै देवी सुमति अनेकभांति वरनी ॥ ७ ॥

यहै सरस्वती हंसवाहिनी प्रगट रूप,
यहै भवभेदिनी भवानी शंभुघरनी ।
यहै ज्ञान लच्छनसों लच्छमी विलोकियत,
यहै गुणरतनभंडार भारभरनी ॥
यहै गंगा त्रिविधि विचारमें त्रिपथ गौनी,
यह मोखसाधनको तीरथकी धरनी ।
यहै गोपी यहै राधा राधै भगवान भावै,
यहै देवी सुमति अनेकभांति वरनी ॥ ८ ॥
यहै परमेश्वरी परम ऋद्धि सिद्धि साधै,
यहै जोग माया व्यवहार ढार ढरनी ।
यहै पदमावती पदम ज्यों अलेप रहै,
यहै शुद्ध शकति मिथ्यातकी कतरनी ॥
यहै जिनमहिमा बखानी जिनशासनमें,
यहै अखंडित शिवमहिमा अमरनी ।
यहै रसभोगनी वियोगमें वियोगिनी है,
यहै देवी सुमति अनेकभांतिवरनी ॥ ९ ॥

इति श्रीनवदुर्गा विधान.

अथ नामनिर्णयविधान लिख्यते.

दोहा।

काहू दिन काहू समय, करुणाभाव समेत।
सुगुरु नामनिर्णय कहै, भविक जीव हितहेत ॥ १ ॥
जीव द्विविधि संसारमें, अथिररूप थिररूप।
अथिर देहधारी अलख, थिर भगवान अनूप ॥ २ ॥

कवित्त (३१ वर्ण)

जो है अविनाशी वस्तु ताको अविनाशी नाम,
विनाशीक वस्तु जाको नाम विनाशीक है।
फूल मरै बास जीवै यहै भ्रमरूपीवात,
दोऊ मरै दोऊ जीवै यहै बात ठीक है॥
अनादि अनंत भगवंतको सुजस नाम,
भवसिंधु तारण तरण तहकीक है।
अवतरै मरै भी धरै जे फिर फिर देह,
तिनको सुजस नाम अथिर अलीक है ॥ ३ ॥

दोहा।

थिर न रहै नर नाम की, जथा कथा जलरेख।
एते पर मिथ्यामती, ममता करैं विशेख ॥ ४ ॥

कवित्त.

जगमें मिथ्याती जीव भ्रम करै है सदीव,
भ्रमके प्रवाहमें बहा है आगें बहैगा।
नाम राखिवेको महारंभ करै दंभ करै,
यों न जानै दुर्गतिमें दुःख कौन सहैगा॥

बार बार कहैं मोह भागवंत धनवंत,
मेरा नाव जगतमें सदाकाल रहैगा।
याही ममतासों गहि आयो है अनंत नाम,
आगें योनियोनिमें अनंत नाम गहैगा ॥ ५ ॥

दोहा।

बोल उठैं चित चौंकि नर, सुनत नामकी हांक।
वहै शब्द सतगुरु कहैं, है भ्रमकूप धमांक ॥ ६ ॥

कवित्त।

जगतमें एक एक जनके अनेक नाम,
एक एक नाम देखिये अनेक जनमें।
वा जनम और या जनम और आगें और,
फिरता रहै पै याकी थिरता न तनमें ॥
कोई कलपना कर जोई नाम धरै जाको,
सोई जीव सोई नाम मानें तिहूं पनमें।
ऐसो विरतंत लख संतसों सुगुरु कहै,
तेरो नाम भ्रम तू विचार देख मनमें ॥ ७ ॥

दोहा.

नाम अनेक समीप तुव, अंग अंग सब ठौर।
जासों तू अपनो कहै, सो भ्रमरूपी और ॥ ८ ॥

कवित्त।

केश शीस भाल भौंह वरुणी पलक नैन,
गोलक कपोल गंड नासा मुख श्रौन है।

अधर दसन ओंठ रसना मसूढा तालु,
घंटिका चिवुक कंठ कंधा उर भौन है ॥
कांख कटि भुजा कर नाभि कुच पीठ पेट,
अंगुली हथेली नख जंघाथल सौन है ।
नितम्ब चरण रोम एते नाम अंगनके,
तामें तू विचार नर तेरा नाम कौन है ॥ ९ ॥

दोहा ।

नाम रूप नहिं जीवको, नहिं पुद्गलको पिंड ।
नहिं स्वभाव संजोगको, प्रगट भरमको भिंड ॥ १० ॥
यह सुनामनिर्णयकथा, कही सुगुरु संछेप ।
जे समुझहिं जे सरदहें, ते नीरस निरलेप ॥ ११ ॥

इति श्रीनामनिर्णयविधान.

अथ नवरत्नकवित्त लिख्यते.

धन्वन्तरि छपणक अमैर, घटखर्पर वैताल ।
वररुचि शंकु वराहमिह (र), कालिदास नव लाल ॥ १ ॥
विमलचित्त जाचक शिथिल, मूढ़ तपस्वी भ्रांत ।
कृपणबुद्धि तिर्यनरपती, ज्ञानवंत नव वात ॥ २ ॥

छप्पय ।

विमल चित्तकर मित्त, शत्रु छलबल वश किज्जय ।
प्रभु सेवा वश करिय, लोभवन्तहिं धन दिज्जय ॥

जुवति प्रेम वश करिय, साधु आदर वश आनिय।
महाराज गुणकथन, बंधु समरस सनमानिय॥
गुरुनमन शीस रससों रसिक, विद्या बल बुधि मन हरिय।
मूरख विनोद विकथा वचन, शुभ स्वभाव जगवश करिय॥३

जाचक लघुपद लहै, काम आतुर कलंक पद।
लोभी अपजस लहै, असनलालची लहै गंद॥
उन्नत लहै निपात, दुष्ट परदोष लहै तकि।
कुमन विकलता लहै लहै संशय जु रहै चकि॥
अपमान लहै निर्धन पुरुष, ज्वारी बहु संकट सहै।
जो कहै सहज करकश वचन, सो जग अप्रियता लहै॥ ४॥

शिथिल मूल दिढ करै, फूल चूंटै जलसींचै।
ऊरध डार नवाय, भूमिगत ऊरध खींचै॥
जे मलीन मुरझाहिं, टेक दे तिनहिं सुधारइ।
कूड़ा कंटक गलित पत्र, बाहिर चुन डारइ॥
लघु वृद्धि करइ भेदै जुगल, बाड़ि सँवारै फल भखै।
माली समान जो नृप चतुर, सो विलसै संपति अखै॥ ५॥

मूढ़ मसकती तपी, दुष्ट मानी गृहस्थ नर।
नरनायक आलसी, विपुल धनवंत कृपण कर॥
धरमी दुसह स्वभाव, वेद पाठी अघरस रत।
पराधीन शुचिवन्त, भूमिपालक निदेशहत॥

---

१ रोग.

रोगी दरिद्रपीड़ित पुरुष, वृद्ध नारि रसगृद्धचित ।
एते विडम्ब संसारमें, इन सब कहँ धिक्कार नित ॥ ६ ॥

प्रात धर्म चिन्तवै, सहजहित मंत्र विचारै ।
चर[1] चलाय चहुं ओर, देशपुर प्रजा सम्हारै ॥
राग द्वेष हिय गोप, वचन अम्रत सम बोलै ।
समय ठौर पहिचान, कठिन कोमल गुण खोलै ॥
निज जतन करै संचय रतन, न्यायमित्र अरि सम गनै ।
रणमें निशंक ह्वै संचरै, सो नरेन्द्र रिपुदल हनै ॥ ७ ॥

कृपण बुद्धि यश हनें, कोप दृढ़ प्रीति विछोरै ।
दंभ विध्वंसै सत्य, क्षुधा मर्यादा तोरै ॥
कुव्यसन धन छय करै, विपति थिरता पद टारइ ।
मोह मरोरै ज्ञान, विषय शुभ ध्यान विदारइ ॥
अभिमान विछेदै विनय गुण, पिशुनकर्म गुरुता गिलै ।
कुकलाअभ्यास नासहि सुपथ, दारिदसों आदर टलै ॥ ८ ॥

तियबल योवन समय, साधुबल शिवपथ संवर ।
नृपबल तेज प्रताप, दुष्टबल वचन अडम्बर ।
निर्धनबल सुमिलाप, दानिसेवा याचकबल ।
वाणिजबल व्यवहार, ज्ञानबल वरविवेकदल ॥
विद्या विनय उदारबल, गुणसमूह प्रभुबल दरब ।
परिवार स्वबल सुविचार कर, होहिं एक समता सरब ॥ ९ ॥

---

१. जासूद.

नरपतिमंडन नीति, पुरुषमंडन मनधीरज।
पंडितमंडन विनय, तालसरमंडन नीरज॥
कुलतियमंडन लाज, वचनमंडन प्रसन्नमुख।
मतिमंडन कवि धर्म, साधुमंडन समाधिसुख॥
भुजबलसमर्थ मंडन क्षमा, गृहपति मंडन विपुल धन।
मंडन सिद्धान्त रुचि सन्त कहँ, कायामंडन लवँन[1] धन॥१०॥

ज्ञानवन्त हठ गहै, निधन परिवार बढ़ावै।
विधवा करै गुमान, धनी सेवक है धावै॥
वृद्ध न समझै धर्म, नारि भर्ता अपमानै।
पंडित क्रिया विहीन, राय दुर्बुद्धि प्रमानै॥
कुलवंत पुरुष कुलविधितजै, बंधु न मानै बंधुहित।
सन्यासधार धन संग्रहै, ए जगमें मूरख विदित॥ ११॥

इति श्रीनवरत्न कवित्त.

अथ अष्टप्रकारजिनपूजन लिख्यते.

दोहा।

जलधारा चन्दन पुहुप[2], अक्षत अरु नैवेद।
दीप धूप फल अर्घयुत, जिनपूजा वसुभेद॥ १॥
जल-मलिन वस्तु उज्ज्वल करै, यह सुभाव जलमाहिं।
जलसों जिनपद पूजतें, कृतकलङ्क[3] मिट जाहिं॥ २॥

---

१ लावण्यता. २ पुष्प. ३ किये हुए पाप.

चन्दन–तप्तवस्तु शीतल करै, चन्दन शीतल आप ।
चन्दनसों जिन पूजतें, मिटै मोहसंताप ॥ ३ ॥
पुष्प–पुष्प चापधर पुष्पशर, धारै मनमथ वीर ।
यातें पूजा पुष्पकी, हरै मदनशरपीर ॥ ४ ॥
अक्षत–तन्दुल धवल पवित्र अति, नाम सु अक्षत तास ।
अक्षतसों जिन पूजतें, अक्षय गुणपरकास ॥ ५ ॥
नैवेद्य–परम अन्न नैवेद्य विधि, क्षुधाहरण तन पोष ।
जिनपूजत नैवेद्यसों, मिटहिं क्षुधादिक दोष ॥ ६ ॥
दीपक–आपा पर देखै सकल, निशिमें दीपक होत ।
दीपकसों जिन पूजतें, निर्मलज्ञानउद्योत ॥ ७ ॥
धूप–पावक दहै सुगंधिको, धूप कहावै सोय ।
खेवत धूप जिनेशको, कर्म दहन छल होय ॥ ८ ॥
फल–जो जैसी करनी करै, सो तैसा फल लेय ।
फल पूजा जिनदेवकी, निश्चय शिवफल देय ॥ ९ ॥
अर्घ–यह जिन पूजा अष्टविधि, कीजे कर शुचि अंग ।
प्रतिपूजा जलधारसों, दीजे अर्घ अभंग ॥ १० ॥

इति अष्टप्रकार जिनपूजन.

अथ दशदानविधान लिख्यते.

गो सुवर्ण दासी भवन, गज तुरंग परधान ।
कुलकलत्र तिल भूमि रथ, ये पुनीत दशदान ॥ १ ॥

१ धनुष. २ जो कभी क्षय न हो.

अब इनको विवरण कहूं, भावितरूप बखानि।
अलखरीति अनुभवकथा, जो समझै सो दानि ॥ २ ॥

चौपाई।

गो कहिये इन्द्री अभिधाना। बछरा उमँग भोग पय पाना॥
जो इसके रसमाहिं न राचा। सो सबच्छ गोदानी साँचा॥३॥
कनक तुरंग सु अक्षर बानी। तीनों शब्द सुवर्ण कहानी॥
ज्यों त्यागै तीनहुँकी साता। सो कहिये सुवरणको दाता॥४॥
पराधीन पररूप गरासी। यों दुर्बुद्धि कहावै दासी॥
ताकी रीति तजै जब ज्ञाता। तब दासीदातार विख्याता॥ ५॥
तनमन्दिर चेतन घरवासी। ज्ञानदृष्टि घट अन्तरभासी॥
समझै यह घर है गुण मेरा। मन्दिरदान होहि तिहिं बेरा॥ ६॥
अष्ट महामद दुरके साथी। ए कुकर्म कुदशाके हाथी॥
इनको त्याग करै जो कोई। गजदातार कहावै सोई॥ ७॥
मनतुरंग चढ़ ज्ञानी दौरइ। लखै तुरंग औरमें औरइ॥
निज हगको निजरूप गहावै। सो तुरंगको दान कहावै॥ ८॥
अविनाशी कुलके गुण गावै। कुल कलित्र सद्बुद्धि कहावै॥
बुद्धि अतीत धारणा फैली। वहै कलत्रदानकी सैली॥ ९॥
ब्रह्मविलास तेल खलि माया। मिश्रपिंड तिल नाम कहाया॥
पिंडरूप गहि द्विविधा मानी। द्विविधा तजै सोइ तिलदानी॥१०॥
जो व्यवहार अवस्था होई। अन्तरभूमि कहावै सोई॥
तज व्यवहार जो निश्चय मानै। भूमिदानकी विधि सो जानै॥

शुकल ध्यान रथ चढ़ै सयाना। मुक्तिपन्थको करै पयाना॥
रहै अजोग जोगसों त्यागी। वहै महारथ रथको त्यागी॥१२॥

ये दशदान जु मैं कहे, सो शिवशासनमूल।
ज्ञानवन्त सूक्षम गहै, मूढ़ विचारै थूल॥ १३ ॥
ये ही हित चित जानको, ये ही अहित अजान।
रागरहित विधिसहित हित, अहित आनकी आन॥१४॥

इति दशदानविधान.

अथ दश बोल लिख्यते.

चौपाई.

जिनकी भांति कहों समुझाई। जिनपद कहा सुनो रे भाई॥
धर्म स्वरूप कहावै ऐसा। सो जिनधर्म वखानौ जैसा॥ १ ॥
आगम कहो जिनागम सांचा। वरणों वचन और जिन वाचा॥
मत भाषहुँ जिनमत समुझावहुं। ये दश बोल जथारथ गावहुँ॥२

जिन–दोहा।

सहज वन्धवंदक रहित, सहित अनन्तचतुष्ट।
जोगी जोगअतीत मुनि, सो जिन आतम सुष्ट॥ ३ ॥

जिनपद।

विधि निषेध जानै नहीं, जहँ अखंड रस पान।
विमल अवस्था जो धरै, सो जिनपद परमान॥ ४ ॥

धर्म।

लहिये वस्तु अवस्तुमें, यथा अवस्थित जोय।
जो स्वभाव जामै सधै, धर्म कहावै सोय॥ ५ ॥

जिनधर्म ।

पुरुष प्रमाण परंपरा, वचन बीज विस्तार ।
धरै अर्थकी अगमता, यह आगमकी द्वार ॥ ६ ॥

जिनआगम ।

जहां द्रव्य षट तत्त्व नव, लोकालोक विचार ।
विवरण करै अनंत नय, सो जिन आगम सार ॥ ७ ॥

वचन ।

कहुं अक्षर मुद्रा धरै, कहूं अनक्षर धार ।
मृषा सत्य अनुभय उभय, बचन चार परकार ॥ ८ ॥

जिनवचन ।

जाकी दशा निरक्षरी, महिमा अक्षर रूप ।
स्यादवादजुत सत्यमय, सो जिनवचन अनूप ॥ ९ ॥

मत ।

थापै निज मतकी क्रिया, निन्दै परमतरीति ।
कुलाचारसों बँधि रहै, यह मतकी परतीति ॥ १० ॥

जिनमत ।

अर्हंत् देव सुसाधु गुरु, दया धर्म जहँ होय ।
केवल भाषित रीति जहँ, कहिये जिनमत सोय ॥ ११ ॥

इति दशबोल.

अथ पहेली लिख्यते.

कहरानामाकी चाल.

कुमति सुमति दोऊ ब्रजवनिता, दोउको कन्त अवाची ।
वह अजान पति मरम न जानै, यह भरतासों राची ॥१॥
यह सुबुद्धि आपा परिपूरण, आपापर पहिचानै ।
लख लालनकी चाल चपलता, सौतसाल उर आनै ॥ २ ॥
करै विलास हास कौतूहल, अगणित संग सहेली ।
काहू समय पाय सखियनसों, कहै पुनीत पहेली ॥ ३ ॥
मोरे आंगन विरवा उलह्यो, विना पवन झकुलाई ।
ऊंचि डाल वड पात सघनवाँ, छाहँ सौतके जाई ॥ ४ ॥
बोलै सखी वात मैं समुझी, कहूं अर्थ अव जो है ।
तोरे वर अन्तरघटनायक, अदभुत विरवा सो है ॥ ५ ॥
ऊंची डाल चेतना उद्धत, बड़े पात गुण भारी ।
ममता वात गात नहिं परसै, छकनि छाह छत नारी ॥६॥
उदय स्वभाव पाय पद चंचल, यातैं इत उत डोलै ।
कबहूँ घर कबहूं भर बाहिर, सहज सरूप कलोलै ॥ ७ ॥
कबहूं निज संपति आकर्षै, कबहूं परसै माया ।
जब तनको त्योंनार करै तब, परै सौति पर छाया ॥ ८ ॥

---

१ इसको कवियों ने सार छन्द माना है, नरेन्द्र (जोगीरासा) की राह पर भी यह चलता है.

तोरे हिये डाह यों आवै, हौं कुलीन वह चेरी ।
कहै सखी सुन दीनदयाली; यहै हियाली तेरी ॥ ९ ॥

दोहा.

हिय आंगनमें प्रेम तरु, सुरति डार गुणपात ।
मगनरूप ह्वै लहलहै, विना द्वन्ददुखवात ॥ १० ॥
भरमभाव ग्रीषम भयो, सरस भूमि चितमाहिं ।
देश दशा इक सम भई, यहै सौतघर छाहिं ॥ ११ ॥

इति पहेली.

अथ प्रश्नोत्तरदोहा लिख्यते.

प्रश्न–कौन वस्तु वपु माहिं है, कहाँ आवै कहाँ जाय ।
ज्ञानप्रकाश कहा लखै, कौन ठौर ठहराय ॥ १ ॥
उत्तर–चिदानंद वपुमाहिं है, भ्रममाहिं आवै जाय ।
ज्ञान प्रकट आपा लखै, आपमाहिं ठहराय ॥ २ ॥
प्रश्न–जाको खोजत जगतजन, कर कर नानाभेप ।
ताहि वतावहु, है कहा जाको नाम अलेप ॥ ३ ॥
उत्तर–जग शोधत कछु औरको, वह तो और न होय ।
वह अलेख निरभेष मुनि, खोजन हारा सोय ॥ ४ ॥
प्रश्न–उपजै विनसै थिररहै, वह अविनाशी नाम ।
भेदी तुम भारी भला!, मोहि वतावहु ठाम ॥ ५ ॥
उत्तर–उपजै विनसै रूप जड़, वह चिद्रूप अखंड ।
जोग जुगति जगमें लसै, वसै पिण्ड ब्रहमंड ॥६॥

प्रश्न–शब्द अगोचर वस्तु है, कछू कहौं अनुमान।
जैसी गुरु आगम कही, तैसी कहौ सुजान ॥ ७ ॥
उत्तर–शब्द अगोचर कहत है, शब्दमांहि पुनि सोय।
स्यादवाद शैली अगम, विरला बूझै कोय ॥ ८ ॥
प्रश्न–वह अरूप है रूपमें, दुरिकै कियो दुराव।
जैसें पावक काठमें, प्रगटे होत लखाव ॥ ९ ॥
उत्तर–हुतो प्रगट फिर गुपतमय, यह तो ऐसो नाहिं।
है अनादि ज्यों खानिमें, कंचन पाहनमाहिं ॥ १० ॥

इति प्रश्नोत्तर दोहा.

अथ प्रश्नोत्तरमाला लिख्यते.

नमत शीस गोविन्दसों, उद्धव पूछत एम।
कै विधि यम कै विधि नियम, कहो यथावत जेम ॥ १ ॥
समता कैसी दम कहा, कहा तितिक्षा भाव
धीरज दान जु तप कहा, कहा सुभट विवसाव ॥ २ ॥
कहा सत्यरति है कहा, शौच त्याग धन इष्ट।
यज्ञ दक्षिणा वलि कहा, कहा दया उतकिष्ट ॥ ३ ॥
कहा लाभ विद्या कहा, लज्जा लक्ष्मी गूढ।
सुख अरु दुख दोऊ कहा, को पंडित को मूढ ॥ ४ ॥
पंथ कुपंथ कहो कहा, स्वर्ग नरक चितौन।
को बंधव अरु गृह कहा, धनी दरिद्री कौन ॥ ५ ॥

कौन पुरुष कहिये कृपण, को ईश्वर जग माहिं ।
ये सब प्रश्न विचार मन, कही मधुप हरिपाहिं ॥६॥
नारायण उत्तर कहै, सुन उद्धव मन लाय ।
द्वादश यम द्वादश नियम, कहूं तोहि समुझाय ॥७॥
दया सत्य थिरता क्षमा, अभय अचौर्य सुमौन ।
लाज असंग्रह अस्तिमत, संग त्याग तियवौन ॥ ८ ॥
हरि पूजा संतोष गुरु, भक्ति होम उपकार ।
जप तप तीरथ द्विविधि शुचि, श्रद्धा अतिथि अहार९

सोरठा ।

कहे भेद चौवीस, भिन्न २ यम नियमके ।
रहे प्रश्न चौवीस, तिनके उत्तर अब सुनहु ॥ १० ॥

समता ज्ञान सुधारस पीजे । दम इन्द्रिनको निग्रह कीजे ॥
संकटसहन तितिक्षा वीरज । रसना मदन जीतवो धीरज॥११॥
दान अभय जहँ दंड न दीजे । तप कामनानिरोध कहीजे ॥
अन्तरविजयसूरता सांची । सत्यब्रह्म दर्शन निरवाची ॥ १२ ॥
रतु अनक्षरी ध्वनि जहँ होई । करम अभाव शौचविध सोई ।
त्याग परम सन्यास विधाना । परम धरम धन इष्ट निधाना १३
ध्रुव धारणा यज्ञकी करनी । हित उपदेश दक्षिणा वरनी ॥
प्राणायाम वोधवल अक्षा । दया अशेष जन्तुकी रक्षा ॥ १४ ॥
लाभ भावशुभगतिपरकाशा । विद्या सो जु अविद्यानाशा ॥
लाज कुकर्म गिलानि कहावै । लक्ष्मी नाम निराशा पावै १५

सुखदुखत्यागबुद्धि सुखरेखा। दुख विपयारस भोगविशेखा ॥
पंडित बंध मोक्ष जो जानै। मूरख देहादिक निज मानै ॥१६॥
मारग श्रीमुख आगम भाषा। उतपथ कुधी कुमन अभिलाषा॥
सुकृतिवासना स्वर्गविलासा। दुरित उछाह नर्क गतिवासा॥१७॥
बंधव हितू स्वर्ग सुख दाता। गृह मानुषी शरीर विख्याता ॥
धनी सो जु गुणरत्नभंडारी। सदा दरिद्री तृष्णाधारी ॥ १८ ॥
कृपण सो जु विषयारसलोभी। ईश्वर त्रिगुणातीत अछोभी ॥
बहुत कहां लगि कहों विचक्षण। गुण अरु दोष दोहुके लक्षण १९

दोहा।

दृष्टि सुगुन अरु दोषकी, दोष कहावै सोय।
गुण अरु दोष जहां नहीं, तहाँ गुन परगट होय ॥ २०॥
इति प्रश्नोत्तरमालिका, उद्धवहरिसंवाद।
भाषा कहत बनारसी, भानुसुगुरुपरसाद ॥ २१ ॥

इति प्रश्नोत्तरमालिका.

अथ अवस्थाष्टक लिख्यते.

दोहा।

चेतनलक्षण नियतनय, सबै जीव इकसार।
मूढ़ विचक्षण परमसों, त्रिविधि रूप व्यवहार ॥ १ ॥
मूढ़ आतमा एक विधि, त्रिविधि विचक्षण जान।
द्विविधि भाव परमातमा, षट्विधि जीव बखान ॥ २॥

विधि निषेध जानै नहीं, हित अनहित नहिं सूझ।
विषयमगन तन लीनता, यहै मूढ़की बूझ ॥ ३ ॥
जो जिनभाषित सरदहै, भ्रम संशय सब खोय।
समकितवंत असंजमी, अधम विचक्षण सोय ॥ ४ ॥
वैरागी त्यागी दमी, स्वपर विवेकी होय।
देशसंजमी संजमी, मध्यम पंडित होय ॥ ५ ॥
अप्रमाद गुण थानसों, क्षीणमोहलौं दौर।
श्रेणिधारणा जो धरै, सो पंडित शिरमौर ॥ ६ ॥
जो केवल पद आचरै, चढ़ि सयोगिगुणथान।
सो जंगम परमातमा, भववासी भगवान ॥ ७ ॥
जिहिंपदमें सबपद मगन, ज्यों जलमें जल बुन्द।
सो अविचल परमातमा, निराकार निरदुन्द ॥ ८ ॥

इति अवस्थाष्टक.

अथ षट्दर्शनाष्टक लिख्यते.

शिवमत बौद्ध रु वेदमत, नैयायिक मतदक्ष।
मीमांसकमत जैनमत, षटदर्शन परतक्ष ॥ १ ॥

शैवमत।

देव रुद्र जोगी सुगुरु, आगम शिवमुख भाख।
गनै कालपरणति धरम, यह शिवमतकी साख ॥ २ ॥

बौद्धमत ।

देव बुद्ध गुरु पाखंडी, जगत वस्तु छिन औघ ।
शून्यवाद आगम भजै, चारवाक मत बौध ॥ ३ ॥

वेदान्तमत ।

देव ब्रह्म अद्वैत जग, गुरु वैरागी भेष ।
वेद ग्रन्थ निश्चय धरम, मत वेदान्तविशेष ॥ ४ ॥

न्यायमत ।

देव जगतकरता पुरुष, गुरु सन्यासी होय ।
न्याय ग्रन्थ उद्यम धरम, नैयायिक मत सोय ॥ ५ ॥

मीमांसकमत ।

देव अलख दरवेश गुरु, मानें कर्म गिरंथ ।
धर्म पूर्वकृतफलउदय, यह मीमांसक पंथ ॥ ६ ॥

जैनमत ।

देव तीर्थंकर गुरु यती, आगम केवलि वैन ।
धर्म अनन्त नयातमक, जो जानै सो जैन ॥ ७ ॥
ए छहमत छै भेदसों, भये छूट कछु और ।
प्रतिषोड़स पाखंडसों, दशा छयानवे और ॥ ८ ॥

इति षट्दर्शनाष्टक.

अथ चातुर्वर्ण लिख्यते.

जो निश्चय मारग गहै, रहै ब्रह्म गुणलीन ।
ब्रह्मदृष्टि सुख अनुभवै, सो ब्राह्मण परवीन ॥ १ ॥

जो निश्चय गुण जानकै, करै शुद्ध व्यवहार।
जीतै सेना मोहकी, सो क्षत्री भुजमार ॥ २ ॥
जो जानै व्यवहार नय, दृढ व्यवहारी होय।
शुभ करणीसों रम रहै, वैश्य कहावै सोय ॥ ३ ॥
जो मिथ्यामत आदरै, रागद्वेषकी खान।
बिनविवेक करणी करै, शूद्रवर्ण सो जान ॥ ४ ॥
चार भेद करतूतिसों, ऊंच नीच कुलनाम।
और वर्णसंकर सबै, जे मिश्रित परिणाम ॥ ५ ॥

इति चातुर्वर्ण.

अथ अजितनाथजीके छंद.

गोयमगणहरपय नमो, सुमरि सुगुरु रविचन्द।
सरसुति देवि प्रसादलहि, गाऊं अजित जिनन्द ॥ १ ॥

छन्द.

श्रीअवध्यापुर देश सुहावाजी।
राजै तहं जितशत्रू रावाजी ॥
राया सुधर्म निधान सुन्दर, देवि विजया तसु घरै।
तसु उदर विजय विमान सुरवर, स्वप्न सूचित अवतरै ॥
तब जन्म उत्सव करहिं वासव, मधुर धुनि गावहिं सुरी।
आनन्द त्रिभुवन जन बनारसि, धन्य श्रीअवध्यापुरी ॥२॥
महियल राजिउ अजित जिनंदाजी।
गज वर लच्छन निर्मल चंदाजी ॥

चन्दा उदित इक्ष्वाक वंशहि, कुमति तिमर विनासिये ।
सय साठ चार सुचाप परिमित, देह कंचन भासिये ॥
दिढ़ पालिराज सु गहिय संजम, मुकति पथ रथ साजियो ।
उत्पन्न केवल सुख वनारसि, अजित महियल राजियो ॥ ३॥

गढ़ योजनमहि रचें सुदेवाजी ।
अष्ट प्रतीहार करहिं सु सेवाजी ॥

सेवहिं अशोक प्रसून वरसत, दिव्यधुनि तहँ गाजहीं ।
चामर सिंहासन प्रभामंडल, छत्र तीन विराजहीं ॥
नवदेव दुंदभि सभा वारह, चौतिसों अतिशय सही ।
सुर असुर किन्नरगण वनारसि, रचित गढ़ योजन मही ॥४॥

लक्ष वहन्तरि पूरव आया जी ।
भोग सु जिनवर शिवपद पायाजी ॥

शिवपद विनायक सिद्धि दायक, कर्म महारिपु भंजनो ।
वरणे शिषैरावाद मंडन, भविक जनमनरंजनो ॥
सोलैसै सत्तर समय आश्वनि, मास सितपख वारसी ।
विनवत दुहूं कर जोर सेवक, सिरीमाल वनारसि ॥ ५ ॥

इति श्रीअजित नाथके छन्द.

अथ शान्तिनाथजिनस्तुति.

वाकीमहम्मद खानके चंद्वाकी ढाल।

सहि एरी! दिन आज सुहाया मुझ भाया आया नाहिं घरे।
सहि एरी! मन उदधि अनन्दा सुख, कन्दा चन्दा देह धरे॥
चन्द जिवां मेरा वल्लभ सोहै, नैन चकोरहिं सुक्ख करै।
जगज्योति सुहाई कीरतिछाई, बहु दुख तिमरवितान हरै॥
सहु कालविनानी अम्रतवानी, अरु मृगका लांछन कहिए।
श्रीशान्ति जिनेशनरोत्तमको प्रभु, आज मिला मेरी सहिए! १
सहि एरी! तू परम सयानी, सुरज्ञानी रानी राजत्रिया।
सहि एरी! तू अति सुकुमारी, वरन्यारी प्यारी प्राणप्रिया॥
प्राणप्रिया लखि रूप अचंभा, रति रंभा मन लाज रहीं।
कलधौत कुरंग कौंलं करि केसरि, ये सरि तोहि न होंहि कहीं॥
अनुराग सुहाग भाग गुन आगरि, नागरि पुन्यहिं लहिये।
मिलि या तुझ कन्त नरोत्तमको प्रभु, धन्य सयानी सहिये! २

दोहा।

विश्वसेन कुलकमलरवि, अचिरा उर अवतार।
धनुष सु चालिस कनकतन, वन्दहुं शान्ति कुमार॥ ३॥

त्रिभंगी छन्द. (१०, ८, ८, ६)

गजपुर अवतारं, शान्ति कुमारं, शिवदातारं, सुखकारं।
निरुपम आकारं, रुचिराचारं, जगदाधारं, जितमारं॥

१ सखि! ये, २ कमल, ३ समान, ४ कामदेवके जीतनेवाले.

कृतअरिसंहारं, महिमापारं, विगतविकारं, जगसारं ।
परहितसंसारं, गुणविस्तारं, जगनिस्तारं, शिवधारं ॥ ४ ॥
सकल सुरेश नरेश अरु, किन्नरेश नागेश ।
तिनिगणवन्दित चरणजुग, बन्दहुं शान्ति जिनेश ॥ ५ ॥
श्रीशान्तिजिनेशं, जगतमहेशं, विगतकलेशं, भद्रेशं ।
भविकमलदिनेशं, मतिमहिशेशं, मदनमहेशं, परमेशं ॥
जनकुमुदनिशेशं, रुचिरादेशं, धर्मधरेशं, चक्रेशं ।
भवजलपोतेशं[1] महिमनगेशं, निरुपमवेशं, तीर्थेशं ॥ ६ ॥
करत अमरनरमधुप जसु, वचन सुधारसपान ।
बन्दहुं शान्तिजिनेशवर, वदन निशेश समान ॥ ७ ॥
वररूप अमानं, अरितमभानं, निरुपमज्ञानं, गतमानं ।
गुणनिकरस्थानं, मुक्तिवितानं, लोकनिदानं, सध्यानं ॥
भवतारनयानं, कृपानिधानं, जगतप्रधानं, मतिमानं ।
प्रगटितकल्यानं, वरमहिमानं, शिवपददानं, मृगजानं ॥८॥
भवसागर भयभीत बहु, भक्तलोकप्रतिपाल ।
बन्दहुं शान्ति जिनाधिपति, कुगतिलताकरवाल ॥ ९ ॥
भंजितभवजालं, जितकलिकालं, कीर्तिविशालं, जनपालं ।
गतिविजितमरालं, अरिकुलकालं, वचनरसालं, वरभालं ॥
मुनिजलजमृणालं, भवभयशालं, शिवउरमालं, सुकुमालं ।
भवितरुषतमालं, त्रिभुवनपालं, नयनविशालं, गुणमालं ॥१०॥

---

१ जहाज.

कलश–छप्पय ।

हीर हिमालय हंस, कुन्द शरदभ्र निशाकर ।
कीर्तिकान्तिविस्तार, सार गुणगणरत्नाकर ॥
दुःकृति संतति धाम, कामविद्वेषिविदारण ।
मानमतंगजसिंह, मोहतरुदलन सुवारण ॥
श्रीशान्तिदेव जय जितमदन, बानारसि वन्दत चरण ।
भवतापहारिहिमकर वदन, शान्तिदेव जय जितकरण ॥ ११ ॥

इति श्रीशान्तिनाथ जिनस्तुति.

अथ नवसेनाविधान लिख्यते.

वेसरी छन्द ।

प्रथमहिं पत्ति नाम दल लेन । तासों त्रिगुण कहावै सेन ॥
सेन त्रिगुण सेनामुख ठीक । सेनामुखसों त्रिगुण अनीक ॥१॥
कीजे त्रिगुण वाहिनी सोइ । वाहनि त्रिगुण चमूदल होइ ॥
त्रिगुण वरूथनि दल परचंड । तासों त्रिगुण कहावै दंड ॥ २ ॥

दोहा ।

दंड कटक दशगुण करहु, तब अछौहिणी जान ।
हयगय रथ पायक सहित, ये तब कटक बखान ॥ ३ ॥

पत्ति ।

एक मतंगज एक रथ, तीन तुरंग प्रधान ।
सुभट पंच पायक सहित, पत्ति कटक परवान ॥ ४ ॥

सेना । चौपाई.

नव तुरंग रथ तीन सुभायक । हस्ती तीन पंचदश पायक ।
बल चतुरंग और नहिं लेन । यह परवान कहावै सेन ॥ ५ ॥

सेनामुख ।

सत्ताइस घोड़े नव हाथी । पैंतालिस पायकनर साथी ।
नवरथ सहित कटक जो होई । दल सेनामुख कहिये सोई ६

अनीकनी ।

मत्त मतङ्ग सात अरु वीस । पवन वेग रथ सत्ताईस ।
अनुग एकसौ पैंतिस ठीक । हय इक्यासी सहित अनीक॥७॥

वाहिनी । आभानक छन्द ।

इक्यासी गजराज घोरघन गाजने ।
इक्यासी परमान महारथ राजने ॥
तीन अधिक चालीस तुरंगम दोयसो ।
अनुग चारसौपंच वाहिनी होय सो ॥ ८ ॥

चमू । गीता छन्द ।

गज दोयसैतेताल रथवर, दोयसौ तेताल ।
हैं सातसो उन्तीस परमित, जातिवन्त रसाल ॥
जहँ सुभट बारह सौ सुपायक, अधिक दश अरु पंच ।
सो चमूदल चतुरंग शोभित, सहित नर तिरजंच ॥ ९ ॥

विरूथिनी ।

रथ सातसै उनतीस कुंजर, सातसै उनतीस ।
हय एक विंशति सै सतासी, चपल उन्नत सीस ॥

छत्तीससौ वलवंत पायक, अधिक पैंतालीस।
सो है वरूथनि कटक दुर्द्धर, चटक सुन्दर दीस॥ १०॥

दंड–रोला।

कुंजर दोय हजार एक सौ असी सात गनि।
जेते गज तेते प्रमान रथराज रहे वनि॥
नवसौ पैंतिस दशहजार पायक प्रचंड वल।
पैंसठसै इकसठ तुरंग यह दंड नाम दल॥ ११॥

अक्षौहिणी–छप्पय।

गज इकवीस हजार, आठ सौ सत्तर गज्जहिं।
रथ इकवीस हजार, आठ सौ सत्तर सज्जहिं॥
एक लाख अरु नवहजार नर सुभट सुभायक।
तिस ऊपर तीनसौ अधिक पंचास सुपायक॥
सोहत तुरंग पैंसठ सहस, छसौ अधिक दश और लिय।
इहिविधि अभंग चतुरंग दल, अक्षौहिणी प्रमाण किय॥१२॥

इति नवसेना विधान.

अथ नाटकसमयसारसिद्धान्तके पाठान्तर कलशोंका भाषानुवाद.

मनहर।

प्रथम अज्ञानी जीव कहै मैं सदीव एक,
दूसरों न और मैं ही करता करमको।

अन्तर विवेक आयो आपापर भेद पायो,
भयो बोध गयो मिट भारत भरमको ॥
भासे छह द्रव्यनके गुण परजाय सब,
नाशे दुख लख्यो मुख पूरण परमको ।
करमको करतार मान्यो पुदगल पिंड,
आप करतार भयो आतम धरमको ॥ १ ॥

दोहा ।

जीव चेतना संजुगत, सदाकाल सब ठौर
तातैं चेतनभावको, कर्ता जीव न और ॥ २ ॥

गीतिका ।

जे पूर्वकर्म्मउदयविषयरस, भोगमगन सदा रहैं ।
आगम विषयसुख भोग वांछहिं, ते न पंचमगति लहैं ॥
जिस हिये केवल वृक्ष अंकुर, शुद्ध अनुभव दीप है ।
किरिया सकल तज होहिं समरस, तिनहिं मोक्ष समीप है ॥ ३ ॥
कोऊ विचक्षण कहै मो हिय, शुद्ध अनुभव सोहये ।
मैं भावि नय परिमाण निर्मल, निराशी निरमोहये ॥
समध्यान देवल माहिं केवल देव परगट भासहीं ।
कर भ्रष्टयोग विभावपरिणति, अष्ट कर्म विनाशहीं ॥ ४ ॥

इति नाटक कलश भाषानुवाद.

अथ मिथ्यामतवाणी.

मनहर।

नारायण देवको कहैं कि परनारी रत,
ब्रह्माको कहैं कि इन कन्या निज वरी है।
सिद्धको कहैं कि फिर फिर अवतार धरै,
शंकरको कहैं याकी मारी सृष्टि मरी है।
अचला कहावै भूमि सो कहैं पताल गई,
अनन्त वाराहरूप धरिके उद्धरी है।
ऐसी मिथ्यामतवानी मूढ़नके मनमानी,
पापकी कहानी दुखदानी दोषभरी है॥ १॥
संतान उपजै नर देवके संजोगसेती,
कनककी लंका कहैं अगनिसों जरी है।
शास्वतो सुमेरु सो उखारि कहैं मथ्यो सिन्धु,
इन्द्रको कहत गौतमकी नारि धरी है॥
भीम डारे हाथी ते अकाशमें फिरैं सदीव,
वायस भुशुंड अविनाशी काया करी है।
ऐसी मिथ्यामतवानी मूढ़नके मनमानी,
पापकी कहानी दुखदानी दोषभरी है॥ २॥
मैलकी बनाई मुद्रा सो कहैं गणेश भयो,
सरिताको कहैं सूरजसों अवतरी है।

द्रौपदी सतीको कहैं याके पंच भरतार,
कुन्तीहूको कहैं पांच वार व्यभिचरी है ॥
रामसे विवेकीको कहैं मुगध अवतार,
डाभको सँवारो सुत नाम कुशहरी है ।
ऐसी मिथ्यामतवानी मूढ़नके मनमानी,
पापकी कहानी दुखदानी दोषभरी है ॥ ३ ॥

गाथा ।

कुग्गहग्गहगहियाणं मूढ़ो जो देइ धम्मउवएसो ।
सो चम्मासी कुक्कर वयणंमि खोइ कप्पूरं ॥ १ ॥

इति मिथ्यामतवाणी.

अथ प्रास्ताविक फुटकर कविता लिख्यते.

मनहर ।

पूरब कि पश्चिम हो उत्तर कि दक्षिण हो,
दिशि हो कि विदिश कहउ तहां धाइये ।
पढ़िये पढ़ाइये कि गढ़िये गढ़ाइये कि,
नाचिये नचाइये कि गाइये गवाइये ॥
न्हाये विन खाइये कि न्हायकर खाइये कि,
खाय कर न्हाइये कि न्हाइये न खाइये ।
जोग कीजे भोग कीजे दान दीजे छीन लीजे,
जिहि विधि जाने जाहु सो विधि बताइये ॥ १ ॥

दिशि औ विदिशि दोऊ जगतकी मरजाद,
पढ़िये शबद गढ़िये सु जड़ साज है।
नाचिये सुचित्त चपलाय गाइये सुधुनि,
न्हाइये सुजन शुचि खाइये सुनाज है॥
परको संजोग सुतो योग विषै स्वाद भोग,
दीजे लीजे मायासो तो भरमको काज है।
इनतें अतीत कोऊ चेतनको पुंज तोमें,
ताके रूप जानवेको जानबो इलाज है॥ २॥
लोभवन्त मानुष जो औगुण अनन्त तामें,
जाके हिये दुष्टता सो पापी परधीन है।
जाके मुख सत्यवानी सोई तपको निधानी,
जाकी मनसा पवित्र सो तीरथथान है॥
जामैं सज्जनकी रीति ताकी सबहीसों प्रीति,
जाकी भली महिमा सो आभरणवान है।
जामें है सुविद्या सिद्धि ताही के अष्टऋद्धि,
जाको अपजस सो तो मृतक समान है॥ ३॥
कंचनभंडार पाय रंच न मगन हूजे,
पाय नवयोवना न हूजे ओवनारसी* ।

---

१ पुस्तकमें बीचके दो पाद ऐसे हैं—
* ऐसी अतिधारा कालपंचमके बीचपड़ी,
धारा बिनीकूप बीच पड़ी सु बनारसी।

काल असिधारा जिन जगत बनाए सोई,
कामिनी कनक मुद्रा दुहुंको बनारसी ॥
दोऊ विनाशी सदीव तूहै अविनाशीजीव,
या जगत कूपबीच ये ही डोबनारसी ।
इनको तू संगत्याग कूपसों निकसि भाग,
प्राणी मेरे कहे लाग कहत बनारसी ॥ ४ ॥
(पादान्तयमक).

जीवके बधैया वामविद्याके सधैया दावा,
नलके दधैया बन आखेटक करमी ।
जुआरी लवार परधनके हरनहार,
चौरीके करनहार दारीके अशरमी ॥
मांसके भखैया सुरापानके चखैया,
परवधूके लखैया जिनके हिये न नरमी ।
रोषके गहैया परदोषके कहैया येते,
पापी नर नीच निरदै महा अधरमी ॥ ५ ॥

मत्तगयन्द ।

सम्यक ज्ञान नहीं उर अन्तर, कीरतिकारण भेष बनावें ।
भौन तजें बनवास गहें सुख, मौन रहें तपसों तन जावें ॥
जोग अजोग कछू न विचारत, मूरख लोगनको भरमावें ।
फैल करें बहु जैन कथा कहि, जैन बिना नर जैन कहावें ॥ ६ ॥

भाईबंधु दारासुत कुटुंबके लोक सब,
इनके ममत्वको तू त्यागरे बनारसी ।

धीरज तात क्षमा जननी, परमारथ मीत महारुचि मासी।
ज्ञान सुपुत्र सुता करुणा, मति पुत्रवधू समता अतिभासी॥
उद्यम दास विवेक सहोदर, वुद्धि कलत्र शुभोदय दासी।
भाव कुटुंब सदा जिनके ढिग, यों मुनिको कहिये गृहवासी॥७॥

मनहर।

मानुष जनम लह्यो सम्यक दरश गह्यो,
अजहूं विषै विलास त्याग मन वावरे।
संपति विपति आये हरप विषाद छोड़,
ताही ओर पीठ ओड़ जैसी वहै वावरे॥
भौथिति निकट आई समता सुथाह पाई,
गयो है निघटि जल मिथ्यात डुवावरे।
टूटैगो करम फास छूटैगो जगत वास,
केवल उदै समीप आयो परेवा वरे॥ ८॥

(पादान्तयमक)

जामें सदा उतपात रोगनसों छीजै गात,
कछू न उपाय छिन छिन आयु खपनो।
कीजे वहु पाप औ नरक दुख चिन्ता व्याप,
आपदा कलापमें विलाप ताप तपनो॥
जामें परिगहको विषाद मिथ्या वकवाद,
विषैभोग सुखको सवाद जैसो सपनो।
ऐसो है जगतवास जैसो चपला विलास,
तामें तूं मगन भयो त्याग धर्म अपनो॥ ९॥

मत्तगयंद।

पुण्य सँजोग जुरे रथ पायक, माते मतंग तुरंग तबेले।
मान विभौ अँग यो सिरभार, कियो विसतार परिग्रह ले ले॥
बंध बढ़ाय करी थिति पूरण, अंत चले उठ आप अकेले।
हारि हमालकी पोटसी डारिके, और दिवारकी ओट व्है खेले१०

छप्पय व्है.

धान यान मिष्टान, मोम मादक नवनिज्जै।
लवण हिंगु घृत तैल, वनिजकारण नहिं लिज्जै॥
पशुभाड़ा पशुवणिज, शस्त्र विक्रय न करिज्जै।
जहां निरन्तर अग्नि करम, सो वणिज न किज्जै॥
मधु नील लाख विष वणिज तज, कूप तलाव न सोखिये।
लहिये न धरम गृह वासवस, हिंसक जीव न पोखिये॥११॥

मुकताको स्वामी चन्द मूंगानाथ महीनन्द
गोमेदक राजा राहु लीलापति शनी है।
केतु लहसुनी सुरपुष्प राग देव गुरु,
पन्नाको अधिप बुध शुक्र हीरा धनी है॥
याही क्रम कीजे घेर दक्षिणावरत फेर,
माणिक सुमेरवीच प्रभु दिन मनी है।
आठों दल आठ ओर, करणिका मध्य ठोर
कौलकैसे रूप नौ गृही अनूप बनी है॥ १२॥
बालक दशाकी मरजाद दश वरस लों,
वीस लों बढ़ति तीसलों सुछवि रही है॥

चालीस लौं चतुराई पंचास लौं थूलताई,
साठ लग लोचनकी दृष्टि लहलही है ॥
सत्तर लौं श्रवण असी लौं पुरुषत्व नित्या-
नवे लग इन्द्रिनकी शकति उमही है।
सौलौं चित चेत एक सौ दशोत्तरलौं आयु,
मानुष जनम ताकी पूरीथिति कही है ॥ १३ ॥

चौदह विद्याओंके नाम यथा—

छप्पय।

ब्रह्मज्ञान चातुरीवान, विद्या हय वाहन।
परम धरम उपदेश, बाहुबल जल अवगाहन ॥
सिद्ध रसायन करन, साधि सतमधुर गावन।
वर सांगीत प्रमान, नृत्य वाजित्र बजावन ॥
व्याकरण पाठ मुख वेद धुनि, ज्योतिष चक्र विचारचित।
वैद्यक विधान परवीनता, इति विद्या दशचार मित ॥ १४ ॥

छत्तीस पौन (जाति)के नाम कवित्त.

शीसगर दरजी तंबोली रंगवाल ग्वाल,
बढ़ई संगतरास तेली धोबी धुनियाँ।
कंदोई कहार काछी कुलाल कलाल माली,
कुंदीगर कागदी किसान पटवुनियाँ ॥
चितेरा बिंधेरा बारी लखेरा ठठेरा राज,
पटुवा छप्परबंध नाई भारभुनियाँ।

सुनार लोहार सिकलीगर हवाईगर,
धीवर चमार एही छत्तीस पवुनियाँ ॥ १५ ॥

एक सौ अड़तालीस प्रकृति

वस्तु छन्द.

सचतुट्टहि सचतुट्टहि तुरीय गुण थान ।.
तहं तीन व्युच्छतिभई नवठाण छत्तीस जानहु ।
दशमें पुनि इक लोभ बारमें सोलह खिपानहु ।
वहत्तर तेरम नसै, तेरह चौदम एवि ।
एम पैड़ि अड़ताल सौ; होय सिद्ध तोडेवि ॥ १६ ॥

छप्पय ।

एक जान द्वै तोरि, तीन रस चार न भासहु ।
पंच जीत पटराख, सात तज आठ विनाशहु ॥
नव संभारि दश धारि, ग्यारमहिं बारह भावहु ।
तेरह तिर चौदहें चढ़त, पन्द्रह विलगावहु ॥
सोलहन मेटि सत्रह भजहु, अट्ठारह कंहं करहु छय ।
सम गणि उनीस बीसहिं विरचि, वानारसि आनंद मय १७

तात्पर्य—दोहा ।

शुद्ध आतमा एक जिन, राग द्वेष द्वय बंध ।
तीन शुद्ध ज्ञानादि गुण, चारों विकथा धंध ॥ १८ ॥
प्रबल पंच इन्द्री सुभट, षट विधि जीवनिकाय ।
जुआ आदि सातों व्यसन, अष्टकर्म समुदाय ॥ १९ ॥

ब्रह्मचर्य्यकी बाड़ि नव, दश मुनिधर्मविचार।
ग्यारह प्रतिमा श्रावकी, बारह भावन सार ॥ २० ॥

तेरह थानक जीव के, चौदह गुण ठानाइ।
पन्द्रह जोग शरीरके, सोलह भेद कहाइ ॥ २१ ॥

सत्रह विधि संयम सही, जीव समास उनीस।
दोष अठारह जान सब, पुद्गलके गुण बीस ॥ २२ ॥

इति प्रस्ताविक फुटकर कविता।

अथ गोरखनाथके वचन.

चौपाई।

जो भग देख भामिनी मानै। लिङ्ग देख जो पुरुप प्रमानै ॥
जो विन चिह्न नपुंसक जोवा। कह गोरख तीनों घर खोवा ॥ १ ॥

जो घर त्याग कहावे जोगी। घरवासीको कहै जु भोगी।
अन्तरभाव न परखै जोई। गोरख बोलै मूरख सोई ॥ २ ॥

पढ़ ग्रन्थहिं जो ज्ञान बखानै। पवन साध परमारथ मानै।
परम तत्त्वके होहिं न मरमी। कह गोरख सो महाअधर्मी ॥ ३ ॥

माया जोर कहै मैं ठाकर। माया गये कहावै चाकर।
माया त्याग होय जो दानी। कह गोरख तीनों अज्ञानी ॥ ४ ॥

कोमल पिंड कहावै चेला। कठिन पिंडसों ठेला पेला।
जूना पिंड कहावै बूढा। कह गोरख ए तीनों मूढा ॥ ५ ॥

विन परिचय जो वस्तु विचारै। ध्यान अग्नि विनतन परजारै।
ज्ञानमगन विन रहै अबोला। कह गोरख सो बाला भोला॥६॥
सुनरे बाचा चुनियाँ मुनियाँ। उलट वेधसों उलटी दुनियां।
सतगुरु कहै सहजका धंधा। वाद विवाद करै सो अंधा॥७॥

इति गोरखनाथके वचन.

अथ वैद्य आदिके भेद.

वैद्यलक्षण.

कर्म रोगकी प्रकृती पावै। यथायोग्य औषधि फरमावै।
उदय नाड़िकाकी गति जानै। सो सुवैद्य मेरे मन मानै॥१॥

ज्योतिषीलक्षण.

नवरस रूप गिरह पहिचानै। बारह राशि भावना भानै॥
सहज संक्रमण साधै जोई। ज्योतिषराय ज्योतिषी सोई॥२॥

वैष्णवलक्षणदोहा।

तिलक तोष माला विरति, मति मुद्रा श्रुति छाप।
इन लक्षणसों वैषणव, समुझै हरि परताप॥ ३॥
जो हरि घटमें हरि लखै, हरि बाना हरि बोइ।
हरि छिन हरि सुमरन करै, विमल वैषणव सोइ॥४॥

मुसलमानलक्षण.

जो मन मूसै आपनो, साहिबके रुख होय।
ज्ञान मुसल्ला गह टिकै, मुसलमान है सोय॥ ५॥

गह्वर लक्षण.

जो मन लावे भरमसों, परम प्राप्ति कहँ खोय।
जहँ विवेकको वर गयो, गवर कहावै सोय॥ ६॥

एक रूप हिन्दू तुरुक, दूजी दशा न कोय।
मनकी द्विविधा मानकर, भये एकसों दोय॥ ७॥
दोऊ भूले भरममें, करैं वचनकी टेक।
राम राम हिन्दू कहें, तुर्क सलामालेक॥ ८॥
इनके पुस्तक बांचिये, वेहू पढ़ें कितेब।
एक वस्तुके नाम द्वय, जैसे शोभा, जेब,॥ ९॥
तिनको द्विविधा-जे लखें, रंग विरंगी चाम।
मेरे नैनन देखिये, घट घट अन्तर राम॥ १०॥
यहै गुप्त यह है प्रगट, यह बाहिर यह माहिं।
जब लग यह कछु है रहा, तब लग यह कछु नाहिं ११
ब्रह्मज्ञान आकाशमें, उड़हिं सुमति खग होय।
यथाशक्ति उद्यम करहिं, पार न पावहिं कोय॥१२॥
गई वस्तु सोचै नहीं, आगम चिंता नाहिं।
वर्तमान वरतै सदा, सो ज्ञाता जगमाहिं॥ १३॥
जो विलसै सुख संपदा, गये ताहि दुख होय।
जो धरती बहु तृणवती, जरै अग्निसों सोय॥ १४॥
धन पाये मन लहलहै, गये करै चित शोक।
भोजन कर केहरि[1] लखै, वररुचि कैसो बोक[2]॥ १५॥

---

१ सिंह. २ बकरा.

माया छाया एक है, घटै बढ़ै छिनमाहिं ।
इनकी संगति जे लगैं, तिनहिं कहीं सुख नाहिं ॥ १६ ॥

जे मायासों राचिके, मनमें राखहिं बोझ ।
कै तो तिनसों खर भलो, कै जंगलको रोझ ॥ १७ ॥

इस माया के कारणै, जेर कटावहिं सीस ।
ते मूरख क्यों कर सकैं, हरिभक्तनकी रीस ॥ १८ ॥

लोभ मूल सब पापको, दुखको मूल सनेह ।
मूल अजीरण व्याधिको, मरणमूल यह देह ॥ १९ ॥

जैसी मति तैसी दशा, तैसी गति तिह पाहिं ।
पशु मूरख भूपर चलहिं, खग पंडित नभमाहिं ॥ २० ॥

सम्यकदृष्टी कुक्रिया, करै न अपने वश्य ।
पूरब कर्म उदोत है, रस दे जाहिं अवश्य ॥ २१ ॥

जो महंत है ज्ञानबिन, फिरै फुलाये गाल ।
आप मत्त औरन करै, सो कलिमाहिं कलाल ॥ २२ ॥

ज्यों पावक बिन नहिं सरै, करै यदपि पुर दाह ।
त्यों अपराधी मित्रकी, होय सबनको चाह ॥ २३ ॥

कर्त्ता जीव सदीव है, करै कर्म स्वयमेव ।
यह तन कृत्रिम देहरा, तामें चेतन देव ॥ २४ ॥

केवलज्ञानी कर्मको, नहिं कर्त्ता बिन प्रेम ।
देह अकृत्रिम देहरा, देव निरंजन एम ॥ २५ ॥

भूमि यान धन धान्य गृह, भाजन कुप्य अपार ।
सयनासन चौपद द्विपद, परिगह दश परकार ॥ २६ ॥
स्नान पान परिधान पट, निद्रा मूत्र पुरीस ।
ये षट कर्म सबहिं करे, राजा रंक सरीस ॥ २७ ॥
उचित वसन सुरुचित असन, सलिल पान सुख सैन ।
बड़ी नीति लघुनीतिसों, होय सबनको चैनं ॥ २८ ॥

चतुर्दश नियम

विगै दरव तंवोल पट, शील सचित्त स्नान ।
दिशि अहार पान रु पुहुप, सयन विलेपन यान ॥ २९ ॥
शीलवन्त मंडै न तन, अघि पद गहै न संत ।
पिताजात न हनैं पिता, सती न मारहि कंत ॥ ३० ॥
कामी तन मंडन करै, दुष्ट गहै अधिकार ।
जारजात मारहि पिता, असति हनैं भरतार ॥ ३१ ॥
ज्ञानहीन करणी करै, यों निजमन आमोद ।
ज्यों छेरी निज खुरहितैं, छुरी निकासै खोद ॥ ३२ ॥
राजऋद्धि सुख भोगवै, ऐसे मूढ़ अजान ।
महा सन्निपाती करहि, जैसें शरबत पान ॥ ३३ ॥
जहँ आपा तहँ आपदा, जहँ संशय तहँ सोग ।
सतगुरु विन भागें नहीं, दोऊ जालिम रोग ॥ ३४ ॥
जे आशाके दास ते, पुरुष जगतके दास ।
आशा दासी जास की, जगत दास है तास ॥ ३५ ॥

संसारी उद्धार तज, धरैं रोक पर प्यार।
ज्ञानी रोक न आदरै, करै दरब उद्धार ॥ ३६ ॥
कारण काज न जो लखै, भेद अभेद न जान।
वस्तुरूप समुझै नहीं, सो मूरख परधान ॥ ३७ ॥
देव धर्म गुरु ग्रन्थ मत, रत्न जगतमें चार।
सांचे लीजे परखिके, झूठे दीजे डार ॥ ३८ ॥
अष्टारहदूषणरहित, देव सुगुरु निरग्रंथ।
धर्म दया पूरवअपर,-मतअविरोधि सुग्रन्थ ॥ ३९ ॥
सुनिकै वाणी जैनकी, जैन धरै मन ठीक।
जैनधर्म विन जीवकी, जै न होय तहकीक ॥ ४० ॥
उपजै उर सन्तुष्टता, दग दुष्टता न होय।
मिटै मोहमदपुष्टता, सहज सुष्टता सोय ॥ ४१ ॥

इति वैद्यलक्षणादि प्रस्ताविक कविता.

अथ परमार्थवचनिका लिख्यते।

एक जीवद्रव्य ताके अनंत गुण अनन्त पर्य्याय. एक एक गुणके असंख्यात प्रदेश, एक एक प्रदेशनिविषै अनन्त कर्मवर्गणा, एक एक कर्मवर्गणाविषै अनन्त अनन्त पुद्गल परमाणु एक एक पुद्गल परमाणु अनन्त गुण अनंत पर्य्यायसहित विराजमान. यह एक संसारावस्थित जीव पिंडकी अवस्था. याहीभांति अनन्त जीवद्रव्य सपिंडरूप जानने. एकजीव द्रव्य

अनंत अनन्त पुद्गलद्रव्यकरि संयोगित (संयुक्त) मानने। ताको व्यौरौ,—

अन्य अन्यरूप जीवद्रव्यकी परनति; अन्य अन्यरूप पुद्गलद्रव्यकी परनति, ताको व्यौरौ—

एक जीवद्रव्य जा भांतिकी अवस्थालिये नानाकाररूप परिनमैं सो भांति अन्य जीवसों मिलै नाहीं। वाकी और भांति। आहीभांति अनंतानंत स्वरूप जीवद्रव्य अनन्तानंत स्वरूप अवस्थालिये वर्तेहिं। काहु जीवद्रव्यके परिनाम काहु जीवद्रव्य औरसौं मिलइ नाहीं। याही भांति एक पुद्गल परवानू एक समयमांहि जा भांतिकी अवस्था धरै, सो अवस्था अन्य पुद्गल परवानू द्रव्यसौं मिलै नाहीं. तातैं पुद्गल (परमाणु) द्रव्यकी भी अन्य अन्यता जाननी।

अथ जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य एक छेत्रावगाही अनादिकालके, तामैं विशेष इतनौ जु जीवद्रव्य एक, पुद्गलपरवानू द्रव्य अनंतानंत चलाचलरूप आगमनगमनरूप अनंताकार परिनमनरूप वंधमुक्तिशक्तिलिये वर्त्तहिं।

अथ जीवद्रव्यकी अनन्त अवस्था तामैं तीन अवस्था मुख्य थापी। एक अशुद्ध अवस्था, एक शुद्धाशुद्धरूप मिश्र अवस्था, एक शुद्ध अवस्था, ए तीन अवस्था संसारी जीवद्रव्यकी। संसारातीत सिद्ध अनवस्थितरूप कहिये।

अव तीनहूं अवस्थाकौ विचार—एक अशुद्ध निश्चया-

त्मक द्रव्य, एक शुद्धनिश्चयात्मक द्रव्य, एक मिश्रनिश्चयात्मक द्रव्य। अशुद्धनिश्चय द्रव्यकों सहकारी अशुद्ध व्यवहार, मिश्रद्रव्यकों सहकारी मिश्र व्यवहार, शुद्ध द्रव्यको सहकारी शुद्धव्यवहार।

अब निश्चय व्यवहार को विचरण लिख्यते।

निश्चय तो अभेदरूप द्रव्य, व्यवहार द्रव्यके यथास्थित भाव। परन्तु विशेष इतनौ जु यावत्काल संसारावस्था तावत्काल व्यवहार कहिये. सिद्ध व्यवहारातीत कहिये, यातैं जु संसार व्यवहार एकरूप दिखायो. संसारी सो व्यवहारी, व्यवहारी सो संसारी।

अब तीनहूं अवस्थाको विवरण लिख्यते।

यावत्काल मिथ्यात्व अवस्था, तावत्काल अशुद्ध निश्चयात्मक द्रव्य अशुद्धव्यवहारी। सम्यग्दृष्टी होत मात्र चतुर्थ गुणस्थानकसौं द्वादशम. गुणस्थानकपर्यन्त मिश्रनिश्चयात्मक द्रव्य मिश्रव्यवहारी। केवलज्ञानी शुद्धनिश्चयात्मक शुद्धव्यवहारी।

अब निश्चय तौ द्रव्यको स्वरूप, व्यवहार संसारावस्थित भाव, ताको विवरण कहै हैं,—

मिथ्यादृष्टी जीव अपनौ स्वरूप नाहीं जानतौ तातैं परस्वरूपविषै मगन होय करि कार्य मानतु है ता कार्य करतौ छतौ अशुद्धव्यवहारी कहिए। सम्यग्दृष्टी अपनौ स्वरूप परोक्ष प्रमानकरि अनुभवतु है। परसत्ता परस्वरूपसौं अ-

पनौं कार्य नाही मानतौ संतौ जोगद्वारकरि अपने स्वरूपको ध्यान विचाररूप क्रिया करतु है, ता कार्य करतौ मिश्र व्यवहारी कहिए. केवलज्ञानी यथाख्यातचारित्रके बलकरि शुद्धात्मस्वरूपको रमनशील है तातैं शुद्धव्यवहारी कहिए. जोगारूढ अवस्था विद्यमान है तातैं व्यवहारी नाम कहिए। शुद्धव्यवहारकी सरहद्द त्रयोदशम गुनस्थानकसौं लेइकरि चतुर्दशम गुनस्थानकपर्यंत जाननी। असिद्धत्वपरिणमनत्वात् व्यवहारः।

अथ तीनहूं व्यवहारको स्वरूप कहै हैं—

अशुद्ध व्यवहार शुभाशुभाचाररूप, शुद्धाशुद्धव्यवहार शुभोपयोगमिश्रित स्वरूपाचरनरूप, शुद्धव्यवहार शुद्धस्वरूपाचरनरूप। परन्तु विशेष इनको इतनो जु कोऊ कहै कि—शुद्धस्वरूपाचरणात्म तौ सिद्धहूविषै छतौ है. उहां भी व्यवहार संज्ञा कहिए—सो यौं नाहीं—जातैं संसारी अवस्थापर्यन्त व्यवहार कहिए। संसारावस्थाके मिटत व्यवहार भी मिटी कहिए। इहां यह थापना कीनी है तातैं सिद्धव्यवहारातीत कहिए। इति व्यवहारविचार समाप्तः।

अथ आगमअध्यातमको स्वरूप कथ्यते।

आगम—वस्तुको जु स्वभाव सो आगम कहिए। आत्माको जु अधिकार सो अध्यातम कहिए। आगम तथा अध्यात्म स्वरूप भाव आत्मद्रव्यके जानने। ते दोऊभाव संसार अवस्थाविषै त्रिकालवर्ती मानने। ताको व्यौरौ—आगमरूप

कर्मपद्धति, अध्यात्मरूप शुद्धचेतनापद्धति। ताकौ व्यौरौ-कर्मपद्धति पौद्गलीकद्रव्यरूप अथवा भावरूप, द्रव्यरूप पुद्गलपरिणाम, भावरूप पुद्गलाकारआत्माकी अशुद्धपरिणतिरूप परिणाम-ते दोऊपरिणाम आगमरूप थापे। अब शुद्धचेतनापद्धति शुद्धात्मपरिणाम सो भी द्रव्यरूप अथवा भावरूप। द्रव्यरूप तौ जीवत्वपरिणाम-भावरूप ज्ञानदर्शन सुखवीर्य आदि अनन्तगुणपरिणाम, ते दोऊ परिणाम अध्यात्मरूप जानने। आगम अध्यात्म दुहुं पद्धतिविषै अनन्तता माननी।

अनन्तता कहा ताको विचार—

अनंतताको स्वरूप दृष्टान्तकरि दिखाइयतु है जैसैं—वटवृक्षको बीज एक हाथविषै लीजै. ताको विचार दीर्घ दृष्टिसौं कीजै तो वा वटके बीजविषै एक वटको वृक्ष है. सो वृक्ष जैसो कछु भाविकाल होनहार है तैसो विस्तारलिये विद्यमान वामैं वास्तवरूप छतो है. अनेक शाखा प्रशाखा पत्र पुष्पफलसंयुक्त है फल फलविषै अनेक बीज होंहि। या भांतिकी अवस्था एक वटके बीजविषै विचारिए। भी और सूक्ष्मदृष्टि दीजै तो जे जे वा वट वृक्षविषै बीज हैं ते ते अंतगर्भित वटवृक्षसंयुक्त होंहिं। याहीभांति एकवटविषै अनेक अनेक बीज, एक एक बीज विषै एक एक वट, ताको विचार कीजै तौ भाविनयप्रवानकरि न वटवृक्षनिकी मर्यादा पाइए

न बीजनिकी मर्यादा पाइए। याही भांति अनंतताको स्वरूप जाननौ। ता अनंतताके स्वरूपको केवलज्ञानी पुरुष भी अनन्तही देखै जाणै कहै—अनन्तको ओर अंत है ही नाही जो ज्ञानविषै भासै। तातैं अनंतता अनंतहीरूप प्रति भासै, या भांति आगम अध्यातमकी अनंतता जाननी. तामैं विशेष इतनौ जु अध्यातमकौ स्वरूप अनंत आगमको स्वरूप अनंतानंतरूप, यथापना प्रवानकरि अध्यात्म एक द्रव्याश्रित। आगम अनंतानन्त पुद्गलद्रव्याश्रित। इन दुहूंको स्वरूप सर्वथा प्रकार तौ केवलगोचर, अंशमात्र मतिश्रुतज्ञानग्राह्य तातैं सर्वथाप्रकार आगमी अध्यात्मी तो केवली, अंशमात्र मतिश्रुतज्ञानी, ज्ञातादेशमात्र अवधिज्ञानी मनःपर्यय ज्ञानी, ए तीनों यथावस्थित ज्ञानप्रमाण न्यूनाधिकरूप जानने। मिथ्यादृष्टी जीव न आगमी न अध्यात्मी है। काहेतैं यातैं जु कथन मात्र तौ ग्रंथपाठके बलकरि आगम अध्यातमको स्वरूप उपदेशमात्र कहै परन्तु आगम अध्यातमको स्वरूप सम्यक् प्रकार जानैं नहीं। तातैं मूढ जीव न आगमी न अध्यात्मी, निर्वेदकत्वात्।

अब मूढ तथा ज्ञानी जीवको विशेषपणौ और भी सुनो,—

ज्ञाता तो मोक्षमार्ग साधि जानै. मूढ मोक्षमार्ग न साधि जानै काहे—यातैं सुनो—मूढ जीव आगमपद्धतिको व्यवहार कहै अध्यात्मपद्धतिको निश्चय कहै तातैं आगम

अंग एकान्तपनौ साधिके मोक्षमार्ग दिखावै अध्यात्म अं-गको व्यवहारै न जानै यह मूढदृष्टीको स्वभाव, वाहि याही भांति सूझै काहेतैं?—यातैं—जु आगम अंग बाह्यक्रियारूप प्र-त्यक्ष प्रमाण है ताको स्वरूप साधिवो सुगम। ता बाह्यक्रिया करतौ संतौ आपकूं मूढ जीव मोक्षको अधिकारी मानै, अ-न्तरगर्भित जो अध्यात्मरूप क्रिया सो अंतरदृष्टिग्राह्य है सो क्रिया मूढजीव न जानै। अन्तरदृष्टिके अभावसैं अन्तर क्रिया दृष्टिगोचर आवै नाहीं, तातैं मिथ्यादृष्टी जीव मोक्ष-मार्ग साधिवेको असमर्थ।

अब सम्यक्दृष्टीको विचार सुनौ—

सम्यग्दृष्टी कहा सो सुनो—संशय विमोह विभ्रम ए तीन भाव जामैं नाहीं सो सम्यग्दृष्टी। संशय विमोह विभ्रम कहा ताको स्वरूप दृष्टान्तकरि दिखायतु है सो सुनो-जैसैं च्यार पुरुष काहु एकस्थानकविषै ठाढ़े। तिन्ह चारिहूंके आगे एक सीपको खंड किनही और पुरुषनै आनि दिखायो। प्रत्येक प्रत्येकतैं प्रश्न कीनी कि यह कहा है सीप है कै रूपौ है. प्रथमही एक पुरुष संशैवालो बोल्यो—कछु सुध नाहीन परत, किधौं सीप है किधौं रूपौ है मोरी दिष्टिविषै याकौ निरधार होत नाहिनै। भी दूजो पुरुष विमोहवालो बोल्यो कि—कछू मोहि यह सुधि नाही कि तुम सीप कौनसौं कहतु है रूपौ कौनसौं कहतु है मेरी दृष्टिविषै कछु आवतु नाही तातैं हम नांहिनै जानत कि

तू कहा कहतु है अथवा चुप ह्वै रहै बोलै नाही गहलरूपसौं । भी तीसरो पुरुष विभ्रमवालो बोल्यो कि—यह तौ प्रत्यक्षप्रमान रूपो है याको सीप कौन कहै मेरी दृष्टिविषै तौ रूपो सूझतु है तातैं सर्वथाप्रकार यह रूपो है । सो तीनौं पुरुष तौ वा सीपको स्वरूप जान्यौ नाहीं । तातै तीनौं मिथ्यावादी । अब चौथौ पुरुष बोल्यो कि यह तौ प्रत्यक्ष प्रमान सीपको खंड है यामैं कहा धोखो, सीप सीप सीप, निरधार सीप, याको जु कोई और वस्तु कहै सो प्रत्यक्षप्रमान भ्रामक अथवा अंध. तैसें सम्यग्दृष्टीको स्वपरस्वरूपविषै न संसै न विमोह न विभ्रम यथार्थ दृष्टि है तातैं सम्यग्दृष्टी जीव अन्तरदृष्टि करि मोक्षपद्धति साधि जानै । बाह्यभाव बाह्यनिमित्तरूप मानै, सो निमित्त नानारूप, एक रूप नाहीं. अन्तरदृष्टिके प्रमान मोक्षमार्ग साधै. सम्यग्ज्ञान स्वरूपाचरनकी कनिका जागे मोक्षमार्ग सांचौ । मोक्षमार्गकौ साधिवो यहै व्यवहार, शुद्धद्रव्य अक्रियारूप सो निश्चै । ऐसैं निश्चय व्यहारकौ स्वरूप सम्यग्दृष्टी जानै. मूढ जीव न जानै न मानै । मूढ जीव बंधपद्धतिको साधिकरि मोक्ष कहै, सो वात ज्ञाता मानै नाहीं । काहेतैं यातैं जु बंधके साधते बंध सधै, मोक्ष सधै नाहीं । ज्ञाता जब कदाचित बंधपद्धति विचारै तब जानै कि या पद्धतिसौं मेरो द्रव्य अनादिको बन्धरूप चल्यो आयो है—अब या पद्धतिसौं मोह तौरि वहै तौ या पद्धतिको राग पूर्वकी ज्यौं हे

नर काहे करौ ? । छिन मात्र भी बन्धपद्धतिविषै मगन होय नाहीं सो ज्ञाता अपनो स्वरूप विचारै अनुभवै ध्यावै गावै श्रवन करै नवधाभक्ति तप क्रिया अपने शुद्धस्वरूपके सन्मुख होइकरि करै । यह ज्ञाताको आचार, याहीकों नाम मिश्रव्यवहार ॥

अब हेयज्ञेयउपादेयरूप ज्ञाताकी चालताको विचारलिख्यते-

हेय-त्यागरूप तौ अपने द्रव्यकी अशुद्धता, ज्ञेय-विचाररूप अन्यषट्द्रव्यको स्वरूप, उपादेय—आचरन रूप अपने द्रव्यकी अशुद्धता, ताको ब्यौरौ—गुणस्थानक प्रमान हेयज्ञेयउपादेयरूप शक्ति ज्ञाताकी होइ । ज्यों ज्यों ज्ञाताकी हेय ज्ञेयउपादेयरूप शक्ति वर्द्धमान होय त्यों त्यों गुनस्थानककी बढवारी कही है. गुणस्थानकप्रवान ज्ञान गुणस्थानक प्रमान क्रिया । तामैं विशेष इतनौ जु एक गुणस्थानकवर्ती अनेक जीव होंहिं तौ अनेक रूपको ज्ञान कहिए, अनेक रूपकी क्रिया कहिए । भिन्न भिन्नसत्ताके प्रवानकरि एकता मिलै नाहीं । एक एक जीव द्रव्यविषै अन्य अन्य रूप उदीक भाव होंहि तिन उदीकभावानुसारी ज्ञानकी अन्य अन्यता जाननी । परंतु विशेष इतनौ जु कोऊ जातिको ज्ञान ऐसो न होइ जु परसत्तावलंबनशीली होइकरि मोक्षमार्ग साक्षात् कहै काहेतैं अवस्थाप्रवान परसत्तावलंबक है । ज्ञानको परसत्तावलंबी परमार्थता न कहै । जो ज्ञान होय सो स्वसत्तावलंबन.

शीली होइ ताको नाउ ज्ञान। ता ज्ञानकी सहकारभूत निमि- त्तरूप नाना प्रकारके उदीकभाव होंहि। तिन्ह उदीकभाव- नको ज्ञाता तमासगीर। न कर्ता न भोक्ता न अवलंबी तातैं कोऊ यों कहै कि या भांतिके उदीकभाव होंहि सर्वथा तौ फलानौ गुनस्थानक कहिये सो झूठो। तिनि द्रव्यकौ स्वरूप सर्वथा प्रकार जान्यौ नाहीं। काहेतैं—यातैं जु और गुनस्थानक निकी कौन वात चलावै केवलीके भी उदीकभावनिकी नाना- त्वता जाननी। केवलीके भी उदीकभाव एकसे होय नाहीं। काहू केवलीकौं दंड कपाटरूप क्रिया उदै होय काहू केवली कौं नाहीं। तौ केवलीविषै भी उदैकी नानात्वता है तो और गुनस्थान ककी कौन वात चलावै। तातैं उदीक भावनिके भरोसे ज्ञान नाहीं ज्ञान स्वशक्तिप्रवान है। स्वपरप्रकाशक ज्ञानकी शक्ति ज्ञायक प्रमान ज्ञान स्वरूपाचरनरूप चारित्र यथा अनुभव प्रमान यह ज्ञाताको सामर्थ्यपनौ। इन वातनको ब्यौरो कहातांई लिखिये कहां तांई कहिए। वचनातीत इन्द्रियातीत ज्ञानातीत, तातैं यह विचार वहुत कहा लिखहिं। जो ज्ञाता होइगो सो थोरी ही लिख्यो वहुतकरि समुझैगो जो अज्ञानी होयगो सो यह चिठ्ठी सुनैगो सही परन्तु समुझैगा नहीं यह—वचनिका यथाका यथा सुमतिप्रवान केवलिवचनानुसारी है। जो याहिसुणैगो समुझै- गो सरदहैगो ताहि कल्याणकारी है भाग्यप्रमाण।

इति परमार्थवचनिका.

अथ उपादान निमित्तकी चिट्ठी लिख्यंते—

प्रथम हि कोई पूछत है कि निमित्त कहा उपादान कहा ताकौ व्यौरौ—निमित्त तौ संयोगरूप कारण, उपादान वस्तुकी सहज शक्ति। ताको व्यौरो—एक द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान, एक पर्यायार्थिक निमित्तउपादान, ताको व्यौरो—द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान गुनभेदकल्पना। पर्यायार्थिक निमित्त उपादान परजोगकल्पना. ताकी चौभंगी. प्रथम ही गुनभेद कल्पनाकी चौभंगीको विस्तार कहौं सो कैसें,—ऐसें—सुनौ—जीवद्रव्य ताके अनन्त गुन, सब गुन असहाय स्वाधीन सदाकाल। तामैं दोय गुण प्रधान मुख्य थापे, तापर चौंभंगीको विचार एक तौ जीवकौ ज्ञानगुन दूसरो जीवको चारित्रगुन।

ए दोनौं गुण शुद्धरूप भाव जानने। अशुद्धरूप भी जानने यथायोग्य स्थानक मानने ताको व्यौरो—इन दुहूंकी गति न्यारी न्यारी, शक्ति न्यारी न्यारी, जाति न्यारी न्यारी, सत्ता न्यारी न्यारी ताकौ व्यौरौ,—ज्ञानगुणकी तौ ज्ञान अज्ञानरूप गति, स्वपरप्रकाशक शक्ति, ज्ञानरूप तथा मिथ्यात्वरूप जाति, द्रव्यप्रमाण सत्ता, परंतु एक विशेष इतनौ जु ज्ञानरूप जातिको नाश नाहीं, मिथ्यात्वरूप जातिको नाश, सम्यग्दर्शन उत्पत्ति पर्यंत, यह तौ ज्ञान गुणको निर्णय भयो। अब चारित्र गुणको व्यौरौ कहै हैं,—संकलेस

विशुद्धरूप गति, थिरता अथिरता शक्ति, मंदी तीव्ररूप जाति, द्रव्यप्रमाण सत्ता। परंतु एक विशेष जु मंदताकी स्थिति चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यन्त। तीव्रताकी स्थिति पंचम-गुणस्थानक पर्यन्त। यह तौ दुहुकौ गुण भेद न्यारौ न्यारौ कियौ। अब इनकी व्यवस्था न ज्ञान चारित्रके आधीन न चारित्र ज्ञानके आधीन। दोऊ असहाय रूप यह तौ मर्यादा बंध।

अथ चौभंगीको विचार—ज्ञानगुन निमित्त
चारित्रगुण उपादान रूप ताको ब्यौरौ—

एक तो अशुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान दूसरो अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान। तीसरो शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान, चौथो शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान, ताको ब्यौरौ—सूक्ष्मदृष्टि देहकरि एक समयकी अवस्था द्रव्यकी लेनी समुच्चयरूप मिथ्यात्व सम्यक्त्वकी बात नाहीं चलावनी। काहू समै जीवकी अवस्था या भांति होतु है जु जानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र, काहू समै अजानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र, काहू समै जानरूप ज्ञान संकलेस रूप चारित्र, काहू समै अजानरूप ज्ञान संकलेस चारित्र, जा समैं अजानरूप गति ज्ञानकी, संकलेसरूप गति चारित्रकी तासमैं निमित्त उपादान दोऊ अशुद्ध। काहूसमैं अजानरूप ज्ञान विशुद्ध रूप चारित्र तासमैं अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान। काहू समैं जानरूप ज्ञान संकलेसरूप चारित्र तासमैं शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान। काहू समैं जानरूप ज्ञान

विशुद्ध रूप चारित्र तासमैं शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान या भांति अन्य२ दशा जीवकी सदाकाल अनादिरूप, ताकौ ब्यौरौ—ज्ञान रूप ज्ञानकी शुद्धता कहिए विशुद्धरूप चारित्रकी शुद्धता कहिए। अज्ञान रूप ज्ञानकी अशुद्धता कहिए संक्लेश रूप चारित्रकी अशुद्धता कहिये। अब ताकौ विचार सुनो—मिथ्यात्व अवस्था विषै काहू समै जीवको ज्ञान गुण जाण रूप है तब कहा जानतु है? ऐसौ जानतु है—कि लक्ष्मी पुत्र कलत्र इत्यादिक मौसौं न्यारे हैं प्रत्यक्ष प्रमाण। हौं मरूंगो ए इहां ही रहैंगे सो जान तु है। अथवा ए जाहिंगे, हौं रहूंगो, कोई काल इन्हस्यौं मोहि एक दिन विजोग है ऐसो जानपनौ मिथ्यादृष्टीको होतु है सो तो शुद्धता कहिए. परन्तु सम्यक् शुद्धता नाही गर्भितशुद्धता जब वस्तुकौ सरूप जानै तब सम्यक् शुद्धता सो ग्रंथिभेद विना होई नाहीं परंतु गर्भित शुद्धता सौ भी अकाम निर्जरा है वाही जीवको काहू समै ज्ञान गुण अजान रूप है गहलरूप, ताकरि केवल बंध. है. याही भांति मिथ्यात्व अवस्था विषै काहू समै चारित्र गुण विशुद्धरूप है तातैं चारित्रावर्ण कर्म मंद है। ता मंदताकरि निर्जरा है। काहूसमै चारित्र गुण संकलेशरूप है तातैं केवल तीव्रबंध है। या भांति करि मिथ्या अवस्थाविषै जासमै जानरूप ज्ञान है और विशुतारूप चारित्र है ता समै निर्जरा है। जा समैं अजानरूप

ज्ञान है संकलेश रूप चारित्र है तासमैं बंध है तामैं विशेष इतनौ जु अल्प निर्जरा बहु बंध, तातैं मिथ्यात अवस्थाविषै केवल बन्ध कह्यो। अल्पकी अपेक्षा. जैसैं—काहू पुरुषकौं नफो थोड़ो टोटौ बहुत सो पुरुष टोटाउ ही कहिए। परंतु बंध निर्जरा विना जीव काहू अवस्थाविषै नाही। दृष्टान्त ऐसो—जु विशुद्धताकरि निर्जरा न होती तौ एकेन्द्री जीव निगोद अवस्थासौं व्यवहारराशि कौनके बल आवतौ? उहां तौ ज्ञान गुन अजानरूप गहलरूप है अबुद्धरूप है तातैं ज्ञानगुनको तौ बल नाहीं। विशुद्धरूप चारित्रके बलकरि जीव व्यवहार राशि चढतु है. जीवद्रव्यविषै कषाइकी मंदता होतु है ताकरि निर्जरा होतु है। वाही मंदता प्रमान शुद्धता जाननी। अब और भी विस्तार सुनो—

जानपनौ ज्ञानको अरु विशुद्धता चारित्रकी दोऊ मोक्षमार्गानुसारी है तातैं दोऊविषै विशुद्धता माननी। परन्तु विशेष इतनौ जु गर्भित शुद्धता प्रगट शुद्धता नाहीं। इन दुहूं गुणकी गर्भित शुद्धता जबतांई ग्रंथिभेद होय नाहीं तबतांई मोक्षमार्ग न सधै। परन्तु ऊरधताको करहि अवश्य करि ही। ए दोऊ गुणकी गर्भित शुद्धता जब ग्रंथिभेद होइ तब इन दुहूंकी शिखा फूटै तब दोऊं गुन धाराप्रवाहरूप मोक्षमार्गकौं चलहिं। ज्ञानगुनकी शुद्धताकरि ज्ञान गुण निर्मल होहि। चारित्र गुणकी शुद्धता करि चारित्र गुन निर्मल होइ। वह केवल ज्ञानको अंकूर, वह जथाख्यातचारित्रको अंकूर।

इहां कोऊ उटंकना करतु है,—कि तुम कह्यो जु ज्ञानको जाणपनौ अरु चारित्रकी विशुद्धता दुहुंस्यों निर्जरा है सु ज्ञानके जाणपनौ सो निर्जरा यह हम मानी। चारित्रकी विशुद्धतासौं निर्जरा कैसैं? यह हम नाहीं समुझी–ताको समाधान,—

सुनि भैया! विशुद्धता थिरतारूप परिणामसों कहिये सो थिरता जथाख्यातको अंश है तातैं विशुद्धतामें शुद्धता आई॥ भी वह उटंकनावारो बोल्यौ—तुम विशुद्धतासौं निर्जरा कही, हम कहतु है कि विशुद्धतासों निर्जरा नाहीं शुभवन्ध है–ताको सामाधान,—कि सुन भैया यह तौ तू सांचो. विशुद्धतासों शुभवन्ध, संक्लेशतासों अशुभवन्ध, यह तो हम भी मानी परन्तु और भेद यामैं है सो सुनि—अशुभपद्धति अधोगतिको परणमन है शुभपद्धति उर्द्धगतिको परनमन है तातैं अधोरूपसंसार उर्द्धरूप मोक्षस्थान पकरि, शुद्धता वामें आई मानि मानि, यामैं धोखौ नाहीं है। विशुद्धता सदा काल मोक्षको मार्ग है परन्तु ग्रन्थभेद विना शुद्धताको जोर चलत नाहींनै? जैसैं कोऊ पुरुष नदीमैं डुवक मारे फिर जब उछलै तब दैवजोगसों ऊपर ता पुरुषके नौका आय जाय तौ यद्यपि तारू पुरुष है तथापि कौन भांति निकलै? वाको जौर चलै नाहिं, वहुतेरा कलवल करै पै कछु वसाइ नांही, तैसें विशुद्धताकी भी ऊर्द्धता जाननी। ता वास्तै गर्भित शुद्धता कही। वह गर्भित शुद्धता ग्रंथिभेद भये मोक्षमार्गको चली। अपने स्वभाव

करि वर्द्धमानरूप भई तब पूर्ण जथाख्यात प्रगट कहायो। विशुद्धताकी जु ऊर्द्धता वहै वाकी शुद्धता।

और सुनि जहां मोक्षमार्ग साध्यौ तहां कह्यौ कि 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' और यौं भी कह्यौ कि "ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः" ताको विचार—चतुर्थ गुणस्थानकसुं लेकरि चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यन्त मोक्षमार्ग कह्यौ ताकौ व्यौरौ, सम्यक्‌रूप ज्ञानधारा विशुद्धरूप चारित्रधारा दोऊ धारा मोक्षमार्गको चली सु ज्ञानसौं ज्ञानकी शुद्धता क्रियासौं क्रियाकी शुद्धता। जो विशुद्धतामैं शुद्धता है तौ जथाख्यात रूप होत है। जो विशुद्धतामैं ता न होती तौ ज्ञान गुन शुद्ध होतो क्रिया अशुद्ध रहती केवली विषै, सो यौं तौ नहीं वामैं शुद्धता हती ताकरि विशुद्धता भई। इहां कोई कहैगो कि ज्ञानकी शुद्धताकरि क्रिया शुद्ध भई सो यों नाहीं। कोऊ गुन काहू गुनके सारै नहीं सब असहाय रूप है। और भी सुनि जो क्रियापद्धति सर्वथा अशुद्ध होती तौ अशुद्धताकी एती शक्ति नाहीं जु मोक्षमार्गको चलै तातैं विशुद्धतामैं जथाख्यातको अंश है तातैं वह अंश क्रम क्रम पूरण भयौ। ए भइया उटकनावारे—तैं विशुद्धतामै शुद्धता मानी कि नाहीं. जो तौ तैं मानी तौ कछु और कहिवेकौ कार्य नाहीं। जो तैं नाहीं मानी तौ तेरौ द्रव्य याहीभांतिकौ परनयौ है हम कहा करि हैं जो मानी तौ स्यावासि। यह तौ द्रव्यार्थिककी चौभंगी पूरन भई।

निमित्त उपादान शुद्ध अशुद्धरूप विचार—

अब पर्यायार्थिककी चौभंगी सुनौ एक तौ वक्ता अज्ञानी; श्रोता भी अज्ञानी, सो तौ निमित्त भी अशुद्ध उपादान भी अशुद्ध। दूसरो वक्ता अज्ञानी श्रोता ज्ञानी सो निमित्त अशुद्ध और उपादान शुद्ध। तीसरो वक्ता ज्ञानी श्रोता अज्ञानी सो निमित्त शुद्ध उपादान अशुद्ध। चौथौ—वक्ता ज्ञानी श्रोता भी ज्ञानी सो तो निमित्त भी शुद्ध २ उपादान भी शुद्ध। यह पर्यायार्थिककी चौभंगी साधी।

इति निमित्तउपादान शुद्धाशुद्धरूपविचार वचनिका.

अथ निमित्तउपादानके दोहे लिख्यते।

दोहा।

गुरुउपदेश निमित्त विन, उपादानबलहीन।
ज्यों नर दूजे पांव विन, चलवेको आधीन ॥ १ ॥

हौं जानै था एक ही, उपादानसों काज।
थकै सहाई पौन विन, पानीमांहि जहाज ॥ २ ॥

दोनों दोहोंका उत्तर,

ज्ञान नैन किरिया चरन, दोऊ शिवमगधार।
उपादान निहचै जहाँ, तहँ निमित्त व्योहार ॥ ३ ॥

उपादान निज गुण जहाँ, तहँ निमित्त पर होय।
भेद ज्ञान परवान विधि, विरला बूझै कोय ॥ ४ ॥

उपादान बल जहँ तहाँ, नहिं निमित्तको दाव।
एक चक्रसौं रथ चलै, रविको यहै सभाव ॥ ५ ॥
सधै वस्तु असहाय जहँ, तहँ निमित्त है कोन।
ज्यों जहाज परवाहमें, तिरै सहज विन पौन ॥ ६ ॥
उपादान विधि निरवचन, है निमित्त उपदेस।
बसै जु जैसे देशमें, करै सु तैसे भेस ॥ ७ ॥

इति निमित्त उपादानके दोहे.

अथ अध्यातमपदपंक्ति लिख्यते.

(१)

राग भैरव[1]

या चेतनकी सब सुधि गई।
व्यापत मोहि विकलता भई, या चेतनकी० टेक
है जडरूप अपावन देह।
तासौं राखै परमसनेह, या चेतनकी० ॥ १ ॥
आइ मिले जन स्वारथबंध।
तिनहिं कुटंब कहै जा बंध ॥
आप अकेला जनमै मरै।
सकल लोककी ममता धरै, या चेतनकी० ॥ २ ॥

१ इस रागमेंसे टेक निकाल दी जावे तो खासी १५ मात्राकी चौपाई हो जाती है।

होत विभूति दानके दिये ।
यह परपंच विचारै हिये ।

भरमत फिरै न पावइ ठौर ।
ठानै मूढ औरकी और, या चेतनकी० ॥ ३ ॥

बंध हेतको करै जुखेद ।
जानै नहीं मोक्षको भेद ।

मिटै सहज संसार निवास ।
तब सुख लहै बनारसिदास, या चेतनकी० ॥४॥

(२)

राग रामकली—

चेतन तू तिंहुकाल अकेला,
नदी नावसंजोग मिलै ज्यों, त्यों कुटंबका मेला, चेतन० ॥ टेक ॥

यह संसार असार रूप सब, ज्यों पटपेखन खेला ।
सुखसंपति शरीर जलबुदबुद, विनशत नाहीं वेला, चेतन० ॥१॥

मोहमगन आतमगुन भूलत, परी तोहि गलजेला ।
मैं मैं करत चहूं गति डोलत, बोलत जैसें छेला, चेतन० ॥ २ ॥

कहत बनारसि मिथ्यामत तज, होय सुगुरुका चेला ।
तास वचन परतीत आन जिय, होइ सहज सुरझेला, चेतन० ॥३॥

---

१ बकरीका बच्चा.

(३).

राग रामकली।

मगन है आराधो साधो! अलख पुरुष प्रभु ऐसा॥ टेक॥
जहाँ जहाँ जिस रससौं राचै, तहाँ तहाँ तिस भेसा, मगन० ॥१॥

सहजप्रवान प्रवान रूपमें, संसैमें संसैसा।
धरै चपलता चपल कहावै, लै विधानमें लै सा, मगन० ॥ २ ॥

उद्यम करत उद्यमी कहिये, उदयसरूप उदै सा।
व्यवहारी व्यवहार करममें, निहचैमें निहचै सा, मगन० ॥३॥

पूरण दशा धरै संपूरण, नय विचारमें तैसा।
दरवित सदा अखै सुखसागर, भावित उतपति खैसा, मगन०४॥

नाहीं कहत होइ नाहीं सा, है कहिये तौ है सा।
एक अनेक रूप है वरता, कहौं कहाँ लों कैसा, मगन०॥५॥

वह अपार ज्यों रतन अमोलक, बुधि विवेक ज्यों पैसा।
कल्पित वचन विलास 'बनारसि' वह जैसेका तैसा, मगन०॥६॥

(४)

दोहा—

जिनप्रतिमा जिनसारखी, कही जिनागम माहिं।
पै जाके दूषण लगै, वंदनीक सो नाहिं॥ १ ॥

मेटी मुद्रा अवधिसों, कुमती कियो कुदेव।
विघन अंग जिनबिंबकी, तजै समकिती सेव॥ २ ॥

(५)

राग विलावल।

इहि विधि देव अदेवकी, मुद्रा लखलीजे,
गुन लच्छन पहिचानकै, पद पूजा कीजै ॥ टेक॥
पट भूषन पहरे रहै, प्रतिमा जो कोई।
सो गृहस्थ मायामयी, मुनिराज न होई ॥ २ ॥
जाके तिय संगति नहीं, नहिं वसन न भूषन।
सो छवि है सर्वज्ञकी, निर्मल निरदूषन ॥ ३ ॥
वाम अंग जाके त्रिया, अथवा अरधंगी।
सो तो प्रगट कुदेव है, विषयी रसरंगी ॥ ४ ॥
निरद्वंदी निरपरिगृही, जोगासन ध्यानी।
सो है मूरति सिद्धकी, कै केवलज्ञानी ॥ ५ ॥
जो प्रचंड आयुध लिये, कर ऊरध बाहू।
प्रगट विनोदी देवता, मारैगा काहू ॥ ६ ॥
जो न कछू करनी करै, नहिं आयुध पानी।
सो प्रतिमा भगवंतकी, निरवैर निशानी ॥ ७ ॥
जो पशुरूपी पशुमुखी, पशुवाहनधारी।
ते सब असुर अवंदनी, निरदय संसारी ॥ ८ ॥

(६)

राग विलावल।

ऐसैं क्यों प्रभु पाइये, सुन मूरख प्रानी।
जैसैं निरख मरीचिका, मृग मानत पानी। ऐसैं० ॥ १ ॥

ज्यों पकवान चुरैलका, विषयारस त्यों ही।
ताके लालच तू फिरै, भ्रम भूलत यों ही, ऐसैं० ॥ २ ॥

देह अपावन खेटकी, अपनी करि मानी।
भाषा मनसा करमकी, तैं निजकर जानी। ऐसैं० ॥ ३ ॥

नाव कहावति लोककी, सो तौ नहिं भूलै।
जाति जगतकी कलपना, तामैं तू झूलै। ऐसैं० ॥ ४ ॥

माटी भूमि पहारकी, तुह संपति सूझै।
प्रगट पहेली मोहकी, तू तऊ न बूझै। ऐसैं० ॥ ५ ॥

तैं कबहू निज गुनविषै, निजदृष्टि न दीनी।
पराधीन परवस्तुसों, अपनायत कीनी, ऐसैं० ॥ ६ ॥

ज्यों मृगनाभि सुवास सों, ढूंढत बन दौरै।
त्यों तुझमें तेरा धनी, तू खोजत औरै, ऐसैं० ॥ ७ ॥

करता भरता भोगता, घट सो घटमाहीं।
ज्ञान बिना सदगुरु बिना, तू समुझत नाहीं। ऐसैं० ॥८॥

(७)

राग बिलावल।

ऐसैं यों प्रभु पाइये, सुन पंडित प्रानी।
ज्यों मथि माखन काढिये, दधि मेलि मथानी, ऐसैं०॥१॥

ज्यों रसलीन रसायनी, रसरीति अराधै।
त्यों घटमें परमारथी, परमारथ साधै, ऐसैं० ॥ २ ॥

जैसैं वैद्य विथा लहै, गुण दोष विचारै।
तैसें पंडित पिंडकी, रचना निरवारै, ऐसैं० ॥ ३ ॥
पिंडस्वरूप अचेत है, प्रभुरूप न कोई।
जानै मानै रमि रहै, घट व्यापक सोई, ऐसैं० ॥ ४ ॥
चेतन लच्छन है धनी, जड़ लच्छन काया।
चंचल लच्छन चित्त है, भ्रम लच्छन माया, ऐसैं० ॥ ५ ॥
लच्छन भेद विलेच्छको, सु विलच्छन वेदै।
सत्तसरूप हिये धरै, भ्रमरूप उछेदै, ऐसैं० ॥ ६ ॥
ज्यों रजसोधै न्यारिया, धन सौ मनकी लै।
त्यों मुनिकर्म विपाकमें, अपने रस झीलै, ऐसैं० ॥ ७ ॥
आप लखै जब आपको, दुविधापद मेटै।
सेवक साहिब एक है, तब को किहि भेंटै? ऐसैं० ॥ ८ ॥

(८)

राग आसावरी।

तू आतम गुन जानि रे जानि,
साधु वचन मनि आनि रे आनि, तू आतम० ॥१॥
भरत चक्रपति षटखँड साधि,
भावना भावति लही समाधि, तू आतम० ॥ २ ॥
प्रसनचंद्ररिषि भयो सरोष,
मन फेरत फिर पायो मोष, तू आतम० ॥ ३ ॥

---

१ १५ मात्राकी चौपाई।

रावन समकित भयो उदोत,
तब बांध्यो तीर्थंकर गोत, तू आतम० ॥ ४ ॥
सुकल ध्यान धरि गयो सुकुमाल,
पहुँच्यो पंचमगति तिहँ काल, तू आतम० ॥ ५ ॥
दिढ प्रहारकरि हिंसाचार,
गये मुकति निजगुण अवधार, तू आतम० ॥ ६ ॥
देखहु परतछ भृंगी ध्यान,
करत कीट भयो ताहि समान, तू आतम० ॥ ७ ॥
कहत 'बनारसि' बारंबार,
और न तोहि छुडावनहार, तू आतम० ॥ ८ ॥

(९)

राग आसावरी।

रे मन! कर सदा सन्तोष,
जातैं मिटत सब दुखदोष, रे मन० ॥ १ ॥
बढत परिग्रह मोह बाढ़त, अधिक तृषना होति।
बहुत ईंधन जरत जैसें, अगनि ऊंची जोति, रे मन ॥ २ ॥
लोभ लालच मूढजनसों, कहत कंचन दान।
फिरत आरत नहिं विचारत, धरम धनकी हान, रे मन० ॥३॥
नारकिनके पाइ सेवत, सकुच मानत संक।
ज्ञानकरि बूझै 'बनारसि' को नृपति को रंक, रे मन० ॥४॥

(१०)

राग बरवा।

बालम तुहुँ तन चितवन गागरि फूटि।
अँचरा गौ फहराय सरम गै छूटि, बालम ॥ १ ॥
हूं तिक रहूं जे सजनी रजनी घोर।
घर करकेउ न जानै चहुदिसि चोर, बा० ॥ २ ॥
पिउ सुधियावत बनमें पैसिउ पेलि।
छाडउ राज डगरिया भयउ अकेलि, बा० ॥ ३ ॥
संवरौ सारदसामिनि औ गुरु भान।
कछु बलमा परमारथ करौं बखान, बा० ॥ ४ ॥
काय नगरिया भीतर चेतन भूप।
करम लेप लिपटा बल ज्योति स्वरूप, बा० ॥ ५ ॥
दर्शन ज्ञान चरणमय चेतन सोय।
पियरा गरुव सचीकन कंचन होय, बा० ॥ ६ ॥
चेतन चित अवधार सुगुरु उपदेश।
कछु इक जागलि ज्योति ज्ञान गुन लेस, बा० ॥ ७ ॥
अथिररूप सब देखिसि छिन वैराग।
चेतन आपुहि आप बुझावै लाग, बा० ॥ ८ ॥
चेतन तुहु जनि सोवहु नींद अघोर।
चार चौर घर मूंसहि सरवस तोर, बा० ॥ ९ ॥
चेतन तुहूं बनसावज कोलकिरात।
निसिदिन करै अहेर अचानक घात, बा० ॥ १० ॥

चेतनहो तुहूं चेतहु परम पुनीत ।
तजहु कनक अरु कामिनि होहु नचीत ॥ ११ ॥
परेहु करमवस चेतन ज्यों नटकीस ।
कोउ न तोर सहाय छाडि जगदीस ॥ १२ ॥
चेतन बूझि विचार धरहु सन्तोष ।
राग दोष दुइ बंधन छूटत मोष ॥ १३ ॥
मोहजालमें चेतन सब जग जानि ।
तुहु कुवाज तुहु बाझहु सकत भुलान ॥ १४ ॥
चेतन भयेहु अचेतन संगति पाय ।
चकमकमें आगी देखी नहिं जाय ॥ १५ ॥
चेतन तुहि लपटात प्रेमरस फांद ।
जस राखल धन तोपि विमलनिशिचांद ॥ १६ ॥
चेतन तोहि न भूल नरक दुख वास ।
अगनि थंभ तरुसरिता करवत पास ॥ १७ ॥
चेतन जो तुहि तिरजग जोनि फिराउ ।
बांध पांच ठग वेग तोर अब दाउ ॥ १८ ॥
देवजोनि सुख चेतन सुरग बसेर ।
ज्यों विन नीव धौरहर खसत न वेर ॥ १९ ॥
चेतन नर तन पाय बोध नहिं तोहि ।
पुनि तुहु का गति होइहि अचरज मोहि ॥ २० ॥
आदि निगोद निकेतन चेतन तोर ।
भव अनेक फिरि आयेहु कतहु न ओर ॥ २१ ॥

विषय महारस चेतन विष समतूल,
छाडहु वेगि विचारि पापतरुमूल ॥ २२ ॥
गरभवास तुहुं चेतन ऊरध पांव,
सो दुख देख विचार धरमचित लाव ॥ २३ ॥
चेतन यह भवसागर धरम जिहाज,
तिह चढ बैठो छोड लोककी लाज ॥ २४ ॥
दह या दुहु अब चेतन होहु उचाट,
कह या जाउ मुकतिपुरि संजम वाट ॥ २५ ॥
उधवागाय सुनायेहु चेतन चेत,
कहत बनारसि थान नरोत्तम हेत ॥ २६ ॥

(११)

राग धनाश्री ।

चेतन उलटी चाल चले, जड़संगततैं जड़ता व्यापी निज गुन सकल टले, चेतन० टेक ॥ १ ॥ हितसों विरचि-ठगनिसों राचे, मोह पिसाच छले । हँसि हँसि फंद सवारि आप ही, मेलत आप गले, चेतन० ॥ २ ॥ आये निकसि निगोद सिंधुतें, फिर तिह पंथ टले । कैसें परगट होय आग जो दबी पहारतले, चेतन० ॥ ३ ॥ भूले भवभ्रम वीचि 'बनारसि' तुम सुरज्ञान भले । धर शुभध्यान ज्ञाननौका चढि, बैठे ते निकले, चेतन० ॥ ४ ॥

(१२)

पुनः राग धनाश्री ।

चेतन तोहि न नेक संभार, नख सिखलों दिढबंधन बेढे

कौन करै निरवार, चेतन० ॥ १ ॥ जैसैं आग पषान काठमें लखिय न परत लगार। मदिरापान करत मतवारो, ताहि न कछू विचार, चेतन० ॥ २ ॥ ज्यों गजराज पखार आप तन, आप हि डारत छार। आप हि उगलि पाटको कीरौ, तनहिं लपेटत तार, चेतन० ॥ ३ ॥ सहज कबूतर लोटनको सो, खुलै न पेच अपार। और उपाय न बनै 'बनारसि' सुमरन भजन अधार, चेतन० ॥ ४ ॥

(१३)

राग सारंग।

दुविधा कब जै है या मनकी दु०। कब निजनाथ निरंजन सुमिरौं, तज सेवा जन जनकी, दुविधा० ॥ १ ॥ कब रुचिसौं पीवैं दृगचातक, बूंद अखयपद घनकी। कब शुभध्यान, धरौं समता गहि, करूं न ममता तनकी, दुविधा० ॥ २ ॥ कब घट अंतर रहै निरन्तर, दिढता सुगुरु वचनकी। कब सुख लहौं भेद परमारथ, मिटै धारना धनकी, दुविधा० ॥ ३ ॥ कब घर छाँड़ होहुं एकाकी, लिये लालसा बनकी। ऐसी दशा होय कब मेरी, हौं बलिबलि वा छनकी, दुविधा० ॥ ४ ॥

(१४)

राग सारंग।

हम बैठे अपनी मौनसौं। दिन दशके महिमान जगत जन

१ रेशमका कीड़ा गलेके नीचेसे तार निकाल कर उससे अपने शरीरके चारों ओर कोशा बनाकर आप बन्द हो जाता है।

बोलि बिगारैं कौनसौं, हम बैठे० ॥ १ ॥ गये विलाय भरमके बादर, परमारथपथपौनसौं । अब अंतरगति भई हमारी, परचे राधारौनसौं[1], हम बैठे० ॥ २ ॥ प्रघटी सुधापानकी महिमा, मन नहिं लागै वौनसौं[2] । छिन न सुहायँ और रस फीके, रुचि साहिबके लौनसौं, हम बैठे० ॥ ३ ॥ रहे अघाय पाय सुखसंपति को निकसै निज भौनसौं । सहज भाव सद्गुरुकी संगति, सुरझै आवागौनसौं, हम बैठे० ॥ ४ ॥

(१५)

राग सारंग वृंदावनी ।

जगतमें सो देवनको देव । जासु चरन परसैं इन्द्रादिक होय मुकति स्वयमेव, जगतमें० ॥ १ ॥ जो न छुधित न तृषित न भयाकुल, इन्द्रीविषय न वेव । जनम न होय जरा नहिं व्यापै, मिटी मरनकी टेव, जगतमें० ॥ २ ॥ जाकै नहिं विषाद नहिं विस्मय । नहिं आठों अहमेव[3] । राग विरोध मोह नहिं जाकै, नहिं निद्रा परसेव[4], जगतमें० ॥ ३ ॥ नहिं तन रोग न श्रम नहिं चिंता, दोष अठारह भेव । मिटे सहज जाके ता प्रभुकी, करत 'बनारसि' सेव, जगतमें० ॥ ४ ॥

(१६)

पुनः राग सारंग वृंदावनी ।

विराजै रामायण घटमाहिं । मरमी होय मरम सो जानै,

---

१ स्वानुभवरूपी राधारमणसे. २ वमन—छर्दि. ३ अष्टमद.
४ पसेव—पसीना.

मूरख मानै नाहिं, विराजै रामायण० ॥१॥ आतम राम ज्ञान गुन लछमन सीता सुमति समेत । शुभपयोग वानरदल मंडित, वर विवेक रणखेत, विराजै० ॥ २ ॥ ध्यान धनुप टंकार शोर सुनि, गई विषयदिति[1] भाग । भई भस्म मिथ्या-मत लंका उठी धारणा आग, विराजै० ॥ ३ ॥ जरे अज्ञान भाव राक्षसकुल, लरे निकांछित सूर । जूझे रागद्वेष से-नापति संसै गढ चकचूर, विराजै० ॥४॥ विलखत कुंभकरण भवविभ्रम, पुलकित मन दरयाव । थकित उदार वीर महि-रावण, सेतुबंध समभाव, विराजै० ॥ ५ ॥ मूर्छित मंदो-दरी दुराशा, सजग चरन[2] हनुमान । घटी चतुर्गति पर-णति सेना, छुटे छपकगुण बान, विराजै० ॥ ६ ॥ निरखि सकति गुन चक्रसुदर्शन उदय विभीषण दीन । फिरै कवंध मही रावणकी, प्राणभाव शिरहीन, विराजै० ॥ ७ ॥ इह विधि सकल साधुघटअंतर, होय सहज सं-ग्राम, यह विवहारदृष्टि रामायण, केवल निश्चय राम, विराजै० ॥ ८ ॥

(१७)

आलाप, दोहा ।

जो दातार दयाल है, देय दीनको भीख ।
त्यों गुरु कौमल भावसौं, कहै मूढको सीख ॥ १ ॥

---

१ सूर्पनखा राक्षसी. २ सम्यक्चारित्र.

सुगुरु उचारै मूढसौं, चेत चेत चित चेत।
समुझ समुझ गुरुको शवद, यह तेरो हित हेत ॥ २ ॥
शुक सारी समुझैं शवद, समुझि न भूलहिं रंच।
तू मूरति नारायणी, वे तो खग तिरजंच ॥ ३ ॥
होय जौंहरी जगतमें, घटकी आखें खोलि।
तुला सँवार विवेककी, शब्द जवाहिर तोलि ॥ ४ ॥
शब्द जवाहिर शब्द गुरु, शब्द ब्रह्मको खोज।
सब गुण गर्भित शब्दमें, समुझ शब्दकी चोज ॥ ५ ॥
समुझ सकै तो समुझ अब, है दुर्लभ नर देह।
फिर यह संगति कब मिलै, तू चातक हौं मेह ॥ ६ ॥

(१८)

राग गौरी।

भौंदू भाई! समुझ शवद यह मेरा, जो तू देखै इन आँखि-नसौं तामैं कछू न तेरा, भौंदू० ॥ १ ॥ ए आँखें भ्रमहीसों उपजीं, भ्रमहीके रस पागी। जहँ जहँ भ्रम तहँ तहँ इनको श्रम, तू इनहीको रागी, भौंदू भाई० ॥ २ ॥ ए आँखैं दोउ रची चामकी, चाम हि चाम विलोवै। ताकी ओट मोह निद्रा जुत, सुपनरूप तू जोवै, भौंदू भाई० ॥ ३ ॥ इन आँखिनकौं कौन भरोसो, ए विनसैं छिन माहीं। है इनको पुद्गलसौं परचै, तू तो पुद्गल नाहीं, भौंदू भाई० ॥ ४ ॥ पराधीन वल इन आंखिनको, विनु परकाश न सूझै। सो परकाश अगनि

१ व्यंग.

रवि शशिको, तू अपनों कर बूझै, मौंदू भाई० ॥ ५ ॥ खुले पलक ए कछुइक देखहिं, मुंदे पलक नहिं सोऊ। कबहूं जांहि होंहि फिर कबहूं, भ्रामक आंखैं दोऊ, मौंदू भाई० ॥ ६ ॥ जंगमकाय पाय ए प्रगटैं, नहिं थावरके साथी। तू तो इन्हें मान अपने दृग, भयो भीमको हाथी, मौंदू भाई० ॥ ७ ॥ तेरे दृग मुद्रित घट अंतर, अन्धरूप तू डोलै। कै तो सहज खुलै वे आंखैं, कै गुरु संगति खोलै, मौंदू भाई! समुझ शबद यह मेरा ॥ ८ ॥

(१९)

राग गौरी।

मौंदू भाई ते हिरदै की आंखैं, जे करपै अपनी सुख संपति भ्रमकी संपति नाखैं, मौंदू भाई० ॥ १ ॥ जे आंखैं अमृतरस वरखैं, परखैं केवलिवानी। जिन्ह आंखिन विलोक परमारथ, होंहिं कृतारथ प्रानी, मौंदू भाई० ॥ २॥ जिन आंखिनहिं दशा केवलकी, कर्मलेप नहिं लागै। जिन आंखिनके प्रगट होत घट, अलख निरंजन जागै, मौंदू भाई० ॥ ३ ॥ जिन आंखिनसौं निरखि भेद गुन; ज्ञानी ज्ञान विचारै। जिन आंखिनसौं लखिस्वरूप मुनि, ध्यानधारणा धारै, मौंदू भाई० ॥ ४ ॥ जिन आंखिनके जगे जगतके, लगे काज सब झूठे। जिनसौं गमन होइ शिवसनमुख, विषय विकार अपूठे, मौंदू भाई० ॥ ५ ॥ जिन आंखिनमें प्रभा परमकी, परसहाय नहिं

लेखै। जे समाधिसौं लखै अखंडित, ढकै न पलक निमेखै, भौंदू भाई० ॥६॥ जिन आंखिनकी ज्योति प्रगटकैं, इन आंखिनमें भासै। तब इनहूकी मिटै विषमता, समता रस पर गासै, भौंदू भाई० ॥ ७ ॥ जे आंखैं पूरनस्वरूप धरि, लोकालोक लखावै। ए वे यह वह सब विकलप तजि, निरविकलप पदपावै, भौंदू भाई० ॥ ८ ॥

(२०)

राग काफी।

तू भ्रम भूल ना रे प्रानी, तू० टेक। धर्म विसारि विषयसुख सेवत, वे मति हीन अज्ञानी, तू भ्रम० ॥ १ ॥ तन धन सुत जन जीवन जोबन, डाम अनी ज्यों पानी, तू भ्रम० ॥ २ ॥ देख दगा परतच्छ 'वनारसि' ना कर होइ विरानी, तू भ्रम० ॥ ३ ॥

(२१)

पुनः राग काफी।

चिन्तामन स्वामी सांचा साहिब मेरा, शोक हरै तिहुं लोकको, उठ लीजतु नाम सवेरा, चिन्तामन० ॥ १ ॥ सूरसमान उदोत है, जग तेज प्रताप घनेरा। देखत मूरत भावसौं, मिट जात मिथ्यात अंधेरा, चिन्तामन स्वामी० ॥ २ ॥ दीनदयाल निवारिये, दुख संकट जोनि बसेरा। मोहि अभयपद दीजिये, फिर होय नहीं भवफेरा, चिन्तामन० ॥ ३ ॥ बिंब विराजत आगरे,

थिर थान थयो शुभवेरा । ध्यान धरै विनती करै, बानारसि वंदा तेरा, चिन्तामन० ॥ ४ ॥

इति अध्यातमपदपंक्ति ।

अथ परमारथहिंडोलना लिख्यते।

सहज हिंडना हरख हिडोलना, झुलत चेतनराव ।
जहाँ धर्म कर्म सँजोग उपजत, रस स्वभाव विभाव ॥ टेक ॥

जहँ सुमनरूप अनूप मंदिर, सुरुचि भूमि सुरंग ।
तहँ ज्ञान दर्शन खंभ अविचल, चरन आड अभंग ॥
मरुवा सुगुन परजाय विचरन, मौंर विमल विवेक ।
व्यवहार निश्चय नय सुदंडी, सुमति पटली एक । सहज० ॥ १ ॥

पट कील जहां षडद्रव्य निर्णय, अभय अंग अडोल ।
उद्यम उदय मिलि देहिं झोटा, शुभ अशुभ कल्लोल ॥
संवेग संवर निकट सेवक, विरत बीरे देत ।
आनंदकंद सुछंद साहिब, सुख समाधि समेत, सहजहिं ॥ २ ॥

जहँ खिपक उपशम चमर ढारइ, धर्म ध्यान वजीर ।
आगम अध्यातम अंगरक्षक, शान्तरस बरवीर ॥
गुनथान विधि दश चार विद्या, शकतिनिधिविस्तार ।
संतोष मित्र खवास धीरज, सुजस खिजमतगार, सहज ॥ ३ ॥

धारना समिता क्षमा करुणा, चारसखि चहुँ ओर ।
निर्जरा दोऊ चतुरदासी, करहिं खिजमत जोर ॥

जहँ विनय मिलि सातों सुहागनि, करत धुनि झनकार ।
गुरुवचनराग सिद्धान्तधुरपद, ताल अरथ विचार, सहज०॥४॥

श्रद्दहन सांची मेघमाला, दाम गर्जत घोर ।
उपदेश वर्षा अति मनोहर, भविक चातक मोर ॥
अनुभूति दामनि दमक दीसै, शील शीत समीर ।
तप भेद तपत उछेद परगट, भावरंगत चीर, सहज० ॥५॥

कबहूं असंख प्रदेश पूरन, करत वस्तु समाल ।
कबहूं विचारै कर्म प्रकृती, एकसौ अड़ताल ॥
कबहूं अबंध अदीन अशरन, लखत आपहि आप ।
कबहूं निरंजन नाथ मानत, करत सुमरन जाप, सहज० ॥६॥

कबहूं गुनी गुन एक जानत, नियत नय निरधार ।
कबहूं सुकरता करम किरिया, कहत विधि व्यवहार ॥
कबहूं अनादि अनंत चिंतित, कबहुं करहि उपाधि ।
कबहूं सु आतम गुणसँभारत, कबहुं सिद्ध समाधि, सहज० ॥७॥

इहिभांति सहज हिंडोल झूलत, करत आतम काज ।
भवतरनतारन दुखनिवारन, सकल मुनिसिरताज ॥
जो नर विचच्छन सदयलच्छन, करत ज्ञानविलास ।
करजोर भगति विशेष विधिसौं, नमत काशीदास ॥ ८ ॥

इति परमार्थहिंडोलना ।

अथ मलार तथा सोरठ राग ।

देखो भाई! महाविकल संसारी, दुखित अनादि मोहके कारन, राग द्वेष भ्रम भारी, देखो भाई महाविकल संसारी॥१॥ हिंसारंभ करत सुख समुझैं, मृषा बोलि चतुराई। परधन हरत समर्थ कहावैं, परिग्रह बढत बडाई, देखो भाई० ॥ २ ॥ वचन राख काया दृढ राखैं, मिटै न मनचपलाई। यातैं होत औरकी औरैं, शुभ करनी दुखदाई[1], देखो भाई० ॥ ३ ॥ जोगासन करि कर्म निरोधै, आतम दृष्टि न जागै। कथनी कथत महंत कहावै, ममता मूल न त्यागै, देखो भाई० ॥ ४ ॥ आगम वेद सिद्धान्त पाठ सुनि, हिये आठमद आनै। जाति लाभ कुल बल तप विद्या, प्रभुता रूप बखानै, देखो भाई० ॥ ५ ॥ जड-सौं राचि परमपद साधै, आतमशक्ति न सूझै। बिना विवेक विचार दरबके, गुण परजाय न बूझै, देखो० ॥ ६ ॥ जसवाले जस सुनि संतोषैं, तप वाले तन सोपैं। गुनवाले परगुनको दोषैं, मतवाले मत पोषैं, देखो० ॥ ७ ॥ गुरु उपदेश सहज उदयागति, मोहविकलता छूटै। कहत बनारसि है करुनारसि, अलख अखय निधि लूटै, देखो० ॥८॥

इत्यष्टपदी मल्हार सम्पूर्ण ।

---

१ सुखदाई ऐसा भी पाठ है

तीननये पद जो हमने संग्रह किये हैं.

नयापद १ ला

मूलन बेटा जायो रे साधो, मूलन० जाने खोजकुटुंब सब खायो रे साधो० मूलन० ॥ टेक ॥ जन्मत माता ममता खाई, मोहलोभ दोइ भाई । कामक्रोध दोइ काका खाये, खाई तृषनादाई, साधो० ॥ १ ॥ पापीपापपरोसी खायो, अशुभकरम दोइ मामा । मान नगरको राजा खायो, फैल परोसबगामा, साधो० ॥ २ ॥ दुरमति दादी ····दादो, मुखदेखत ही मूओ । मंगलाचार बधाये बाजे, जब यो बालक हूओ, साधो० ॥ ३ ॥ नाम धरयो बालकको सूधो, रूप बरन कछु नाहीं । नामधरंते पांडे खाये, कहत बनारसि भाई, साधो० ॥ ४ ॥

नयापद २ रा

राग जंगला.

वा दिनको कर सोचजिय! मनमें । वा दि० टेक ।

बनज किया व्यापारी तूने, टांडा लादा भारी रे । ओछी पूंजी जूआ खेला, आखिर बाजी हारी रे ॥ आखिर बाजी हारी, करले चलनेकी तय्यारी । इकदिन डेरा होयगा बनमें, वादिन० ॥१॥ झूंठे नैना उलफत बांधी, किसका सोना किसकी चांदी । इकदिन पवन चलेगी आंधी, किसकी बीबी किसकी बांदी, नाहक चित्त लगावै धनमें, वादिन० ॥ २ ॥ मिट्टीसेती मिट्टी मिलियो,

१ इस रागके पदक्रमोंको हम समझ नहीं सके ।

पानीसे पानी। मूरखसेती मूरख मिलियौ,, ज्ञानीसे ज्ञानी। यह मिट्टी है तेरे तनमें, वादिन० ॥ ३ ॥ कहत वनारसि सुनि भवि प्राणी, यह पद है निरवानारे। जीवन मरन किया सो नाहीं, सिरपर काला निशाना रे। सूझ पडेगी बुढापेपनमें, वादिन० ॥ ४ ॥

नयापद ३ रा

कित गये पंच किसान हमारे। कित० ॥ टेक ॥
बोयो बीज खेत गयो निरफल, भर गये खाद पनारे। कपटी लोगोंसे सांझाकर, ...हुए आप विचारे ॥ १ ॥ आप दिवाना गह गह बैठो लिखलिख कागद डारे। वाकी निकसी पकरे मुकद्दम, पांचो होगये न्यारे ॥ २ ॥ रुकगयो कंठ शवद नहिं निकसत, हा हा कर्मसों हारे। वानारसि या नगर न वसिये, चलगये सींचनहारे ॥ ३ ॥

वनारसीविलासके संग्रहकर्त्ता.

नगर आगरेमैं अगरवाल आगरो जो,
गर्ग गोत आगरेमैं नागर नवलसा।
संघवी प्रसिद्ध अभैराज राजमान नीके,
पंच वाला नलनिमैं भयो है कँवलसा ॥
ताके परसिद्ध लघु मोहनदे संघइन
जाके जिनमारग विराजत धवलसा।

ताहीको सपूत जगजीवन सुदिढ जैन,
वानारसी वैन जाके हियेमें सवलसा ॥ १ ॥

समै जोग पाइ जगजीवन विख्यात भयो,
ज्ञानिनकी मंडलीमें जिसको विकास है ।
तिननें विचार कीना नाटक वनारसीका,
आपुके निहारिवेको आरसी प्रकाश है ॥

और काव्य घनी खरी करी है वनारसीनें,
सो भी क्रमसे एकत्र किये ज्ञान भास है ।
ऐसी जानि एक ठौर, कीनी सब भाषा जोर,
ताको नाम धरचो यो वनारसीविलास है ॥ २ ॥

दोहा ।

सत्रहसै एकोत्तरै, समय चैत्र सित पाख ।
द्वितियामें पूरन भई, यह वनारसी भाख ॥ ३ ॥

इति श्रीकविवर वनारसीदासकृत वनारसी
विलास समाप्त ।